MAHN202CCT

मध्यकालीन हिंदी काव्य

एम.ए.

(द्वितीय सेमेस्टर के लिए)

पेपर-6

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी

हैदराबाद-32, तेलंगाना, भारत

© Maulana Azad National Urdu University, Hyderabad
Course : Madhyakaleen Hindi Kavya
ISBN: 978-93-95203-97-5
First Edition: October, 2023

Publisher	:	Registrar, Maulana Azad National Urdu University
Edition	:	2023
Copies	:	500
Price	:	340/-
Copy Editing	:	Dr. Wajada Ishrat, DDE, MANUU, Hyderabad
		Dr. L. Anil, DDE, MANUU, Hyderabad
Cover Designing	:	Dr. Mohd. Akmal Khan, DDE, MANUU, Hyderabad
Printing	:	Print Time & Business Enterprises, Hyderabad

Madhyakaleen Hindi Kavya

For

M.A. Hindi

2nd Semester

On behalf of the Registrar, Published by:

Directorate of Distance Education

Maulana Azad National Urdu University

Gachibowli, Hyderabad-500032 (TS), Bharat

*Director:*dir.dde@manuu.edu.in *Publication:* ddepublication@manuu.edu.in

Phone number: 040-23008314 Website: manuu.edu.in

© All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronically or mechanically, including photocopying, recording or any information storage or retrieval system, without prior permission in writing from the publisher (registrar@manuu.edu.in)

संपादक

Editor

डॉ. आफताब आलम बेग
सहायक कुल सचिव,
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Dr. Aftab Alam Baig
Assistant Registrar
DDE, MANUU

संपादक-मंडल
(Editorial Board)

प्रो. ऋषभदेव शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद
परामर्शी (हिंदी), दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Prof. Rishabhadeo Sharma
Former Head, Higher Education and Research Centre, Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha, Hyderabad
Consultant (Hindi), DDE, MANUU

प्रो. श्याम राव राठोड़
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
अंग्रेज़ी और विदेशी भाषा वि.वि.,हैदराबाद

Prof. Shyamrao Rathod
Head, Department of Hindi
EFL University, Hyderabad

डॉ. गंगाधर वानोडे
क्षेत्रीय निदेशक
केंद्रीय हिंदी संस्थान, सिकंदराबाद, हैदराबाद

Dr. Gangadhar Wanode
Regional Director
Central Institute of Hindi
Hyderabad Centre, Secunderabad, Hyd

डॉ. आफताब आलम बेग
सहायक कुल सचिव,
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Dr. Aftab Alam Baig
Assistant Registrar, DDE, MANUU

डॉ. वाजदा इशरत
अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (संविदा)
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Dr. Wajada Ishrat
Guest Faculty/Assistant Professor (Cont.)
DDE, MANUU

डॉ. एल. अनिल
अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (संविदा)
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Dr. L. Anil
Guest Faculty/Assistant Professor (Cont.)
DDE, MANUU

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. आफ़ताब आलम बेग

सहायक कुल सचिव, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद

लेखक	**इकाई संख्या**
• **डॉ. डॉली**, सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गुरुनानक महाविद्यालय, चेन्नै	1
• **डॉ. वाजदा इशरत,** अतिथि प्राध्यापक/ असिस्टेंट प्रोफेसर(संविदा), दू. शि. नि. मानू	2
• **डॉ. इबरार खान,** असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, मिर्ज़ा ग़ालिब कॉलेज, गया	3
• **डॉ. सुषमा देवी**, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, भवन्स विवेकानंद कॉलेज, सैनिकपुरी, सिकंदराबाद	4
• **प्रो. रहीम पठान खान**, हिंदी विभाग, मानू	5, 6
• **डॉ. एन. लक्ष्मीप्रिया**, असिस्टेंट प्रोफेसर, महात्मा गांधी सरकारी कॉलेज, मायाबंदर (अंडमान-निकोबार)	7
• **डॉ . सुपर्णा मुखर्जी**, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, सेंट एन्स जूनियर एंड डिग्री कॉलेज फॉर गर्ल्स एंड वुमेन, मलकाजगिरी, हैदराबाद.	8
• **डॉ. चंदन कुमारी**, संकाय सदस्य, डॉ. बीआर अंबेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय, अंबेडकरनगर (मध्य प्रदेश)	9, 16
• **प्रो. गोपाल शर्मा**, पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, भाषाविज्ञान विभाग अरबा मींच विश्वविद्यालय, इथियोपिया (पूर्व अफ्रीका)	10
• **डॉ. शशिबाला**, केंद्रीय विद्यालय, शिवरामपल्ली, हैदराबाद	11
• **डॉ. गुर्रमकोंडा नीरजा**, एसोसिएट प्रोफेसर, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास	12
• **डॉ. एल. अनिल**, अतिथि प्राध्यापक/ असिस्टेंट प्रोफेसर(संविदा), • दू. शि. नि. मानू	13
• **डॉ. एस.जे. जहागीरदार**, हिंदी विभाग, अंजुमन कला,विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, विजयपुर (कर्नाटक)	14
• **डॉ. अविनाश**, असिस्टेंट प्रोफेसर (सी), हिंदी विभाग, डॉ. बीआर अंबेडकर सार्वत्रिक विश्वविद्यालय, हैदराबाद	15

विषयानुक्रमणिका

संदेश	:	कुलपति	7
संदेश	:	निदेशक	9
भूमिका	:	पाठ्यक्रम–समन्वयक	10

खंड इकाई /		विषय	पृष्ठ संख्या
खंड 1	**:**	**मध्यकालीन हिंदी काव्य : सामान्य परिचय**	
इकाई 1	:	निर्गुण भक्ति काव्य	13
इकाई 2	:	सगुण भक्ति काव्य	28
इकाई 3	:	रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य	39
इकाई 4	:	रीतिमुक्त काव्य	57
खंड 2	**:**	**निर्गुण भक्ति काव्य**	
इकाई 5	:	कबीरदास, रैदास और मलिक मोहम्मद जायसी : एक परिचय	72
इकाई 6	:	कबीर-बानी	94
इकाई 7	:	रैदास-बानी	111
इकाई 8	:	जायसी : नागमती वियोग खंड	128
खंड 3	**:**	**सगुण भक्ति और रीतिकाव्य**	
इकाई 9	:	सूरदास, तुलसीदास और बिहारी : एक परिचय	139
इकाई 10	:	सूरदास : भ्रमरगीत सार	158
इकाई 11	:	तुलसीदास : सुंदरकांड	171
इकाई 12	:	बिहारी के दोहे	183

खंड 4	:	**काव्यालोचना**	
इकाई 13	:	रहीम : काव्यालोचन	198
इकाई 14	:	रसखान : काव्यालोचन	207
इकाई 15	:	मीराँबाई : काव्यालोचन	229
इकाई 16	:	घनानंद : काव्यालोचन	242
		परीक्षा प्रश्न पत्र का नमूना	**260**

प्रूफ रीडर:

प्रथम : डॉ. वाजदा इशरत, अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर(संविदा)

दू. शि. नि., मानू

द्वितीय : डॉ. एल. अनिल, अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (संविदा),

दू. शि. नि., मानू

अंतिम : डॉ. आफताब आलम बेग, सहायक कुल सचिव, दू. शि. नि., मानू

संदेश

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटीकी स्थापना 1998 में संसद के एक अधिनियम द्वारा की गई थी। यह NAAC मान्यत प्राप्त एक केंद्रीय विश्वविद्यालय है। विश्वविद्यालय का अधिदेश है: (1) उर्दू भाषा का प्रचार-प्रसार और विकास (2) उर्दू माध्यम से व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा (3) पारंपरिक और दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना, और (4) महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देना। यही वे बिंदु हैं जो इस केंद्रीय विश्वविद्यालय को अन्य सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों से अलग करते हैं और इसे एक अनूठी विशेषता प्रदान करते हैं, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा के प्रावधान पर जोर दिया गया है।

उर्दू माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार का एकमात्र उद्देश्य उर्दू भाषी समुदाय के लिए समकालीन ज्ञान और विषयों की पहुंच को सुविधाजनक बनाना है। लंबे समय से उर्दू में पाठ्यक्रम सामग्री का अभाव रहा है। इस लिए उर्दू भाषा में पुस्तकों की अनुपलब्धता चिंता का विषय रहा है। नई शिक्षा नीति 2020 के दृष्टिकोण के अनुसार उर्दू विश्वविद्यालय मातृभाषा / घरेलू भाषा में पाठ्यक्रम सामग्री प्रदान करने की राष्ट्रीय प्रक्रिया का हिस्सा बनने का सौभाग्य मानता है। इसके अतिरिक्त उर्दू में पठन सामग्री की अनुपलब्धता के कारण उभरते क्षेत्रों में अद्यतन ज्ञान और जानकारी प्राप्त करने या मौजूदा क्षेत्रों में नए ज्ञान प्राप्त करने में उर्दू भाषी समुदाय सुविधाहीन रहा है। ज्ञान के उपरोक्त कार्य-क्षेत्र से संबंधित सामग्री की अनुपलब्धता ने ज्ञान प्राप्त करने के प्रति उदासीनता का वातावरण बनाया है जो उर्दू भाषी समुदाय की बौद्धिक क्षमताओं को मुख्य रूप से प्रभावित कर सकता है। ये वह चुनौतियां है जिनका सामना उर्दू विश्वविद्यालय कर रहा है। स्व-अध्ययन सामग्री का परिदृश्य भी बहुत अलग नहीं है। प्रत्येक शैक्षणिक वर्ष के प्रारंभ में स्कूल/कॉलेज स्तर पर भी उर्दू में पाठ्य पुस्तकों की अनुपलब्धता पर चर्चा होती है। चूंकि उर्दू विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम केवल उर्दू है और यह विश्वविद्यालय लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों के पाठ्यक्रम प्रदान करता है, इसलिए इन सभी विषयों की पुस्तकों को उर्दू में तैयार करना विश्वविद्यालय की सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय अपनेदूरस्थ शिक्षा के छात्रों को स्व-अध्ययन सामग्री अथवा सेल्फ लर्निंग मैटेरियल (SLM) के रूप में पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराता है। वहीं उर्दू माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति के लिए भी यह सामग्री उपलब्ध है। अधिकाधिक लोग इससे लाभान्वित हो सकें, इसके लिए उर्दू में इलेक्ट्रॉनिक पाठ्य सामग्री अथवा eSLM विश्वविद्यालय की वेबसाइट से मुफ्त डाउनलोड के लिए उपलब्ध है।

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि संबंधित शिक्षकों की कड़ी मेहनत और लेखकों के पूर्ण सहयोग के कारण पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य उच्च-स्तर पर प्रारंभ हो चुका है। दूरस्थ शिक्षा के छात्रों

की सुविधा के लिए, स्व-अध्ययन सामग्री की तैयारी और प्रकाशन की प्रक्रिया विश्वविद्यालय के लिए सर्वोपरि है। मुझे विश्वास है कि हम अपनी स्व-शिक्षण सामग्री के माध्यम से एक बड़े उर्दू भाषी समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होंगे और इस विश्वविद्यालय के अधिदेश को पूरा कर सकेंगे।

एक ऐसे समय जब हमारा विश्वविद्यालय अपनी स्थापना की 25वीं वर्षगांठ मना रहा है, मुझे इस बात का उल्लेख करते हुए हर्ष हो रहा है कि विश्वविद्यालय का दूरस्थ शिक्षा निदेशालय कम समय में स्व-अध्ययन सामग्री तथा पुस्तकें तैयार कर विद्यार्थियों को पहुंचा रहा है। देश के कोने कोने में छात्र विभिन्न दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों से लाभान्वित हो रहे हैं। यद्यपि पिछले दो वर्षों के दौरान कोविड-19 की विनाशकारी स्थिति के कारण प्रशासनिक मामले और संचारचलन भी काफी कठिन रहे हैं लेकिन विश्वविद्यालय द्वारा दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए सर्वोत्तम प्रयास किया जा रहा है। मैं विश्वविद्यालय से जुड़े सभी विद्यार्थियों को इस विश्वविद्यालय का अंग बनने के लिए हृदय से बधाई देता हूं और यह विश्वास दिलाता हूँ कि मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय का शैक्षिक मिशन सदैव उनके के लिए ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा। शुभकामनाओं सहित!

प्रो. सैयद ऐनुल हसन

कुलपति

संदेश

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को पूरी दुनिया में अत्यधिक कारगर और लाभप्रद शिक्षा प्रणाली की हैसियत से स्वीकार किया जा चुका है और इस शिक्षा प्रणाली से बड़ी संख्या में लोग लाभान्वित हो रहे हैं। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी ने भी अपनी स्थापना के आरंभिक दिनों से ही उर्दू तबके की शिक्षा की स्थिति को महसूस करते हुए इस शिक्षा प्रणाली को अपनाया है। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी का बाकायदा प्रारम्भ 1998 में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली और ट्रांसलेशन डिविजन से हुआ था और इस के बाद 2004 में बाकायदा पारंपरिक शिक्षा का आगाज़ हुआ। पारंपरिक शिक्षा के विभिन्न विभाग स्थापित किए गए। नए स्थापित विभागों और ट्रांसलेशन डिविजन में नियुक्तियाँ हुईं। उस वक़्त के शिक्षा प्रेमियों के भरपूर सहयोग से स्व-अधिगम सामग्री को अनुवाद व लेखन के द्वारा तैयार कराया गया।
पिछले कई वर्षों से यूजीसी-डीईबी (UGC-DEB) इस बात पर ज़ोर देता रहा है किदूरस्थ शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम व व्यवस्था को पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम व व्यवस्था से लगभग जोड़कर दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के मयार को बुलंद किया जाय। चूंकि मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी दूरस्थ शिक्षा और पारंपरिक शिक्षा का विश्वविद्यालय है, अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यूजीसी-डीईबी (UGC-DEB) के दिशा निर्देशों के मुताबिक दूरस्थ शिक्षा प्रणाली और पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम को जोड़कर और गुणवततापूर्ण करके स्व-अधिगम सामग्री को पुनः क्रमवार यू.जी. और पी.जी. के विद्यार्थियों के लिए क्रमशः 6 खंड-24 इकाइयों और 4 खंड – 16 इकाइयों पर आधारित नए तर्ज़ की रूपरेखा पर तैयार कराया जा रहा है।

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय यू.जी., पी.जी., बी.एड., डिप्लोमा और सर्टिफिकेट कोर्सेज पर आधारित कुल 15 पाठ्यक्रम चला रहा है। बहुत जल्द ही तकनीकी हुनर पर आधारित पाठ्यक्रम शुरू किए जाएंगे। अधिगमकर्ताओं की सरलता के लिए 9 क्षेत्रीय केंद्र (बंगलुरु, भोपाल, दरभंगा, दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, पटना, रांची और श्रीनगर) और 5 उपक्षेत्रीय केंद्र (हैदराबाद, लखनऊ, जम्मू, नूह और अमरावती) का एक बहुत बड़ा नेटवर्क तैयार किया है। इन केन्द्रों के अंतर्गत एक साथ 155 अधिगम सहायक केंद्र (लर्निंग सपोर्ट सेंटर) काम कर रहे हैं। जो अधिगमकर्ताओं को शैक्षिक और प्रशासनिक सहयोग उपलब्ध कराते हैं। दूरस्थ शिक्षा निदेशालय (डी. डी. ई.) ने अपनी शैक्षिक और व्यवस्था से संबन्धित कार्यों में आई.सी.टी. का इस्तेमाल शुरू कर दिया है। इसके अलावा अपने सभी पाठ्यक्रमों में प्रवेश सिर्फ ऑनलाइन तरीके से ही दे रहा है।

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की वेबसाइट पर अधिगमकर्ता को स्व-अधिगम सामग्री की सॉफ्ट कॉपियाँ भी उपलब्ध कराई जा रही हैं। इसके अतिरिक्त शीघ्र ही ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग का लिंक भी वैबसाइट पर उपलब्ध कराया जाएगा। इसके साथ-साथ अध्ययन व अधिगम के बीच एसएमएस (SMS) की सुविधा उपलब्ध की जा रही है। जिसके द्वारा अधिगमकर्ताओं को पाठ्यक्रमों के विभिन्न पहलुओं जैसे- कोर्स के रजिस्ट्रेशन, दत्तकार्य, काउंसलिंग, परीक्षा के बारे में सूचित किया जाता है।

आशा है कि देश में शैक्षिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई उर्दू आबादी को मुख्यधारा में शामिल करने में दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की भी मुख्य भूमिका होगी।

प्रो. मो. रज़ाउल्लाह ख़ान
निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

भूमिका

'मध्यकालीन हिंदी काव्य' शीर्षक यह पुस्तक मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद के एम.ए. (हिंदी) द्वितीय सत्र (छटवां प्रश्न पत्र) के दूरस्थ शिक्षा माध्यम के छात्रों के लिए तैयार की गई है। इसकी संपूर्ण योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) के निर्देशों के अनुसार नियमित माध्यम के पाठ्यक्रम के अनुरूप रखी गई है।

मध्यकालीन हिंदी काव्य के अंतर्गत के मुख्य रूप से दो काल आते हैं। भक्ति काल और रीतिकाल इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत इन दोनों काल के काव्यों की जानकारी हमें प्राप्त हो सकेगी। जैसा की हम जानते हैं कि मानव जीवन में अध्यात्म तथा ईश्वर की आराधना का विशेष महत्त्व है। ईश्वर की भक्ति से मानव को शक्ति मिलती है। अध्यात्म की ओर जब मानव का झुकाव होता है तो उन्हें कुसंस्कारों, ईर्ष्या, कुरीतियों, द्वेष घृणा, क्रोध आदि से मुक्ति मिल जाती है। हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल का भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। 'मध्यकालीन हिंदी काव्य' का यह पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को हिंदी काव्य स्वरूप से भी परिचित कराएगा।

यह पुस्तक पाठ्यचर्या के अनुरूप चार खंडों में विभाजित है। हर खंड में चार-चार इकाइयाँ शामिल हैं। पहले खंड में मध्यकालीन हिंदी काव्य का सामान्य परिचय दिया गया है जिसके अंतर्गत निर्गुण और सगुण भक्ति तथा रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त काव्य धरा पर चर्चा की गई हैं। दूसरे खंड में निर्गुण भक्ति काव्य का विस्तार से व्याख्या की गई है। तीसरे खंड में सगुण भक्ति और रीतिकाव्य का अध्ययन और विवेचन किया गया है। तथा अंत में चौथे खंड में कुछ प्रमुख भक्ति कालीन एवं रीतिकालीन कवियों के काव्यों की आलोचना पर प्रकाश डाला गया है ।

इस पुस्तक के अध्ययन से विद्यार्थी हिंदी गद्य की विधागत विविधता, विषयगत प्रौढ़ता, भाषागत यात्रा और शैलीगत परिधि के विस्तार को आत्मसात कर सकेंगे। अध्येय पाठों का चयन इस प्रकार किया गया है कि उनके अध्ययन से छात्रों का वैयक्तिक और मानसिक विकास हो सके, उनके भीतर राष्ट्रीय चेतना और लोकतांत्रिक मूल्यों की समझ विकसित हो सके तथा हिंदी के माध्यम से सामाजिक समरसता का संस्कार निर्मित हो सके।

इस समस्त पाठ सामग्री को तैयार करने में हमें जिन विद्वान इकाई लेखकों, ग्रंथों, ग्रंथकारों और पत्र-पत्रिकाओं से सहायता मिली है, उन सबके प्रति हम कृतज्ञ हैं।

-डॉ. आफताब आलम बेग

पाठ्यक्रम समन्वयक

मध्यकालीन हिंदी काव्य

مولانا آزاد نیشنل اُردو یونیورسٹی
मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी
Estd. 1998
MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY

खंड 1 : मध्यकालीन हिंदी काव्य : सामान्य परिचय

इकाई 1 : निर्गुण भक्ति काव्य

रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मूल पाठ : निर्गुण भक्ति काव्य
1.3.1 काव्य की अवधारणा एवं स्वरूप
1.3.2 भक्ति : अर्थ एवं परिभाषा
1.3.3 भक्ति का उद्भव एवं विकास
1.3.4 भक्ति के तत्व एवं प्रकार
1.3.5 भक्ति की धाराएँ
1.3.6 भक्ति की विशेषताएँ एवं महत्व
1.4 पाठ सार
1.5 पाठ की उपलब्धियाँ
1.6 शब्द संपदा
1.7 परीक्षार्थ प्रश्न
1.8 पठनीय पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

मानव जीवन में अध्यात्म तथा ईश्वर की आराधना का विशेष महत्व है। ईश्वर की भक्ति से मानव को शक्ति मिलती है। अध्यात्म की ओर जब मानव का झुकाव होता है, तो उन्हें कुसंस्कारों, ईर्ष्या, कुरीतियों, द्वेष, घृणा, क्रोध आदि से मुक्ति मिल जाती है। मनुष्य के जीवन में परोपकार का विशेष महत्व है। जब सेवा में प्रीति हो तब वह भक्ति बन जाती है। भक्ति स्वयं फल-रूपा है। जीव के लिए परम रस, परम कल्याण ही भगवान की भक्ति है। भक्ति में ही जीव का परम स्वार्थ एवं परमार्थ है। भक्तिकाल हिंदी साहित्य का महत्वपूर्ण काल है। यह साहित्य अपने पूर्ववर्ती तथा परवर्ती साहित्य से भिन्न एक विशिष्ट प्रकार का साहित्य है। भक्तिकाल में संत कवियों ने अपनी अमृतवाणी से जनमानस को सिंचित कर ज्ञान का दीप जलाया और पतनोन्मुखी समाज में अपनी दिव्य वाणी से नवीन चेतना का संचार किया तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना की। निर्गुण भक्ति-धारा भक्तिकाल की ऐसी धारा है जिसमें ईश्वर के निर्गुण, निराकार रूप की आराधना होती है। निर्गुण भक्ति काव्य को दो शाखाओं में बाँटा जाता है - ज्ञानमार्गी शाखा और प्रेममार्गी शाखा। ज्ञानमार्गी शाखा में कबीर, दादू दयाल, गुरु नानक,

रविदास जैसे संत आते हैं, तो प्रेममार्गी शाखा में मलिक मोहम्मद जायसी, कुतबन, मंझन आदि आते हैं। प्रेममार्गी शाखा में भक्ति का आश्रय प्रेम को माना गया है।

1.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- हिंदी साहित्य के भक्तिकाल की एक प्रमुख धारा के रूप में निर्गुण भक्तिधारा से परिचित हो सकेंगे।
- निर्गुण भक्ति काव्य परंपरा की विशेषताओं और महत्व को समझ पाएँगे।
- निर्गुण भक्ति सौंदर्य को पहचान सकेंगे।
- संत साहित्य की परंपरा और विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- सूफी साहित्य की परंपरा तथा विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

1.3 मूल पाठ : निर्गुण भक्ति काव्य

निर्गुण काव्य राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों के फलस्वरूप विरचित भावनात्मक एवं अनुभूति युक्त जन काव्य है, जिसकी प्रेरणा-स्रोत सामान्य मानव के हितों की भावना रही है। निर्गुण भक्ति-काव्य में संत काव्य और सूफी काव्य आते हैं। कालक्रम की दृष्टि से संत काव्यधारा भक्ति काव्य की पहली धारा मानी जाती है। इस धारा के कवियों ने सामाजिक विषमताओं का चित्रण किया है। निर्गुण भक्ति साहित्य में निर्गुण ईश्वर में विश्वास की भावना दिखाई देती है और संतों ने शास्त्रों का विरोध किया है। गुरु के महत्व को प्रतिपादित किया है। छात्रो! निर्गुण भक्ति काव्य के महत्व तथा सौंदर्य को समसामयिक परिप्रेक्ष्य में जानने और समझने के लिए पहले भक्ति की अवधारणा और स्वरूप को जानना और समझना होगा।

1.3.1 काव्य की अवधारणा एवं स्वरूप

कविता मन के भावों की अभिव्यक्ति है। इसमें एक विशेष प्रकार की चेतना और जीवंतता होती है। इसमें भावना के साथ-साथ विचारों को एक साथ संकलित किया जाता है। कविता का शाब्दिक अर्थ है काव्यात्मक रचना। कविता छंद-बद्ध और मुक्त छंद दोनों में होती है। वास्तव में कविता समय विशेष की उपज होती है जिसका स्वरूप समय के साथ-साथ बदलता रहता है। शब्दों के मेलजोल से कविता बन जाए यह आवश्यक नहीं अर्थात कविता शब्दों के उचित चयन और प्रयोग से ही बन पाती है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की काव्य संबंधी अलग-अलग अवधारणाएँ हैं।

भारतीय अवधारणा : संस्कृत के काव्य शास्त्रियों ने प्रायः कवि कर्म को काव्य कहा है। अतः 'कवि' शब्द से ही 'काव्य' की उत्पत्ति मानी जा सकती है। कवि शब्द 'कु' धातु में 'इच' प्रत्यय लगने से बना है। 'कु' धातु का अर्थ है शब्द करना, बोलना, कलरव करना। इस धातु के अन्य अर्थ हैं व्याप्ति या आकाश। इस तरह यह कहा जा सकता है कि कवि वह व्यक्ति है जो शब्द करता है, बोलता है या कलरव करता है अथवा जो आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त है।

संस्कृत के आचार्यों, रीतिकालीन आचार्य, आधुनिक कवियों और आलोचकों ने अपने-अपने ढंग से काव्य की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। संस्कृत के आचार्यों ने काव्य संबंधी परिभाषाएँ दी हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र में सर्वप्रथम आचार्य भरत मुनि ने अपनी रचना 'नाट्यशास्त्र' में काव्य संबंधी विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि "कोमल एवं ललित पदों से युक्त, गूढ़ शब्दार्थ रहित, सर्वजन सुबोध, युक्तियुक्त, नृत्य योजना से युक्त, विभिन्न रसों को प्रवाहित करने वाली तथा अनुकूल संधि-योजना वाली रचना उत्तम काव्य कही जा सकती है।"

मोटे तौर पर यह स्वीकार किया गया कि 'वह रचना 'काव्य' शब्द से अभिहित की जा सकती है जो पाठकों या श्रोताओं को भावानंद प्रदान करने की क्षमता रखती हो।'

आचार्य रुद्रट ने माना है कि ''नानु शब्दार्थौ काव्यम।''

आचार्य वामन ने गुणों तथा अलंकारों युक्त शब्दार्थ को काव्य माना है।

आचार्य कुंतक ने 'वक्रोक्ति काव्य जीवितम' कहा है।

आचार्य भामह के अनुसार, ''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम'' अर्थात् शब्द और अर्थ सहित भाव को काव्य कहते हैं।

आचार्य भोजराज ने दोष रहित गुण सहित अलंकार युक्त तथा रस युक्त कृति को काव्य माना है।

विश्वनाथ के अनुसार, "रसात्मकं वाक्यम काव्यम" अर्थात रसात्मक वाक्य ही काव्य है।

रीतिकालीन आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से कार्य की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। भिखारीदास ने अलंकार, रस, ध्वनि, रीति आदि से युक्त शब्दार्थ को काव्य माना है।

आधुनिक विद्वानों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने माना है कि "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं।"

इसी प्रकार सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं, "कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।"

इस तरह मोटे तौर पर कह सकते हैं कि कविता उस रचना को कहते हैं जो हृदय की भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति है तथा पाठकों को भावानंद प्रदान करने की क्षमता रखती है। काव्य का स्वरूप बताते हुए साहित्य-शास्त्रियों ने रस को काव्य की आत्मा कहा। काव्य का स्वरूप भाव सौंदर्य, विचार सौंदर्य, नाद सौंदर्य और प्रस्तुत योजना का सौंदर्य नामक चार तत्वों में बंधा हुआ है। कविता के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए इसे बाह्य स्वरूप और आंतरिक स्वरूप में बाँटा जा सकता है। बाह्य स्वरूप में लय, तुक, छंद, शब्द योजना, चित्रात्मक भाषा, अलंकार आदि आते हैं तथा आंतरिक स्वरूप में अनुभूति की तीव्रता, अनुभूति की व्यापकता, कल्पनाशीलता, रचनात्मकता और सौंदर्य बोध, भावों का उदात्तीकरण आदि।

बोध प्रश्न

- कविता क्या है?
- भामह ने काव्य के संबंध में क्या कहा?
- पंत के अनुसार काव्य क्या है?
- रसात्मक वाक्य ही काव्य है - यह किसका कथन है?

1.3.2 भक्ति : अर्थ एवं परिभाषा

भक्ति अर्थात अपने मन को ईश्वर के चरणों में एकाग्रचित्त करना। पूर्ण समर्पण ही भक्ति कहलाता है। जब आत्मा परमात्मा की डोर से बंध जाए तो उसे भक्ति कहा जाता है। ईश्वर के प्रति निष्ठापूर्वक समर्पित होने वाला सच्चा साधक ही भक्त कहलाता है। भक्ति शब्द की निष्पत्ति 'भज' धातु से हुई है जिसका अर्थ है सेवा करना। भक्ति में ईश्वर का भजन, पूजन, अर्पण आदि शामिल होता है। अतः भक्ति शाब्दिक अर्थ है सेवा करना। हिंदी साहित्य के इतिहास का द्वितीय काल भक्तिकाल है। इस काल में मुसलमान शासकों के अत्याचारों से आहत होकर हिंदू जनता ने प्रभु की शरण में ही अपने आप को सुरक्षित महसूस किया और भक्ति मार्ग का अनुसरण किया। भक्ति आंदोलन में नए विचारों का जन्म हुआ। इसने भारतीय संस्कृति और समाज को एक दिशा दी। इस आंदोलन ने एक ओर मानवीय भावनाओं को उभारा तो दूसरी ओर व्यक्तिवादी विचारधारा को सशक्त बनाया जिसमें भक्ति के माध्यम से ईश्वर से संपर्क स्थापित किया गया है। साथ ही सदाचार, मानवता, भक्ति और प्रेम के महत्व को प्रतिपादित किया गया है।

'भज सेवायाम्' का अर्थ है सेवा करना। इसलिए भक्ति शब्द का अर्थ सेवा करना है। पर किसकी सेवा करना? जिसकी आप भक्ति कर रहे हैं अर्थात अपने इष्टदेव की सेवा करना। आराध्य का भजन भक्ति कहलाता है। इसमें नाम, गुण, लीला आदि का गान होता है। भक्ति अमृत-स्वरूप होती है जिस को पाकर मनुष्य सिद्ध और तृप्त हो जाता है। अन्य कामनाओं का परिहार करके निर्मल चित्त से समग्र इंद्रियों द्वारा भगवान की सेवा करना भक्ति है। ईश्वर के प्रति जो श्रद्धा व प्रेम है वही भक्ति है। 'नारद भक्ति सूत्र' के अनुसार परमात्मा के प्रति परम प्रेम भक्ति है।

रामस्वार्थ चौधरी के अनुसार, "भक्ति श्रद्धा, विश्वास एवं प्रेम पूरित भक्त हृदय का वह मधुर मनोराग है जिसके द्वारा भक्त और भगवान, उपास्य और उपासक के पारस्परिक संबंध का निर्धारण होता है।"

महर्षि दयानंद लिखते हैं, 'जिस प्रकार अग्नि के पास जाकर शीत की निवृत्ति तथा उष्णता का अनुभव होता है, उसी प्रकार प्रभु के पास पहुँचकर दुख की निवृत्ति तथा आनंद की उपलब्धि होती है। परमेश्वर के समीप होने से सब दोष और दुख दूर हो जाते हैं। जीवात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना से आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि उस पर दुखों का पहाड़ टूटने पर भी, वह नहीं घबराएगा और हँसते-हँसते सब को सहन कर लेगा।

जीव ईश्वर का शाश्वत सखा है। प्रकृति रूपी वृक्ष पर दोनों बैठे हैं। जीव इस वृक्ष के फल को चखने लगता है और परिणामतः ईश्वर के सखा भाव से पृथक हो जाता है। जब वह साधना करता हुआ भक्तों के द्वारा प्रभु की ओर उन्मुख होता है तो दास्य, वात्सल्य आदि स्थितियों को पार करके पुनः सखा भाव प्राप्त कर लेता है।

बोध प्रश्न

- परमात्मा के प्रति परम प्रेम को क्या कहते हैं?
- परमेश्वर के समीप होने से क्या होगा?

1.3.3 भक्ति का उद्भव एवं विकास

भक्ति काल का समय वि.सं 1375 से 1700 के बीच माना जाता है। जीवन के विविध पक्षों से संपन्न होकर ही काव्य गौरवान्वित होता है। जीवन एक सागर है और कवि उसका मंथन करता है। इस सागर से अमृत और विष दोनों निकलते हैं क्योंकि, व्यक्ति को संतुलित करने के लिए दोनों की आवश्यकता होती है। अमृत व्यक्ति को आनंद एवं महत्व प्रदान कर जीवित रहने का बल देते हैं तो विष तत्व उसके जीवन की विषमताओं को दूर करते हैं अर्थात काव्य में कटु और मधुर दोनों पक्षों का उद्घाटन होता है। पूर्व मध्यकाल में भक्ति धारा ने अपने आंदोलनात्मक समर्थ से समूचे राष्ट्र की शिराओं में नया रक्त प्रवाहित किया। उसके उद्भव के संबंध में भले ही विद्वानों में मतभेद हो लेकिन एक बात पर सहमति है कि भक्ति की मूल धारा दक्षिण भारत में छठवीं-सातवीं शताब्दी में ही शुरू हो गई थी। चौदहवीं शताब्दी तक आते-आते इसने उत्तर भारत में अचानक आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया किंतु यह धारा दक्षिण भारत से उत्तर भारत कैसे आई इसके आंदोलन का रूप धारण करने के कौन से कारण रहे, इस पर काफी मतभेद है। हिंदी साहित्य के इतिहास में यह सबसे विवादास्पद मुद्दा रहा है। जॉर्ज ग्रियर्सन मानते हैं कि भक्त के उद्भव के मूल में ईसाइयत परंपरा रही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल भक्ति के उद्भव के मूल में मुसलमानी राज्य की सत्ता देखते हैं। इन्होंने अपनी इतिहास दृष्टि में युग चेतना और समकालीन सामाजिक परिवेश को विशेष महत्व दिया है। रामस्वरूप चतुर्वेदी, बाबू गुलाब राय और रामकुमार वर्मा भी आचार्य रामचंद्र शुक्ल के ही मत का समर्थन करते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य शुक्ल के भक्ति के उद्भव संबंधी व्याख्या का खंडन करते हैं और भक्ति को भारतीय चिंतनधारा का स्वाभाविक विकास मानते हैं। उन्होंने इसे दक्षिण के भक्ति आंदोलन से भी जोड़ा। यदि सभी मतों का विश्लेषण किया जाए तो यह पाया जाता है कि विदेशी प्रभाव संबंधित व्याख्या तो प्रायः अस्वीकार है किंतु शेष सभी व्याख्याएँ कहीं न कहीं आंशिक रूप से ठीक हैं। कोई भी जटिल सांस्कृतिक घटना वस्तुतः किसी एक तरह से जन्म नहीं लेती, उसकी व्याख्या बहुसूत्रीय पद्धति से ही हो सकती है। इसलिए भक्ति आंदोलन अपने इतिहास, आर्थिक स्थितियों और जनता की चित्तवृत्ति की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं से उपजा है।

भक्ति के उद्भव के संबंध में कहा जाता है कि रामानंद दक्षिण से भक्ति लेकर आए। भक्ति का जो स्रोत दक्षिण भारत से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर आ रहा था उसे राजनैतिक

परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला। आचार्य रामानंद रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में हुए और उन्होंने रामानंदी संप्रदाय खड़ा किया तथा विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया। इन सभी का यह मूल उद्देश्य था कि ज्ञान के साथ भक्ति का तादात्म्य स्थापित किया जाए। भारतवर्ष में भक्ति परंपरा का इतिहास कई हजार साल पुराना है। ग्रियर्सन ने भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना। हिंदी साहित्य में भक्ति आंदोलन का प्रारंभ दक्षिण भारत के आलवार भक्तों की परंपरा में ही हुआ। उस समय देश में राजनैतिक अस्थिरता और अव्यवस्था का दौर था। धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ भी ठीक नहीं थीं। जैन और बौद्ध धर्म ने भक्ति मार्ग में अनेक विकृतियाँ और बाधाएँ उत्पन्न कर दी थीं। भक्ति परंपरा प्राचीन भारतीय ज्ञान एवं दर्शन के एक अत्यंत शक्तिशाली एवं व्यापक धारा के रूप में पहले से ही उपस्थित थी, लेकिन दक्षिण भारत में भक्ति का जो स्रोत फूटा वह धीरे-धीरे पूरे भारत में फैल गया। वैष्णव धर्म के संस्थापक रामानुजाचार्य ने भक्ति आंदोलन के उत्थान और वैष्णव धर्म की पुनः प्रतिष्ठा कर उसे जनता तक पहुँचाया। आलवार भक्त परंपरा में ये यमुनाचार्य के शिष्य थे। माधवाचार्य द्वैतवाद के संस्थापक थे। उन्हें आनंदतीर्थ भी कहते हैं। वे शंकराचार्य के अद्वैतवाद के विरोधी थे। उनके अनुसार जगत सत्य है, जीव ब्रह्म से ही उत्पन्न है, ब्रह्म स्वतंत्र है और जीव परतंत्र है।

निंबार्काचार्य वैष्णव धर्म के प्रमुख संप्रदायों में से एक संप्रदाय के आचार्य माने जाते हैं। इनका दार्शनिक मत द्वैताद्वैतवाद कहलाता है। यह संप्रदाय सनक संप्रदाय के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस संप्रदाय के अनुसार जीव ब्रह्म का अंश है तथा जीव ब्रह्म से अभिन्न है तथा भक्ति मुक्ति का साधन है। स्वामी हरिदास के संप्रदाय को सखी संप्रदाय कहा जाता है। वैष्णव भक्ति के संस्थापकों में विष्णु स्वामी का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने रुद्र संप्रदाय का प्रवर्तन किया जिसे विष्णु स्वामी संप्रदाय भी कहते हैं। इनके आराध्य देव भगवान विष्णु हैं। दार्शनिक दृष्टि से इनका दर्शन शुद्धाद्वैतवाद कहलाता है। इनके अनुसार भगवान के अनुग्रह से ही भक्ति प्राप्त होती है। इनकी भक्ति पुष्टि भक्ति कहलाती है।

विशिष्टाद्वैतवाद- आचार्य रामानुजाचार्य
अद्वैतवाद- शंकराचार्य
राधावल्लभ संप्रदाय- स्वामी हित हरिवंश
शुद्धाद्वैतवाद- वल्लभाचार्य
रामावत संप्रदाय- रामानंद
द्वैतवाद- माधवाचार्य
सनक संप्रदाय- निंबार्काचार्य
सखी संप्रदाय- हरिदास
रुद्र संप्रदाय- विष्णु स्वामी
गौड़ीय संप्रदाय- चैतन्य महाप्रभु

बोध प्रश्न

- भक्ति की मूल धारा कब प्रारंभ हुई?
- जॉर्ज ग्रियर्सन क्या मानते हैं?
- भक्ति के उद्भव के संबंध में क्या कहा जाता है?
- द्वैतवाद के संस्थापक कौन थे?
- शंकराचार्य किस दर्शन के संस्थापक माने जाते हैं?
- निंबार्काचार्य का दार्शनिक मत क्या कहलाता है?
- शुद्धाद्वैतवादी दर्शन के संस्थापक कौन थे?

1.3.4 भक्ति के तत्व एवं प्रकार

यदि उपासक की दृष्टि से देखा जाए तो भक्ति के तीन रूप दिखाई देते हैं- श्रद्धा भक्ति, भावना भक्ति और शुद्धा भक्ति। भक्त अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा भाव रखकर उसकी प्रशंसा करता है तो वह श्रद्धा भक्ति कहलाती है। जब भक्त एक में अनेक और अनेक में एक को देखते हुए एकांत भाव से भक्ति करता है तो उसे भावना भक्ति कहते हैं। जब भक्त अपने आराध्य देव को निर्गुण- सगुण अथवा अवतार रूप में स्वीकार कर भक्ति करता है तो उसे शुद्धा भक्ति कहते हैं। 'श्रीमद्भागवत' में भक्ति के अनेक भेद बताए गए हैं - जैसे सात्विकी भक्ति, राजसी भक्ति, तामसी भक्ति, निर्गुण भक्ति और नवधा भक्ति।

सात्विकी भक्ति में भक्त मुक्ति की कामना से आराधना करता है। इसमें सत्व गुण प्रबल होता है। राजसी भक्ति में धन, यश, कुटुंब, घरबार की इच्छा से भक्ति की जाती है। दुश्मनों के नाश की कामना से तामसी भक्ति की जाती है। बिना किसी कामना के जो भक्ति की जाती है उसे निर्गुण भक्ति कहते हैं। ऐसी भक्ति में भगवान के दर्शन मात्र से भक्तों को परम सुख प्राप्त होता है। नवधा भक्ति में 9 प्रकार से भक्ति की जाती है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। यही नवधा भक्ति है। ईश्वर की लीला, कथा, महत्व, शक्ति को परम श्रद्धा के साथ निरंतर, मन से सुनना ही श्रवण कहलाता है। ईश्वर के गुण, चरित्र, नाम, पराक्रम आदि का आनंद और उत्साह के साथ कीर्तन करना ही कीर्तन कहलाता है। निरंतर अनन्य भाव से ईश्वर का स्मरण करना और उनकी शक्ति का सुमिरन करना स्मरण कहलाता है। ईश्वर के चरणों का आश्रय लेना और उन्हीं को अपना सर्वस्व समझना पाद सेवन की ओर संकेत करता है। मन, वचन और कर्म द्वारा पवित्र सामग्री से ईश्वर के चरणों का पूजन करना अर्चन कहलाता है। ईश्वर की मूर्ति को अथवा ईश्वर के अंश रूप में व्याप्त प्रतीक, आचार्य, ब्राह्मण, गुरुजन, माता-पिता आदि को परम आदर्श सत्कार के साथ पवित्र भाव से नमस्कार करना या उनकी सेवा करना वंदन कहलाता है। ईश्वर को स्वामी और अपने को दास समझकर परम श्रद्धा के साथ सेवा करना दास्य भावना की ओर संकेत करता है। ईश्वर को अपना मित्र समझकर अपना सर्वस्व समर्पण कर देना और सच्चे भाव से उनका निवेदन करना ही सख्य भाव कहलाता है। स्वयं को ईश्वर के चरणों में सदा के लिए समर्पित कर देना और स्वयं की स्वतंत्रता न रखना

ही आत्मनिवेदन कहलाता है। भक्तों की सबसे अच्छी अवस्था यही मानी गई है। 'रामचरितमानस' के अरण्य कांड में नवधा भक्ति का सुंदर चित्रण किया गया है।

जीवों के प्रति दया और सेवा का भाव रखकर परोपकार करते हुए आगे बढ़ते रहें तो वह किसी भी भजन-कीर्तन से कहीं ज्यादा है। मनुष्य को यह संकल्प लेना चाहिए कि वह जहाँ भी रहे, जो भी कार्य करें उसमें निष्ठा का भाव हो। यही सच्ची भक्ति है। भक्ति का पथ सबके लिए खुला है। भक्ति मार्ग अपनाने वाले सभी मानव और आडंबर के साथ पूजा-पाठ करने के बजाय ईश्वर के प्रति लगन और व्यक्तिगत पूजा पर बल देते हैं। जो दूसरों की खुशी में सुख खोजता है वही सच्चा भक्त है। जो दूसरों को सुख बाँटता है ऐसा इंसान ईश्वर को प्रिय होता है। धर्म शास्त्रों में भी कहा गया है कि निष्कपट व्यवहार करने वाले प्राणी-मात्र से प्रेम करने वाले ही सच्चे भक्ति के अधिकारी होते हैं।

बोध प्रश्न

- सात्विकी भक्ति क्या है?
- 'रामचरितमानस' के किस कांड में नवधा भक्ति का चित्रण है?
- नवधा भक्ति कितने प्रकार की होती है?

1.3.5 भक्ति की धाराएँ

भक्ति मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ संपदा है। इस विश्व ब्रह्मांड के समस्त अणु-परमाणु आदि अदृश्य शक्ति ईश्वर की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। जो लोग इस तथ्य को अच्छी तरह समझ कर इस अनुभूति को अपने हृदय में हमेशा संजोकर रखते हैं, उन्हीं का अस्तित्व और जीवन सार्थक है। वही सच्चे भक्त हैं। भक्ति की दो धाराएँ हैं- निर्गुण भक्ति धारा और सगुण भक्ति धारा।

निर्गुण भक्ति धारा

निर्गुण भक्ति में ईश्वर का कोई आकार नहीं होता है। निर्गुण शब्द का अर्थ है विशेषता रहित या गुण रहित या स्वरूप रहित। निर्गुण भक्ति काव्य की दो धाराएँ हैं - ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। ज्ञानाश्रयी शाखा को संत शाखा भी कहा जाता है। यह राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न भावनात्मक एवं अनुभूति-जन्य काव्य है। कबीर संत काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। इस धारा के अन्य प्रमुख कवियों में रैदास अर्थात रविदास, दादू दयाल, गुरु नानक देव, मलूक दास, रज्जब, सुंदर दास आदि। प्रेममार्गी अथवा प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि हैं जायसी।

सगुण भक्ति धारा

सगुण भक्ति धारा में ईश्वर के सगुण और साकार रूप की पूजा-अर्चना की जाती है। सगुण भक्ति में यह माना गया है कि ईश्वर अपनी इच्छा से लीला के लिए अवतरित होते हैं। जगत या संसार ईश्वर से ही उत्पन्न होता है किंतु ब्रह्म, जीव और जगत की कल्पना अलग-अलग की गई है। ज्ञान, कर्म, ऐश्वर्य, प्रेम, ईश्वर की विभूतियाँ हैं। सगुण भक्ति धारा दो शाखाओं में विभक्त है- कृष्ण भक्ति शाखा और राम भक्ति शाखा।

बोध प्रश्न

- भक्ति की कितनी धाराएँ हैं?
- निर्गुण से क्या आशय है?
- सगुण का क्या अर्थ है?

1.3.5.1 निर्गुण भक्ति काव्य

यह भक्ति काव्य की दो शाखाएँ हैं - ज्ञानाश्रयी शाखा या ज्ञानमार्गी शाखा तथा प्रेमाश्रयी शाखा या प्रेममार्गी। इन दोनों शाखाओं की विशेषताएँ और काव्य परंपरा अलग-अलग हैं।

ज्ञानमार्गी शाखा

ज्ञानमार्गी शाखा को संत शाखा भी कहा जाता है और संत काव्य की अपनी विशेषताएँ हैं। राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप रचित भावनात्मक एवं अनुभूतिप्रवण जन-काव्य संत काव्य कहलाता है। कबीर संत काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि हैं। इस धारा के अन्य कवियों में रैदास, दादू दयाल मलूकदास, रज्जब, सुंदरदास, गुरुनानक देव आदि आते हैं। अनेक वर्ष बीत जाने के पश्चात भी संत काव्य आज भी प्रासंगिक है। आज जीवन की आपाधापी में बहुत कुछ पीछे छूटता जा रहा है। कबीर कहते हैं-

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोइ।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होइ।।

कबीर की ये पंक्तियाँ मानवीय संवेदनाओं को जागृत करती हैं। निर्गुण ब्रह्म में आस्था, ज्ञान पर बल, गुरु का महत्व, जात-पात का विरोध, बहुदेववाद का खंडन, रूढ़ियों और बाह्य आडंबरों का विरोध, नारी विषयक दृष्टिकोण, भजन तथा नाम स्मरण की महिमा आदि संत काव्य की प्रवृत्तियाँ हैं। सभी संत कवियों ने निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म में विश्वास रखा है। उनका मानना था कि ईश्वर तमाम गुणों से ऊपर है। वह सर्वशक्तिमान है और कण-कण में व्याप्त है। उनका ईश्वर अगम, अगोचर और निर्विकार है। उसे कहीं ढूँढने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में विद्यमान है। निर्गुण और निराकार ब्रह्म में विश्वास होने के कारण इन कवियों ने बहुदेववाद और अवतारवाद का विरोध किया। उनका ईश्वर घट-घट व्यापी है। उनके अनुसार ईश्वर के मानव रूप में अवतार लेने की धारणा व्यर्थ है क्योंकि उनकी सत्ता तमाम बंधनों से परे है और वह सर्वव्यापी है। संत कवियों के अनुसार ईश्वर की सत्ता सभी देवी देवताओं से ऊपर है। इन कवियों ने अपनी वाणी में गुरु को सर्वाधिक महत्व दिया है। उन्होंने गुरु को ईश्वर से भी ऊपर माना है क्योंकि गुरु के द्वारा दिए गए ज्ञान से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। तभी तो कबीर कहते हैं-

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो मिलाय।।

संत कवि क्रांतिकारी कवियों के रूप में भी विख्यात हैं। उन कवियों ने समाज में व्याप्त कर्मकांडों, अंधविश्वासों, कुरीतियों और दुराचारों का निर्भीक स्वर में विरोध किया है। उनका

लक्ष्य सदैव सामाजिक सुधार रहा है। इसीलिए वह समाज को सामाजिक, धार्मिक, नैतिक कमजोरियों से सचेत करना चाहते थे। हिंदू और मुस्लिम दोनों ही धर्मों में फैले कर्मकांड और मूर्तिपूजा, छापा तिलक, रोजा, नमाज, तीर्थ, व्रत आदि आडंबरों का खूब विरोध किया है। मूर्तिपूजा के संबंध में कबीर ने एक ओर जहाँ हिंदुओं को फटकारा, वहीं दूसरी ओर मुस्लिम धर्म में फैली कुरीतियों को भी स्पष्ट करते हुए उन्हें भी फटकारा। जाति-पांति तथा वर्ण व्यवस्था का डटकर विरोध किया गया है।

संत कवियों ने सामाजिक विषमताओं को दूर करने और मानव धर्म की स्थापना के लिए समाज में जाति और वर्ण के नाम पर किए जाने वाले भेदभाव का विरोध किया है। इन कवियों ने सहज भक्ति तथा नाम स्मरण पर बल दिया है। उनकी मान्यता है कि पाखंड और आडंबर मुक्त भक्ति ही ईश्वर को प्राप्त करने में सहायक होती है। भक्ति में प्रेम का सर्वाधिक महत्व है। संत कवियों में रहस्यवाद की भावना भी दिखाई देती है क्योंकि, ईश्वर की अज्ञात सत्ता को जानने की प्रबल इच्छा इन कवियों में है। अतः आत्मा और परमात्मा की स्थिति का वर्णन संत साहित्य में दिखाई देता है। सभी संत कवियों ने अपनी वाणी में माया से सावधान रहने की चेतावनी दी है क्योंकि, ईश्वर की भक्ति और उपासना में यह बाधा डालती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि माया के पाँच पुत्र हैं। संत कवियों ने नारी को माया का प्रतीक मानते हुए नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है। कबीर का मानना है कि जिस तरह माया के आकर्षण में फँसकर मानव ईश्वर को भूल जाता है, वही स्थिति स्त्री मोह में पड़ने से होती है।

संत कवियों का भाषा प्रयोग अलग ढंग का है। इन्होंने लोक-भाषा में साहित्य की रचना की है। इनका लक्ष्य समाज सुधार और विश्व-धर्म का संदेश देना था। इनकी भाषा को सधुक्कड़ी नाम दिया गया है, क्योंकि ये सब घुमक्कड़ साधु थे जो अनेक स्थानों पर भ्रमण किया करते थे। इन्होंने लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी अपने साहित्य में किया है। इस तरह यह कहा जा सकता है कि भक्तिकाल में संत काव्यधारा का अपना विशेष स्थान और महत्व रहा है। संत काव्यधारा के कवि और उनकी कविताएँ आज भी प्रासंगिक हैं। धार्मिक सहिष्णुता को संत कवियों ने सामाजिक विकास के लिए आवश्यक माना।

बोध प्रश्न

- सामाजिक विकास के लिए संत कवियों ने किसे आवश्यक माना?

प्रेममार्गी शाखा

निर्गुण धारा की दूसरी शाखा प्रेममार्गी शाखा कहलाती है। जहाँ एक ओर संत शाखा में ज्ञान को महत्व दिया गया, वहीं दूसरी ओर प्रेममार्गी शाखा में ईश्वर भक्ति के लिए प्रेम को महत्व दिया गया है। इस शाखा के कवि हैं जायसी, कुतबन, मंझन, उसमान आदि। जायसी को इस धारा का प्रतिनिधि कवि माना जाता है। सूफी काव्य धारा में अधिकांश कवि मुसलमान हैं लेकिन इनमें धार्मिक कट्टरता का अभाव है। इन्होंने सूफी मत के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदू घरों में प्रचलित प्रेम कहानियों को अपने काव्य का विषय बनाया।

हिंदी के प्रथम सूफी कवि मुल्ला दाऊद माने जाते हैं जबकि आचार्य शुक्ल ने हिंदी का प्रथम सूफी कवि कुतुबन को माना है। सूफी शब्द 'सूफ़' से बना है जिसका अर्थ है पवित्र। सूफी

लोग सफेद ऊन के बने चोगे पहनते थे। उनका आचरण पवित्र एवं शुद्ध होता था। इस काव्यधारा को प्रेममार्गी, प्रेमाश्रयी आदि नामों से जाना जाता है। भारत में इस मत का आगमन नवीं-दसवीं शताब्दी में हो गया था लेकिन इसके प्रचार-प्रसार का श्रेय ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती को है। सूफी साधना में ईश्वर की कल्पना पत्नी के रूप में तथा साधक की कल्पना पति के रूप में की गई है। मानवीय प्रेम की प्रतिष्ठापन ही सूफी काव्य का प्रमुख उद्देश्य है। सूफी काव्य में प्रेम भावना भारतीय प्रेम से कुछ अलग है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन रचनाओं पर फ़ारसी मसनवी शैली का प्रभाव बताया है। प्रेम गाथाओं का नामकरण नायिकाओं के नाम के आधार पर किया है। इनमें अलौकिक प्रेम की व्यंजना दिखाई देती है। नायक-नायिका के चरित्र चित्रण में एक जैसी पद्धति प्रयोग की गई है। लोक पक्ष एवं हिंदू संस्कृति का चित्रण है। शृंगार रस की प्रधानता है। किसी संप्रदाय के खंडन-मंडन का अभाव दिखाई देता है। क्षेत्रीय बोलियों और अवधी भाषा का प्रयोग कविताओं में किया गया है। 'पद्मावत' जायसी का प्रसिद्ध ग्रंथ है। कुतुबन के ग्रंथ का नाम है 'मृगावती', मंझन के ग्रंथ का नाम है 'मधुमालती', दामोदर कवि की रचना का नाम है 'लखनसेन पद्मावती कथा', ईश्वरदास की रचना है 'सत्यवती कथा', उस्मान की 'चित्रावली', नूर मोहम्मद की रचना है 'इंद्रावती', जान कवि की रचना है 'कथारूप मंजरी', पुहकर कवि की रचना है 'रसरतन'।

बोध प्रश्न

- सूफी काव्य का उद्देश्य क्या है?
- हिंदी के प्रथम सूफी कवि कौन हैं?
- जायसी की प्रसिद्ध रचना का नाम क्या है?

1.3.6 भक्ति की विशेषताएँ एवं महत्व

भक्ति मानव जीवन का प्राण है। जिस प्रकार पौधे का पोषण जल तथा वायु द्वारा होता है, उसी प्रकार मानव हृदय भक्ति से ही सशक्त और सुखी होता है। भक्ति वह प्यास है जो कभी बुझती नहीं और न कभी उसका विनाश होता है। वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहती है। समस्त धर्म ग्रंथों का सार भक्ति ही है। इसके ही बीजारोपण हेतु भगवान की विभिन्न कथाओं का प्रचार किया जाता है। भक्ति को ज्ञान, कर्मयोग से श्रेष्ठ कहा गया है। 'भागवत' में भी यह माना गया है कि विश्व के कल्याण का भाव भक्तिमार्ग पर निर्भर करता है। काव्य में न केवल जीवन का वर्णन होता है बल्कि उसकी व्याख्या भी होती है। व्यापक मानवीय शक्तियों का अन्वेषण या उद्घाटन कविताओं में होता है। यह जीवन की व्याख्या करते हुए उसे सार्थकता प्रदान करती है। कविता मानव एकता की प्रतिष्ठा करने का एक साधन है तो भक्ति मन को एकाग्र करने का साधन। मानव और समाज के लिए जैसे काव्य का विशेष महत्व होता है, वैसे ही मानव जीवन के उत्कर्ष हेतु भक्ति अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। डॉ. श्याम सुंदर दास ने भक्तिकाल के संबंध में कहा है कि "जिस युग में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी जैसे रस सिद्ध कवियों और

महात्माओं की दिव्य वाणी उनके अंतःकरण से निकलकर देश के कोने-कोने में फैली थी, उसे साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल कहते हैं। निश्चय ही वह हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग है।"

भक्ति साहित्य और निर्गुण भक्ति साहित्य की विशेषताओं तथा महत्व को इस प्रकार समझा जा सकता है। इस काल में 'नाम का विशेष महत्व' रहा है। कीर्तन, भजन आदि में भगवान के गुणों का वर्णन सभी शाखाओं के कवियों ने किया कबीर ने गुरु के महत्व को रूपायित करते हुए कहा है-

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पांय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय।

'भक्ति भावना की प्रधानता' निर्गुण साहित्य की एक विशेष प्रवृत्ति रही है। कबीर ने तो यहाँ तक कहा है कि हरि की भक्ति जाने बिना संसार बूढ़ा होकर मर जाता है।

निर्गुण भक्ति साहित्य में आडंबरों का विरोध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सभी बाह्य आडंबरों का विरोध निर्गुण भक्ति साहित्य की विशेषता है। कबीर कहते हैं-

जपमाला छापा तिलक, सरै न एकौ कामु।
मं-काँचै नाचे वृथा, साँचे राँचे रामु॥

समन्वय भावना, अलौकिक साहित्य, दरबारी साहित्य का त्याग, काव्य रूप आदि अनेक प्रवृत्तियाँ निर्गुण भक्ति काव्य के केंद्र में रही हैं। भक्तिकाल की पृष्ठभूमि, भक्तिकाल की कविता, भक्तिकाल के कवियों की समाजवादी दृष्टि, विश्वबंधुत्व की भावना, भक्तिकाल की विशेष परिस्थितियाँ, भक्ति- ज्ञान- दर्शन की भावना, भाषा- शैली एवं सगुण तथा निर्गुण में समन्वय की चेष्टा आदि भक्ति साहित्य के महत्व को प्रतिपादित करते हैं।

बोध प्रश्न

- भक्ति साहित्य की कुछ विशेषताएँ बताइए।
- भक्ति काल का महत्व क्या है?

1.4 पाठ सार

जिसके विचारों में पवित्रता हो, जो अहंकार से दूर हो, जो किसी वर्ग विशेष में न बंधा न हो, जो सबके प्रति समभाव रखने वाला हो, सदा सेवा का भाव मन में रखता हो, ऐसे व्यक्ति-विशेष को हम भक्त का दर्जा देते हैं। नर सेवा में नारायण सेवा की अनुभूति होने लगे, ऐसी अनुभूति सच्ची भक्ति कहलाती है। भक्तों के लिए समस्त सृष्टि प्रभुमय हो जाती है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं - 'जो पुरुष आकांक्षा से रहित, दक्ष, पवित्र और पक्षपात रहित है, वह सुखों का त्यागी, मेरा भक्त - मुझे प्रिय है।' किंतु इस भागती-दौड़ती और तनाव भरी जिंदगी में हम कई बार प्रार्थना में ईश्वर से ईश्वर को नहीं माँगते बल्कि सांसारिक संसाधनों से ही तृप्त हो जाते हैं। भक्त ही एकमात्र ऐसा साधन है जो हृदय से यदि भगवान को याद करे तो परमपिता भी स्वयं उसके अधीन हो जाते हैं। इसीलिए कहा गया है कि सच्ची भक्ति से भगवान भी भक्त के वश में हो जाते हैं।

भक्ति भाव का आधार प्रेम, श्रद्धा और समर्पण है। मन में भक्ति भाव के उठने के बाद भक्तों के व्यक्तित्व से नकारात्मक गुण दूर हो जाते हैं और उसके व्यक्तित्व का उन्नयन होने लगता है। भक्त अहंकार से मुक्त होकर अपने अंतस-चेतना में ईश्वर की अनुभूति करने लगता है। भक्ति परंपरा को निर्गुण और सगुण में बाँटा गया है। निर्गुणधारा को ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी शाखा के रूप में बाँटा गया है। इन दोनों शाखाओं की अपनी अलग-अलग विशेषता और साहित्य है।

1.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. भक्ति साहित्य को दो धाराओं में विभक्त किया जाता है - निर्गुण भक्तिधारा और सगुण भक्तिधारा।
2. निर्गुण भक्ति धारा की दो शाखाएँ हैं - ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी।
3. ज्ञानमार्गी शाखा को संतकाव्य भी कहा जाता है। इसमें निर्गुण ब्रह्म की उपासना के साथ-साथ प्रायः सभी संतों ने समाज सुधार पर विशेष बल दिया है।
4. प्रेममार्गी शाखा को प्रमाख्यानक काव्य और सूफी काव्य के नाम से भी जाना जाता है। इसमें निर्गुण ब्रह्म की उपासना प्रेम पात्र के रूप में वर्णित है।

1.6 शब्द संपदा

1. अंतर्विरोध	= आपसी मतभेद
2. अवधारणा	= संकल्पना
3. अवसाद	= गहरी निराशा
4. चित्तवृत्ति	= मन की स्थिति
5. परिलक्षित	= दिखाई देना
6. लोकोन्मुखता	= लोगों की ओर उन्मुख
7. समकालीन परिवेश	= अपने समय का वातावरण
8. सरस	= रसयुक्त
9. सर्वहारा वर्ग	= सामान्य वर्ग
10. सृजन	= निर्माण करना

1.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. भक्ति का उद्भव और विकास बताते हुए उसके स्वरूप की चर्चा कीजिए।
2. भक्ति का महत्व बताते हुए उसकी प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।
3. भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग क्यों कहा जा सकता है?
4. निर्गुण भक्तिधारा में संत काव्य के महत्व पर प्रकाश डालिए।

5. निर्गुण भक्ति की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. मानव और समाज पर भक्ति का क्या प्रभाव पड़ता है?
2. भक्ति की विभिन्न पद्धतियों की चर्चा कीजिए।
3. निर्गुण भक्ति क्या है और नवधा भक्ति से क्या अभिप्राय है?
4. भक्ति के कितने तत्व माने जाते हैं?
5. संत काव्य की प्रवृत्तियों की चर्चा कीजिए।
6. निर्गुण और सगुण धारा के मध्य अंतर को स्पष्ट कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. इनमें से कौन से कवि आचार्य अलंकारवादी हैं- ( )
   (अ) बिहारी (ब) केशवदास (स) घनानंद
2. संत कवियों के दार्शनिक सिद्धांतों का मूलाधार है - ( )
   (अ) शुद्धाद्वैतवाद (ब) नाथ पंथ (स) अद्वैत वेदांत
3. मंझन इस शाखा के कवि हैं - ( )
   (अ) कृष्णमार्गी शाखा (ब) प्रेममार्गी शाखा (स) ज्ञानमार्गी शाखा
4. प्रबंधकाव्य के प्रकार हैं - ( )
   (अ) छः (ब) दो (स) पाँच
5. इनमें से कौनसा नाम ज्ञानमार्गी कवि है . ( )
   (अ) बिहारी (ब) केशव (स) कबीर

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1. ……………. शाखा में ईश्वर भक्ति के लिए प्रेम को महत्व दिया गया है।
2. संत कवि………ब्रह्म पर विश्वास करते हैं।
3. निर्गुण भक्ति की ……… शाखाएँ हैं।
4. संत कवियों के अनुसार ईश्वर की सत्ता सभी …………… से ऊपर है
5. ज्ञान पर आश्रित भक्ति को………के अंतर्गत माना जाता है।

III. सुमेल कीजिए -

1. कबीरदास	(अ) मसनवी शैली
2. सूफी कवि	(आ) नौ प्रकार
3. नवधा भक्ति	(इ) गुरु गोविंद दोऊ खड़े

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य की भूमिका : हजारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिंदी साहित्य - उद्भव और विकास : हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. कबीर और जायसी का रहस्यवाद तथा तुलनात्मक अध्ययन : गोविंद त्रिगुणायत
5. आधुनिक हिंदी काव्य : (सं) धीरेंद्र वर्मा एवं रामकुमार वर्मा
6. हिंदी साहित्य का इतिहास : (सं) नगेंद्र
7. हिंदी भक्ति साहित्य में सौंदर्यबोध : निर्मला एस. मौर्य

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी
Estd. 1998
MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY

इकाई 2 : सगुण भक्ति काव्य

रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 मूल पाठ : सगुण भक्ति काव्य
2.3.1 भक्ति काल
2.3.2 भक्ति काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
2.3.3 राम भक्ति काव्य परंपरा
2.3.4 राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि : तुलसीदास
2.3.5 कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा
2.3.6 कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि : सूरदास
2.4 पाठ सार
2.5 पाठ की उपलब्धियाँ
2.6 शब्द संपदा
2.7 परीक्षार्थ प्रश्न
2.8 पठनीय पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल को दो भागों में बाँटा गया है- निर्गुण एवं सगुण। निर्गुण धारा में निराकार ईश्वर की कल्पना की गई है तो सगुण काव्यधारा में साकार रूपी ईश्वर की कल्पना की गई है। निर्गुण काव्यधारा में संत कवि और प्रेमाश्रय कवियों का अध्ययन किया गया है। निर्गुण धारा के प्रमुख संत कवि कबीर को माना जाता है। वैसे ही प्रेमाश्रय धारा में प्रमुख कवि जायसी को माना जाता है। सगुण काव्य धारा को भी दो भागों में बाँटा गया है - रामभक्ति काव्यधारा और कृष्णभक्ति काव्यधारा।

सगुण भक्ति से तात्पर्य है- ईश्वर के सगुण रूप की भक्ति है अर्थात अपने आराध्य के रूप और गुण की आराधना। सगुण भक्ति का आधार है ईश्वर के आकार की कल्पना करना और उस कल्पना के माध्यम से ईश्वर का गुणगान करना। ईश्वर के सगुण रूप को प्रतिष्ठित करने वाले मत को सगुणवाद या सगुण काव्य कहा जाता है। सगुण भक्तिकाव्य में न केवल ईश्वर के अवतारवादी रूप की प्रतिष्ठा की गई है अपितु उसके निराकार-निर्गुण रूप का खंडन भी किया गया है। हिंदी साहित्य में भक्ति काव्य के अंतर्गत सगुण काव्यधारा की दो शाखाएँ मानी गई हैं जिसमें एक रामभक्ति शाखा और दूसरी कृष्णभक्ति शाखा है। भगवान विष्णु के एक अवतार कृष्ण एवं उनके जीवन को आधार बनाकर जो काव्य रचा गया उसे कृष्णभक्ति काव्य की संज्ञा दी गई। इसी तरह विष्णु के ही एक और अवतार राम एवं उनके जीवन को आधार बनाकर जो काव्य रचा गया उसे रामभक्ति काव्य की संज्ञा दी गई। रामानंद को सगुण भक्ति काव्य का प्रारंभिक कवि माना गया है। छात्रो! इस इकाई में सगुण भक्ति काव्य का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

1. भक्तिकाल की सगुण भक्ति काव्यधारा के विकास से परिचित हो सकेंगे।
2. रामभक्ति काव्य धारा की परंपरा से अवगत हो सकेंगे।
3. कृष्णभक्ति काव्य धारा की परंपरा से अवगत हो सकेंगे।
4. रामभक्ति काव्य के प्रमुख रचनाकार तुलसीदास के बारे में जान सकेंगे।
5. कृष्ण भक्ति धारा के प्रमुख रचनाकार सूरदास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.3 मूल पाठ : सगुण भक्ति काव्य

2.3.1 भक्ति काल

आदिकाल के उपरांत, 14 वीं शताब्दी के मध्य से 19 वीं शताब्दी के मध्य तक के 500 वर्ष के लंबे काल खंड को हिंदी साहित्य के इतिहास में 'मध्यकाल' के नाम से पुकारा जाता है। इस पूरे काल की चेतना 'मध्यकालीन चेतना' है। 'मध्यकालीन चेतना' से अभिप्राय उस चिंतन परंपरा से है जिसमें व्यापक समाज की अपेक्षा उन संस्थाओं को केंद्रीय महत्व दिया जाता है जो समाज का संचालन करती हैं। ये संस्थाएँ हैं - धार्मिक सत्ता और राजनैतिक सत्ता। इनमें से धार्मिक सत्ता भक्ति आंदोलन के रूप में 17 वीं शती के मध्य तक प्रमुख रही, इसलिए 1350 से 1650 ई. तक के काल को पूर्व मध्यकाल अथवा भक्तिकाल कहना तर्क संगत है। इसके बाद 1850 ई. तक की अवधि को उत्तर मध्य काल या रीतिकाल कहा जाता है।

मिश्रबंधुओं द्वारा दिए गए नाम की तुलना में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अधिक परिष्कृत नामकरण प्रस्तुत किया। उन्होंने मध्यकाल को पूर्वमध्यकाल (सं.1375-1700) और उत्तर मध्यकाल (सं.1700-1900) में विभाजित किया। जैसे कि आप जानते हैं, पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल (सं.1375-1700, तदनुसार, 1318-1643ई.) तथा उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल (सं.1700-1900) के नाम से मान्यता मिली। यहाँ भक्ति काल पर दृष्टि केंद्रित करेंगे।

भक्तिकाल की चार मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं, जिन्हें भक्तिधाराओं और शाखाओं के नाम से जाना जाता है। इसका वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है –

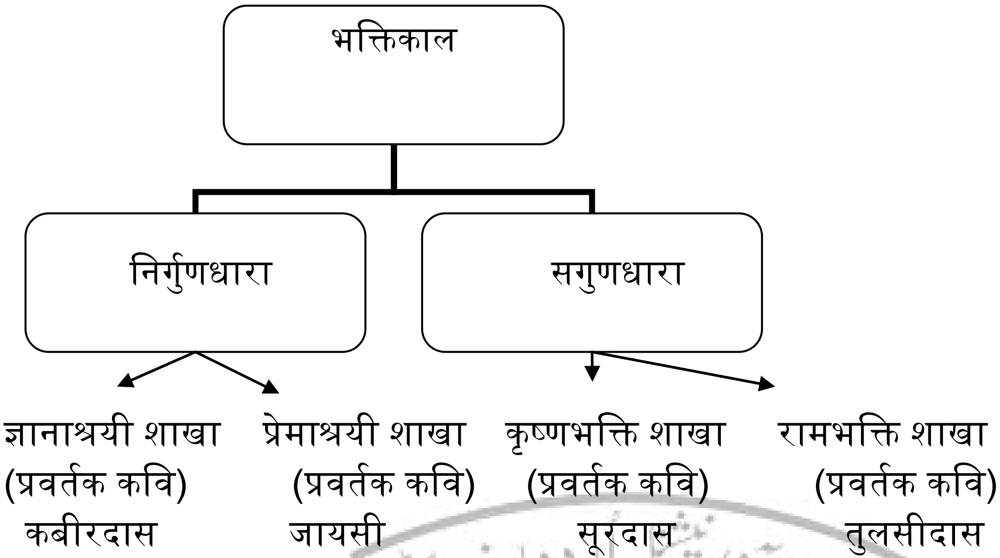

बोध प्रश्न

- भक्तिकाल को कितने भागों में बाँटा गया है?

2.3.2 भक्ति काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रिय छात्रो! भारत के इतिहास को देखने से यह पता चलता है कि मध्यकाल में समूचे भारत वर्ष में भक्ति आंदोलन का प्रचार-प्रसार था। इसका अर्थ है कि भक्ति को व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना से आगे बढ़कर सामाजिक-सांस्कृतिक अभियान का रूप दिया गया। भक्ति का प्रारंभ कैसे हुआ, इस प्रश्न का उत्तर विद्वानों ने अपनी-अपनी तरह से दिया है। जार्ज ग्रियर्सन ने भक्ति-भावना को ईसाई धर्म का प्रभाव माना किंतु उनकी इस बात को किसी ने स्वीकार नहीं किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति के प्रारंभ को तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों की देन माना। लेकिन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परिस्थितियों से अधिक महत्व परंपरा को दिया। अधिक संतुलित मतभेद हो सकते हैं कि भक्ति आंदोलन के उदय के लिए परिस्थितियों और परंपराओं दोनों का ही महत्व रहा।

उल्लेखनीय है कि भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण भारत में आलवार और नायनार संतों के माध्यम से हुआ। बाद में 800 ई. से 1700 ई. के बीच यह उत्तर भारत सहित समूचे दक्षिण एशिया में फैल गया। माना जाता है कि बौद्धमत की प्रतिक्रिया के रूप में शंकराचार्य ने इस आंदोलन को नेतृत्व प्रदान किया। संत बसवेश्वर, चैतन्य महाप्रभु, नामदेव, तुकाराम, जयदेव, शंकरदेव, गुरु नानक, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, रैदास, मीराँबाई आदि के माध्यम से इसने व्यापक जनजागरण आंदोलन का रूप लिया और सारे समाज को गहराई तक प्रभावित किया।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में, "भक्ति के लिए यह स्वाभाविक हो गया कि वह बिखरी हुई शक्तियों में सामंजस्य लाकर अपनी दृष्टि किसी एक में निविष्ट करें। फलस्वरूप बहुदेवों की कल्पना सिमटकर धीरे-धीरे एक में ही समाहित होने लगी और कहा जाने लगा कि लोग उसी (संत) को इंद्र, वरुण या अग्नि के नाम से पुकारते हैं, इस एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा होने के बाद भक्ति के रूप में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा। पहले जहाँ प्रकृति का दैवीकरण किया गया वहीं अब देवों का मानवीकरण होने लगा जिसे आगे चलकर अवतारवाद कहा गया।"

बोध प्रश्न

- भक्ति काल का प्रारंभ कहाँ से हुआ है?

2.3.3 रामभक्ति काव्य परंपरा

भक्तिकाल में सगुणमार्गीय कवियों का एक वर्ग रामभक्ति काव्यधारा के रूप में माना जाता है। इसमें सगुण भक्ति के आलंबन के रूप में विष्णु के अवतार राम की प्रतिष्ठा है। यहाँ राम का अर्थ परब्रह्म या ऐसी शक्ति है जिसमें सभी देवता रमण करें। बाद में यह दशरथ पुत्र राम का वाचक बन गया। राम उत्तरवैदिक काल के दिव्य महापुरुष माने जाते हैं। राम कथा विषयक गाथाएँ कब से रची जाती रही हैं, यह कहना कठिन है। फिर भी पश्चिमी विद्वानों का अनुमान है कि वाल्मीकि ने आदिकाव्य 'रामायण' की रचना ग्यारहवीं शती ईसा पूर्व तीसरी शती ईसा पूर्व के बीच कभी की होगी, जिसमें मौखिक रूप में प्रचलन के कारण बहुत सा परिवर्तन हुआ।

वाल्मीकि ने रामकथा को ऐसा मार्मिक रूप प्रदान किया कि वह जनता और कवियों दोनों में समान रूप से आकर्षक और लोकप्रिय बन गई। विविध देशी-विदेशी भाषाओं में राम काव्य की लंबी परंपरा है। ईस्वी सन् के प्रारंभ में राम को विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकृति मिलनी शुरू हुई, परंतु भक्ति के क्षेत्र में राम की प्रतिष्ठा विशेष रूप से ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी के आसपास मानी जाती है। तमिल आलवारों की भक्ति रचनाओं में राम का निरंतर उल्लेख प्राप्त होता है। नौवीं शताब्दी के कुलशेखर आलवार के पदों में प्रौढ़ रामभक्ति अंकित है। ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर रामभक्ति संबंधी काव्य रचनाओं की संख्या बढ़ने लगी। पंद्रहवीं शताब्दी से लेकर राष्ट्रीय, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों में राम का लोकरक्षक रूप इतना अधिक प्रासंगिक सिद्ध हुआ कि तब से समस्त राम काव्य भक्ति भाव से ओतप्रोत होने लगा। यहाँ तक कि रामकथा की लोकप्रियता के कारण निर्गुण संत कवियों को भी 'राम-नाम' का सहारा लेना पड़ा।

फादर कामिल बुल्के का मत है कि "हिंदी साहित्य के आदिकाल में रामानंद ने उत्तर भारत में जनसाधारण की भाषा में राम-भक्ति का प्रचार किया था। इसके फलस्वरूप हिंदी राम साहित्य आधुनिक काल को छोड़कर प्रायः भक्ति भावना से ओतप्रोत है।" हिंदी में राम साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित मानी गई हैं -

लोकमंगल की साधना : रामभक्ति काव्य लोकमंगल की साधना को अपना निमित्त मानती है। इसलिए यहाँ राम भक्ति और कविता का आधार लौकिक है। लोकमंगल की साधना हेतु ही रामभक्ति काव्यधारा के कवियों ने कर्म संघर्ष का चित्रण किया है। संघर्ष परंपरा में भी विवेक, लोकमंगल और मर्यादा बनाए रखना राम का आदर्श है। यही सहजता और मर्यादा राम काव्य की विशिष्टता है। तुलसीदास 'परहित' को सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते हैं और 'पर-पीड़ा' को अधर्म।

समन्वयात्मक जीवन दृष्टि : भारतीय समाज में विद्यमान नाना प्रकार की परस्पर विरोधी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचारनिष्ठा और प्रचलित विचार पद्धतियों पर गहन चिंतन मनन करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह स्पष्ट किया है कि "भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो।" राम काव्य में समन्वय की विपुल भावना मिलती है।

दास्य भक्ति की प्रधानता : विवेच्य काव्यधारा दास्य भक्ति भावना को अपनाती है। दास्य भाव को चेतना के स्तर पर स्वीकार करने वाली यह भक्ति संपूर्ण आत्मार्पण पर आधारित है जो मनुष्य को भीतर से संपृक्त करती है।

ब्रह्म की उभयात्मक अवधारणा : राम भक्ति काव्य में ब्रह्म की उभयात्मक अवधारणा मिलती है। वह मूर्त-अमूर्त, व्यक्त-अव्यक्त, चल-अचल आदि सभी रूपों में विद्यमान है।

गहन राजनैतिक बोध : भक्तिकालीन राम काव्य की यह अन्यतम विशेषता है कि इसमें तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों का मूल्यांकन किया गया है। समकालीन राजनीति की प्रकृति इस काव्य में साफ दिखाई देती है जिसके कारण समाज में अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हुई हैं। कविता एक तरह की नैतिक ढाल है जो पाठक को उसके कर्तव्यों और दायित्वों का सांस्कृतिक-राजनैतिक बोध कराती है। तुलसी ऐसी राजनैतिक व्यवस्था की माँग करते हैं जिसमें कोई दरिद्र न हो, कोई दुखी न हो और जहाँ प्रजा रक्षणहीन न हो अर्थात ऐसे राज्य में अन्याय से जनता की रक्षा की जा सके।

वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थन : भक्तिकाल की अन्य काव्यधाराएँ जहाँ वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध करती हैं वहीं राम भक्ति काव्यधारा इस व्यवस्था का समर्थन करती है।

नारी के प्रति दृष्टिकोण : नारी के प्रति राम कवियों की दृष्टि अनेक अवसरों पर उदार रही किंतु कुछ जगहों पर ये कवि अपनी युगीन सीमाओं का अतिक्रमण न कर सके। नारी के प्रति सामंती दृष्टिकोण उस युग का सच था। तुलसीदास अपनी स्त्री उदारता के बावजूद कई जगह पितृसत्तात्मक सोच का समर्थन करते दिखाई देते हैं - ढोल गंवार, शूद्र, पशु, नारी/ सकल ताड़ना के अधिकारी।

युग-जीवन का यथार्थ चित्रण : हिंदी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अस्थिरता का युग था। इसलिए युग-जीवन का यथार्थ चित्रण में राम काव्य की महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसमें धार्मिक अराजकता, शिक्षा-व्यवस्था, आर्थिक विपन्नता, दैविक आपदाएँ आदि का सजीव चित्रण मिलता है।

काव्य संगठन : कला-पक्ष के स्तर पर राम काव्य में अनेक विविधताएँ हैं। लोक-भाषाओं की दृष्टि से तुलसी का साहित्य अप्रतिम है।

तुलसी के समकालीन कवियों में अग्रदास (पदावली, ध्यान मंजरी) और नाभादास (रामचरित के पद) का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार मुनिलाल (रामप्रकाश), केशवदास (रामचंद्रिका), सोठी महरबान (आदिरामायण), प्राणचंद, हृदयराम (हनुमन्नाटक), रामानंद (लक्ष्मणायन) और माधवदास (रामरासो) भी तुलसी के समकालीन अन्य राम साहित्य के उन्नायक हैं। तुलसी के बाद प्राणचंद चौहान (रामायण महानाटक), लालदास (अवध विलास), सेनापति (कवित्त रत्नाकर) और नरहरिदास (अवतार चरित) का इस परंपरा में उल्लेख किया जा सकता है।

बोध प्रश्न

- हिंदी राम काव्य की तीन विशेषताएँ बताइए।

2.3.4 राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि : तुलसीदास

तुलसीदास के जन्म समय को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। अधिकतर विद्वानों ने उनका जन्म 1532 ई. तथा निधन 1623 ई. में माना है। उनके जन्मस्थान को लेकर भी काफी मतभेद हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनका जन्मस्थान राजापुर माना है। (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.72)। लेकिन नवीन शोध से अब यह सिद्ध हो गया है कि उनका जन्म-स्थान सोरों था। इस संबंध में डॉ. रामकुमार वर्मा कहते हैं कि "जितनी सामग्री इस संबंध में उपलब्ध हुई है उसकी परीक्षा करने से तुलसीदास की जन्मभूमि का निर्धारण सोरों के पक्ष में अधिक युक्तिसंगत ज्ञात होता है।" (हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 346)।

जनश्रुति के अनुसार इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे तथा माता का नाम हुलसी था। कहा जाता है कि जन्म लेते ही रोने के स्थान पर 'राम' शब्द बोलने के कारण उनका नाम 'रामबोला' रखा गया। परंतु माता-पिता ने अशुभ समझकर उन्हें त्याग दिया था। इस बात की पुष्टि स्वयं तुलसी ने की है - "मातु पिता जग जाय तज्यों विधिहू न लिखी कुछ भाल भलाई।" इस परित्यक्त बालक का लालन-पालन दासी मुनिया ने किया। पाँच वर्ष बाद मुनिया की मृत्यु हो जाने पर बाबा नरहरिदास ने उन्हें अपने पास रखा और शिक्षा-दीक्षा दी। उन्होंने ही इन्हें 'तुलसीदास' नाम दिया। बाल्यकाल में उन्हीं से सर्वप्रथम तुलसी ने रामकथा सुनी और इन्हीं के साथ ये काशी गए।

जनश्रुति के आधार पर तुलसी की पत्नी का नाम रत्नावली माना जाता है। ये अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे। कहा जाता है कि एक बार रत्नावली तुलसी को बिना बताए उनकी अनुपस्थिति में अपने मायके चली गईं। तुलसी को पता चला तो वे उनके विरह में न रह सके और रात को ही नदी पार कर ससुराल जा पहुँचे। उन्हें उस अवस्था में आया देखकर पत्नी को लज्जा आई और उन्होंने तुलसी से कहा -

लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥

कहा जाता है कि पत्नी की इन बातों को सुनकर उनका मोह भंग हो गया और उनका नारी-प्रेम नारायण-प्रेम में परिवर्तित हो गया। वैराग्य ग्रहण करने के बाद वे कुछ दिन काशी में रहकर अयोध्या चले गए। अयोध्या में ही उन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना आरंभ की और इसे दो वर्ष सात माह में समाप्त किया। तुलसीदास का व्यक्तित्व उनके ग्रंथों में बहुत स्पष्ट होकर प्रकट हुआ है। अत्यंत विनम्र भाव और सच्ची अनुभूति के साथ अपने आराध्य पर अटूट विश्वास उनके व्यक्तित्व के प्रधान तत्व हैं।

कृतित्व

सन 1923 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) ने 'तुलसी ग्रंथावली' का प्रकाशन खंड 1 और 2 के रूप में किया। इसमें तुलसीदास की 12 रचनाएँ शामिल हैं - 1. रामचरितमानस, 2. रामलला नहछू, 3. वैराग्य संदीपिनी, 4. बरवै रामायण, 5. पार्वती मंगल, 6. जानकी मंगल, 7.

रामाज्ञा प्रश्न, 8. दोहावली, 9. कवितावली, 10. गीतावली, 11. श्रीकृष्ण गीतावली और 12. विनय पत्रिका।

बोध प्रश्न

- तुलसी का नारी-प्रेम नारायण-प्रेम में कैसे परिवर्तित हो गया?

2.3.5 कृष्णभक्ति काव्य परंपरा

सगुण मार्गीय भक्ति काव्य में कृष्ण को आराध्य मानने वाले कवियों ने कृष्ण काव्य परंपरा का विकास किया। भारतीय संस्कृति में कृष्ण का व्यक्तित्व अत्यंत विलक्षण माना जाता है। कृष्ण की कथा ऋग्वेद, उपनिषद, महाभारत तथा हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि में तो उपलब्ध है। साथ-साथ यह भी विश्वास किया जाता है कि वह मौखिक रूप में लोक में भी प्रचलित रही है, जिसमें समय-समय पर अनेक काल्पनिक प्रसंग और रूपक जुड़ते चले गए। एक ओर कृष्ण योगी और परमपुरुष हैं, तो दूसरी ओर ललित और मधुर गोपाल हैं तथा तीसरी ओर वे एक वीर राजनयिक हैं। उनके ये तीनों रूप उसी 'परमद्वैत' रूप के अधीन विकसित हुए हैं जो प्राचीन समय से 'वासुदेव' के रूप में लोकप्रिय था। इसकी चरम परिणति अंततः साक्षात परब्रह्म में हुई। लोक साहित्य में कृष्ण के विषय में असंख्य आख्यान उपलब्ध होते हैं जिनसे प्रेरित होकर बारहवीं शताब्दी में जयदेव ने संस्कृत में 'गीत गोविंद' की रचना की जिसे राधा-कृष्ण संबंधी प्रथम काव्य रचना माना जाता है। इसे भक्ति और शृंगार का अनुपम माधुर्य मंडित गीतिकाव्य कहा गया है।

इस परंपरा में हिंदी में सबसे पहली साहित्यिक अभिव्यक्ति चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में विद्यापति की 'पदावली' के रूप में हुई। इसे हिंदी कृष्ण काव्य की पहली रचना होने का गौरव प्राप्त है। इसमें राधाकृष्ण के प्रेम का वर्णन और लौकिक शृंगार का भी निरूपण किया गया है। साथ ही भक्ति के माधुर्य भाव से संपन्न 'उज्ज्वल शृंगार' का भी निरूपण किया गया है। यही कारण है कि विद्यापति की 'पदावली' रसिकों और भक्तों दोनों ही में समान लोकप्रिय रही है। यहाँ तक कि चैतन्य महाप्रभु तक को उसने अपने अपरूप सौंदर्य वर्णन और प्रेम प्रवणता से रसमग्न किया है। वास्तव में भक्ति और शृंगार की विभाजक रेखा कितनी सूक्ष्म हो सकती है इसे विद्यापति के काव्य में ही देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न

- जयदेव कृत 'गीत गोविंद' को क्या कहा जाता है?
- विद्यापति की 'पदावली' की क्या विशेषता है?

अष्टच्छाप

महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्ग में सूरदास सहित आठ कृष्ण भक्त कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है जिन्हें 'अष्टछाप' के नाम से जाना जाता है। ये हैं - सूरदास, कुंभनदास, परमानंद दास, कृष्णदास, नंददास, गोविंद स्वामी, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। इन समस्त कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास का स्थान निःसंदेह सर्वोपरि है।

बोध प्रश्न

- अष्टछाप किसे कहते हैं?

सगुण काव्यधारा की विशेषताएँ

सगुण काव्यधारा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

लीलावाद में अखंड विश्वास : चित्त की निर्विकरता और मानवीय आचरण की मूर्तता के समानांतर रिश्ते को ही लीला के नाम से जाना जाता है। कृष्ण काव्य परंपरा में परम ब्रह्म कृष्ण के लौकिक व्यवहारों को लीला के रूप में चित्रित किया गया है।

वात्सल्य का विशद चित्रण : कृष्ण भक्त कवियों का मानना है कि केवल वात्सल्य ही भक्ति का सर्व शुद्ध भाव होता है जिसमें न तो विरक्ति की भावना होती है न ही किसी इंद्रीय सुख की कामना। कृष्ण के जन्म से उनके मथुरा जाने तक के समय को चित्रित करते हुए कृष्ण भक्त कवियों ने वात्सल्य-पूर्ण अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं।

प्रेम की विराट कल्पना: प्रेम सूर साहित्य की पूँजी है। यह बचपन के निरंतर साथ और सान्निध्य से उपजा प्रेम है। कृष्ण भक्त कवियों ने अन्य धाराओं के भक्त कवियों की तरह प्रतीकात्मक और श्रद्धा से संयमित प्रेम को नहीं अपनाया। कृष्ण भक्ति काव्य के कवियों ने नारी हृदय के वियोग को अभिव्यक्त कर उसे मार्मिकता तो प्रदान किया है परंतु पिता के माध्यम से पुरुषत्व रूपी पहाड़ के नीचे जो दुख का अवरिल झरना बह रहा है, उस मूक पीड़ा को जिस चतुराई से इन कवियों ने उभारा है वह सराहनीय है।

भ्रमरगीत की मौलिक उद्भावना : आध्यात्मिक स्तर पर ज्ञान और भक्ति की टकराहट में भक्ति को सर्वोत्कृष्ट तथा सगुणोपासना की श्रेष्ठता पर बल देता है भ्रमरगीत प्रसंग।

2.3.6 कृष्णभक्ति शाखा के प्रमुख कवि : सूरदास

सूरदास के जन्म काल तथा जीवन के बारे में प्रामाणिक जानकारी के अभाव में अलग-अलग इतिहासकारों ने उनके कुछ पदों एवं किंवदंतियों के आधार पर अलग-अलग मत निर्धारित किए हैं। अधिक मान्य धारणा यह है कि सूरदास का जन्म सं. 1535 वि. (1478 ई.) की बैसाख शुक्ल पंचमी को बल्लभगढ़ (गुड़गाँव) के निकट सीही नामक गाँव में हुआ है। इनका देहावसान 1583 ई. में हुआ। यह माना जाता है 'सूरदास' अंधे थे। लेकिन इस बात पर विवाद है कि वे जन्म से अंधे थे या बाद में अंधे हुए। उनकी भेंट 1509-1510 ई. में महाप्रभु वल्लभाचार्य से हुई। वल्लभाचार्य के शिष्य बनने के बाद उनके आदेश से सूरदास ने सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव से पूर्ण कृष्ण भक्ति के पदों की रचना आरंभ की। माना जाता है कि इससे पहले वे दास्य भाव और विनय के पद रचकर गाया करते थे। वल्लभाचार्य के संप्रदाय में दीक्षित होने से पहले उन पर रामानंदी दास्य-भक्ति का प्रभाव था। अतः उनके आरंभिक पद दास्य भावना से पूर्ण थे। परंतु बाद में वल्लभाचार्य के आग्रह पर वे पुष्टिमार्ग संप्रदाय में सम्मिलित हो गए और सख्य भावनापूर्ण भक्ति-पदों की रचना की। श्रीनाथ मंदिर में रहकर अपने दीर्घ जीवनकाल में सूरदास ने श्रीमद् भागवत के आधार पर कृष्ण संबंधी लगभग सवा लाख पदों की रचना की। उल्लेखनीय है कि पूर्व-संस्कार, जन्मजात प्रतिभा, गुणियों के सत्संग और निजी अभ्यास के कारण छोटी आयु में ही सूरदास विभिन्न विद्याओं के ज्ञाता हो गए थे। इनकी ख्याति गायक और महात्मा के नाते खूब फैली। स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इन्हें 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा था।

सूरदास ने जिन सवा लाख पदों की रचना की थी उनमें से अभी तक केवल पाँच हजार पद ही प्राप्त हुए हैं जिनका संकलन 'सूरसागर' नामक ग्रंथ में है। इसकी मूल प्रतियों का रचना काल भी अज्ञात है। 'सूरसागर' में बारह स्कंध हैं और कथा-प्रवाह भी उसी के समान है, परंतु यह भागवत का अनुवाद न होकर मौलिक रचना है। मौलिकता की दृष्टि से सूरदास के 'सूरसागर' में चार प्रसंग बहुत उत्कृष्ट हैं -

(i) बाल-कृष्ण का मनोवैज्ञानिक चित्र।

(ii) शृंगार-रस के अंतर्गत ऋतु-वर्णन और नख-शिख वर्णन।

(iii) कृष्ण और राधा का प्रेम।

(iv) वियोग शृंगार के अंतर्गत भ्रमर-गीत।

नागरी प्रचारिणी सभा की अनुसंधान विवरण-पत्रिका में सूरदास कृत 24 ग्रंथों का उल्लेख है। उनमें 'सूरसागर' के अतिरिक्त 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी' का विशेष स्थान है। लेकिन डॉ.ब्रजेश्वर वर्मा और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इन दोनों ग्रंथों को अप्रामाणिक मानते हैं। अतः 'सूरसागर' को ही सूरदास का प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है।

बोध प्रश्न

- मौलिकता की दृष्टि से सूरदास के 'सूरसागर' में क्या प्रसंग अंकित है?

2.4 पाठ सार

सूरदास और तुलसीदास सगुण काव्यधारा के महत्वपूर्ण महाकवि हैं। दोनों का उद्देश्य भक्ति की धारा में बहना था। तुलसी ने भक्ति के साथ तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक स्थिति को समझते हुए अपने काव्यकर्म में एक आदर्श समाज की स्थापना हेतु भी राम नाम का तीर चलाया। उनका काव्य भक्ति के साथ लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत था। दूसरी ओर सूरदास कृष्ण के बालचरित्र, क्रीड़ाओं, गोचारण और रास में स्वयं को भूल गए। इस कारण उनके काव्य में भक्ति, गीति और कवित्व की त्रिवेणी है। सूर काव्य की रचना स्वांतःसुखाय है, तो तुलसीदास ने काव्य को सर्वजन-सुखाय की दिशा में प्रवर्तित किया। सूर के कृष्ण लोकरंजक हैं, तो तुलसी के राम लोकरक्षक। सूर में माधुर्य और प्रेम की तन्मयता है, तो तुलसी के राम में शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है। जहाँ सूर की भक्ति सख्य, माधुर्य और दैन्य भाव की है, वहीं तुलसी दास्य-भाव के भक्त हैं। संयुक्त रूप से सगुण-भक्तिधारा के ये दोनों प्रमुख कवि भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष के उद्घाटन में निपुण थे। अलंकार, छंद, रस, भाषा शैली के जादूगर थे, जिससे किसी को भी मोह लेते थे। निःसंदेह भक्ति काल का साहित्य 'स्वांतः सुखाय' रचा गया था, किंतु अपनी व्यापक समाज दृष्टि के कारण अंततः यह 'स्वांतः सुखाय' सिद्ध हुआ।

2.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. सगुण भक्ति साहित्य की दो प्रमुख शाखाएँ हैं - कृष्ण भक्ति शाखा और राम भक्ति शाखा।

2. निर्गुण भक्ति में निराकार ब्रह्म की साधना की जाती है, जबकि सगुण भक्ति में ब्रह्म के साकार रूप अर्थात अवतारों की आराधना की जाती है।
3. हिंदी के सगुण भक्ति साहित्य में विष्णु के दस अवतारों में से प्रमुख दो अवतारों - कृष्ण और राम की आराधना का विधान है।
4. सगुण भक्ति में आराध्य देव की लीलाओं का वर्णन प्रमुख स्थान रखता है।
5. कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास हैं। उन्होंने वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव से युक्त कृष्णकाव्य की रचना की है।
6. राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं - तुलसीदास। उन्होंने अपने आराध्य राम के चरित्र और लीलाओं का दास्य भाव के साथ विनयपूर्वक वर्णन किया है।
7. सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' और तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' सगुण भक्ति काव्य के सिरमौर ग्रंथ हैं।
8. सूरदास ने कृष्ण के लोकरंजक रूप का वर्णन किया है तो तुलसीदास ने राम के मर्यादा पुरुषोत्तम और लोकरक्षक रूप का वर्णन किया है।
9. तुलसी ने मध्यकाल में बिखरते हुए जीवन मूल्यों के संकटकाल में राम के रूप में भारतीयों को एक आदर्श चरित्र प्रदान किया। इसलिए तुलसी को लोकनायक कहा जाता है।

2.6 शब्द संपदा

1. उदात्तीकरण = किसी चीज को उसके श्रेष्ठ रूप में प्रस्तुत करना
2. दास्य भाव = सेवा भाव
3. राजनयिक = कूटनीतिज्ञ
4. वात्सल्य = प्रेम, स्नेह
5. स्वावलंबी = आत्मनिर्भर

2.7 परिक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

I. दीर्घ उत्तरी प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. भक्तिकाल के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. सगुण भक्ति काव्यधारा पर प्रकाश डालिए।
3. सगुण काव्यधारा के प्रमुख कवियों के बारे में संक्षेप में लिखिए।

खंड (ब)

II. लघु उत्तरी प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. तुलसीदास का लोकनायक के रूप में विवेचन कीजिए।
2. सूरदास की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।
3. तुलसी की भक्ति भावना को स्पष्ट कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. नागरी प्रचारिणी सभा ने तुलसीदास के कितने ग्रंथों को प्रामाणिक माना है? (   )
   (अ) 12   (आ) 15   (इ) 6   (ई) 10
2. सूरदास का जन्म कहाँ हुआ? (   )
   (अ) पारसौली   (आ) सीही   (इ) गऊघाट   (ई) अयोध्या
3. सूरदास की प्रामाणिक रचना कौन-सी है? (   )
   (अ) सूरसागर   (आ) सूरसारावली   (इ) साहित्य लहरी   (ई) श्रीमद् भागवत

II. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए -

1. सूर साहित्य की पूँजी .... है।
2. महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सूरदास को .... कहा है।
3. 'रामचरितमानस' के रचनाकार .... हैं।

III. सुमेल कीजिए -

1. ज्ञान मार्गी	(अ) मलिक मोहम्मद जायसी
2. प्रेम मार्गी	(ब) तुलसीदास
3. रामभक्ति	(क) सूरदास
4. कृष्ण भक्ति	(ड) कबीर

2.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं. नगेंद्र और हरदयाल
3. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : गणपतिचंद्र गुप्त

इकाई 3 : रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य

रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मूल पाठ : रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य
3.3.1 'रीति' शब्द का अर्थ और इतिहास
3.3.2 'रीति' की परिभाषा और स्वरूप
3.3.3 रीतिकाल : संक्षिप्त परिचय
3.3.4 रीतिकाल की प्रमुख काव्यधाराएँ
3.3.5 रीतिबद्ध काव्यधारा का विकास
3.3.6 रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि
3.3.7 रीतिसिद्ध काव्यधारा का विकास व विशेषताएँ
3.3.8 रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि
3.4 पाठ सार
3.5 पाठ की उपलब्धियाँ
3.6 शब्द संपदा
3.7 परीक्षार्थ प्रश्न
3.8 पठनीय पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल एक महत्वपूर्ण काल है। इस काल को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा गया है - रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। इसके अतिरिक्त एक काव्यधारा 'राष्ट्रीय चेतना' की काव्याधारा को भी स्वीकार किया जाता है। इस इकाई में दो काव्यधाराओं रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध का अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- 'रीति' शब्द के अर्थ, परिभाषा, इतिहास और स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकाल की प्रमुख काव्यधाराओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- 'रीतिबद्ध' काव्यधारा के विकास क्रम को समझ सकेंगे।
- 'रीतिबद्ध' काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि केशवदास के जीवन परिचय और काव्यगत विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।
- अन्य रीतिबद्ध कवियों यथा-चिंतामणि, पद्माकर, मतिराम आदि के विषय में संक्षिप्त रूप से जान सकेंगे।
- 'रीतिसिद्ध' काव्यधारा के विकास और उसकी विशेषताओं को समझ सकेंगे।

- 'रीतिसिद्ध' काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि बिहारी के विषय में जान सकेंगे।

3.3 मूल पाठ : रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य

3.3.1 'रीति' शब्द का अर्थ और इतिहास

'रीति' शब्द को एक काव्य परिपाटी के रूप में ग्रहण किया जाता है। संस्कृत में 'रीति' शब्द उस काव्यांग विशेष के लिए ही रूढ़ है, जिसे काव्य की आत्मा के रूप में घोषित कर आचार्य वामन ने तत्संबंधी पृथक संप्रदाय का प्रवर्तक किया। उनके अनुसार गुण विशिष्ट रचना, अर्थात् पदसंघटना-पद्धति विशेष का नाम 'रीति' है। इस संबंध में डॉ. नगेंद्र एवं डॉ. हरदयाल ने बताया है कि ' 'रीति' शब्द संस्कृत के समान हिंदी में भी बहुत पहले से काव्य रचना-पद्धति के लिए रूढ़ है। रीति शब्द को इसी रूढ़ अर्थ में ग्रहण करते हुए कह सकते हैं कि 'रीतिकाव्य' वह काव्य है जिसकी रचना विशिष्ट पद्धति अथवा नियमों को दृष्टि में रखकर की गई हो।'

हिंदी में 'रीति' शब्द का अपना एक अलग अर्थ है। यह संभव है कि शुरुआत में हिंदी में रीति शब्द का मूल संकेत रीति-संप्रदाय से ही लिया गया हो, परंतु वास्तव में यहाँ इसका प्रयोग सर्वथा सामान्य और व्यापक अर्थ में ही हुआ है। यहाँ काव्य-रचना संबंधी नियमों के विधान को ही समग्रतः 'रीति' नाम दे दिया गया है। 'रीति' शब्द का यह विशिष्ट प्रयोग हिंदी का अपना प्रयोग है। रीतिकाल के अनेक कवियों ने प्रायः आरंभ से ही काव्य की रीति, अलंकार-रीति, कविता रीति आदि का प्रयोग स्पष्ट रूप से ही इसी अर्थ में किया है-

1. अपनी-अपनी रीति के काव्य और कवि-रीति - देव (शब्द रसायन)
2. काव्य की रीति सिखी सुकवीन सों, देखी सुनी बहु लोक की बातें - दास (काव्य निर्णय)
3. कवित्त - रीति कछु कहट हौं व्यंग्य अर्थ चित्त लाय - प्रतापसाहि (व्यंग्यार्थ कौमुदी)

आज हिंदी के लगभग सभी विद्वान, आलोचक एवं इतिहासकार केशव, बिहारी, देव, पद्माकर आदि के काव्य विशेष को, जिसमें रचना संबंधी नियमों का विवेचन अथवा उन नियमों का बंधन है, 'रीतिकाव्य' के नाम से ही पुकारते हैं।

3.3.2 'रीति' की परिभाषा और स्वरूप

वामन ने रीति को विशिष्ट पद रचना कहा है - 'विशिष्ट पद रचना रीतिः'। उन्होंने पद रचना के वैशिष्ट्य को विभिन्न गुणों के संश्लेषण पर आश्रित माना है। वामन के अनुसार 'रीति' पद रचना का वह प्रकार है जो दोषों से मुक्त हो एवं गुणों से अनिवार्यतः तथा अलंकारों से साधारणतः संपन्न हो।

आचार्य कुंतक ने रीति को कवि-कर्म की विधि कहा है। भोज ने भी उसका अर्थ काव्य-मार्ग किया है। आनंदवर्धन ने अपने मत को थोड़ा और स्पष्ट करते हुए उसे 'वाक्य वाचक चारुत्व हेतु' कहा है। उन्होंने कहा कि रीति वह विधि है जिसके द्वारा काव्य के शरीर, शब्द और अर्थ में चारुता आती है। बाद में मम्मट और आचार्य विश्वनाथ ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए रीति विवेचन को सर्वथा निर्भ्रांत बना दिया है- 'पद संघटना रीतिरंग संस्थानवत'।

वामन का यह विश्वास था कि समस्त पदों के कुशल प्रयोग एवं शब्दों तथा वर्णों के सही चयन के द्वारा अथवा भावों का क्रम बाँधने या उनको सजाकर रखने से ही प्रायः काव्य-सौंदर्य

की सृष्टि होती है। अतः वे उन्हीं को आधार मानकर काव्य के बाह्य रूप का वस्तुगत रूप का विश्लेषण करते रहे।

3.3.3 रीतिकाल : संक्षिप्त परिचय

हिंदी साहित्य में रीतिकाल तीसरे काल के रूप में आता है। इसे ही उत्तरमध्यकाल (रीतिकाल, संवत् 1700-1900) कहा जाता है। रीतिकाल के कई अन्य नाम भी हैं जो विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गए हैं। मिश्रबंधु - अलंकृतकाल, आचार्य रामचंद्र शुक्ल - उत्तर मध्यकाल, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - शृंगारकाल तथा रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' - कलाकाल। रीतिकालीन काव्य को मुख्यत: तीन भागों में बाँटा जाता है -(क) रीतिबद्ध, (ख) रीतिसिद्ध, (ग) रीतिमुक्त। डॉ. बच्चन सिंह ने रीतिकालीन कवियों के इस विभाजन के शब्दों को थोड़ा उलट दिया है। उन्होंने रीतिबद्ध को 'बद्धरीति काव्य', रीतिमुक्त को 'मुक्तरीति काव्य' शब्द से अभिहित किया है। भूषण अवश्य ही राष्ट्रीय चेतना का काम कर रहे थे। इस काल के प्रमुख कवियों में केशवदास, चिंतामणि, पद्माकर, मतिराम, देव, बिहारी, भूषण, रसलीन आदि उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न

- रीतिकालीन काव्य को कितने भागों में बाँटा जाता है?

3.3.4 रीतिकाल की प्रमुख काव्य धाराएँ

रीतिबद्ध काव्यधारा

रीतिबद्ध काव्यधारा के कवि तत्कालीन परंपरा से बंधे हुए थे। ये लोग काव्यांग निरूपण के लिए कविताएँ किया करते थे। काव्यांग निरूपण का अर्थ है-काव्य के अंगों का निरूपण करना या उसके विषय में बताना। ये आचार्य कवि होते थे। काव्य के अंगों यथा-रस, छंद, अलंकार आदि के विषय में अपनी रचनाओं के माध्यम से उदाहरण देकर बताया करते थे। एक बात इनमें अवश्य थी कि ये अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन भी खूब किया करते थे। उसका कारण था मान-सम्मान और धनराशि की प्राप्ति। ये काव्यांगों का लक्षण अपने ग्रंथों में बताया करते थे। इसलिए इन्हें 'लक्षण ग्रंथकार' भी कहा जाता है। इन कवियों ने संस्कृत साहित्य के इस तरह के ग्रंथों का अध्ययन किया। उनकी मदद ली और अपनी रचनाओं में सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। इन्हें आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'रीति-ग्रंथकार' कहा। नगेंद्र इन्हें 'रीतिकार' या 'आचार्य कवि' कहना पसंद करते हैं। इन सबके बीच विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इन्हें 'रीतिबद्ध कवि' कहना उचित समझते हैं। वर्तमान में रीतिबद्ध ही सर्वाधिक स्वीकृत और प्रचलित है। इस काव्यधारा के अंतर्गत चिंतामणि, केशवदास आदि को स्वीकार किया जाता है।

रीतिसिद्ध काव्यधारा

रीतिसिद्ध के अंतर्गत उन कवियों को शामिल किया जाता है जिन्होंने अपने आचार्यत्व का प्रदर्शन नहीं किया। रीतिबद्ध में विद्वत्ता, काव्यशास्त्रीयता के माध्यम से अपना वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास दिखता है परंतु यहाँ (रीतिसिद्ध में) ऐसा नहीं दिखता। रीतिसिद्ध कवियों ने काव्य सिद्धांतों, रस, छंद, अलंकारों पर कहीं-कहीं ध्यान दिया तो कहीं-कहीं नहीं दिया। विद्वत्ता

का परिचय देना इनका ध्येय नहीं है। इस काव्यधारा के अंतर्गत बिहारी को प्रमुख रूप से शामिल किया जाता है।

रीतिमुक्त काव्यधारा

रीतिमुक्त काव्यधारा में कवियों ने रीतिबद्ध वाली विशेषता का पालन नहीं किया। इन्होंने नायिका का नख-शिख वर्णन भले ही किया हो लेकिन उसके जरिए किसी प्रकार के काव्यांग विवेचन की कोशिश नहीं की। इन कवियों ने अपनी विद्वत्ता या आचार्यत्व का प्रदर्शन नहीं किया। रीतिमुक्त काव्यधारा में भी कई तरह के काव्य दिखते हैं। कुछ तो रीतिमुक्त शृंगारी कविताएँ हैं, कुछ पौराणिक और कुछ लौकिक प्रबंध काव्य हैं। कुछ नीति और उपदेश विषयक कविताएँ हैं और कुछ भक्ति और ज्ञान विषयक उपदेश के काव्य हैं। इस काव्यधारा के प्रमुख कवियों में बेनी, सेनापति, द्विजदेव, मुबारक, आलम, घनानंद, बोधा, ठाकुर आदि उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रीय चेतना की काव्यधारा

इस काव्यधारा को सामान्यतः उपर्युक्त तीनों काव्यधाराओं के अंतर्गत ही स्वीकार कर लिया जाता है लेकिन वर्तमान में इसे भी एक महत्वपूर्ण काव्यधारा के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। भूषण इसके प्रमुख कवि हैं। भूषण का काव्य ओजपूर्ण और वीर रस से ओतप्रोत है। इन्होंने शृंगारिक परंपरा का अनुगमन न करके वीर परंपरा का मार्ग प्रशस्त किया।

बोध प्रश्न

- राष्ट्रीय चेतना की काव्यधारा के अंतर्गत भूषण को क्यों स्वीकार किया जाना चाहिए?

3.3.5 रीतिबद्ध काव्यधारा का विकास

रीतिबद्ध कवियों के साथ यह बात खुले तौर से जुड़ी है कि ये किसी न किसी राजा-बादशाह के आश्रित रहकर काव्य रचना करते थे तथा रचना के जरिए अपनी विद्वत्ता का परिचय भी राजा के सामने देते थे ताकि राजा भी विद्वत्ता पर मोहित हो जाय और खुश होकर कोई जागीर दे दे। रीतिबद्ध काव्यधारा के कवि राजाओं की रुचि को जानकार उनके मनोरंजन, उनके या उनके किसी अन्य प्रिय के प्रशिक्षण आदि हेतु भी रचनाएँ किया करते थे। यदि हम केशव को ही देखें तो उनकी कई रचनाएँ हैं। इनमें 'कविप्रिया' की रचना करने का मूल उद्देश्य ओरछा नरेश के दरबार में रहने वाली प्रधान नर्तकी प्रवीण राय को कविता के संबंध में जानकारी देना था। इस धारा के कवियों ने संस्कृत ग्रंथों से सहायता ली। इसके तो प्रमाण मिलते हैं लेकिन अपने आचार्यत्व के बल पर कोई मौलिक सिद्धांत दिया हो इसके प्रमाण नहीं मिलते हैं।

रीतिबद्ध कवियों के मुख्यतः तीन वर्ग दिखते हैं जो निमलिखित हैं-

1. अलंकार निरूपक आचार्य 2. रस तथा नायक-नायिका भेद निरूपक आचार्य 3. सर्वांग निरूपक आचार्य

रीतिबद्ध काव्यधारा के अंतर्गत केशव, चिंतामणि, पद्माकर, मतिराम, देव, भिखारीदास, रसलीन आदि स्वीकार किए जाते हैं।

बोध प्रश्न

- रीतिबद्ध काव्यधारा में किस तरह के आचार्यों को स्वीकार किया जाता है?

3.3.6 रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि

केशवदास का जीवन परिचय

केशवदास का जन्म 1546 ई. में हुआ था। मृत्यु 1618 ई. में हुई थी। इनके पिता का नाम काशीनाथ था। ये अलंकारवादी आचार्य थे। काव्य में अलंकार के महत्व को स्वीकार करते थे। इन्होंने स्वयं लिखा है-

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त॥

इन्होंने भामह, दंडी, उद्भट जैसे आचार्यों का अनुसरण किया। अलंकार शब्द का प्रयोग इन्होंने विशिष्ट अर्थ में किया है। अलंकारों के लक्षण इन्होंने दंडी के 'काव्यादर्श', साथ ही बहुत सी बातें अमर रचित 'काव्यकल्पलतावृत्ति' और केशवमिश्र कृत 'अलंकार शेखर' से ग्रहण की थीं। इन्होंने अलंकारों पर 'कविप्रिया' और रस 'रसिकप्रिया' नामक किताब लिखी। इनकी महत्ता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है जो रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि 'केशव की रचना में सूर, तुलसी आदि की सरसता और तन्मयता चाहे न हो पर काव्यांगों का विस्तृत परिचय कराकर उन्होंने आगे के लिए मार्ग खोला।' ये बड़े ही रसिक मिजाज जीव थे। इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है की ये एक बार किसी कुएँ पर बैठे थे। ये उस समय वृद्ध हो चुके थे। बाल सफेद-सफेद हो चुके थे। वहाँ स्त्रियों ने इन्हें 'बाबा' कहकर बुलाया। इन्होंने कहा-

केसव केसनि अस करी बैरिहू जस न कराहिं।
चंद्रबदनि मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिं॥

केशव के रचित ग्रंथों में कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, वीर सिंहदेव चरित, विज्ञान गीता, रतनबावनी, जहांगीर जसचंद्रिका उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न

- केशव का मिजाज कैसा था?

3.3.6.2 केशवदास की रचनाएँ और काव्यगत विशेषताएँ

(क) केशवदास की रचनाएँ

(1) कविप्रिया- इसमें केशव ने कवि शिक्षा की बातें लिखी हैं। इसके 16 प्रभावों में कवि के लिए काव्य-रचना में उपयोगी अनेक बातों का विवरण दिया गया है। इसमें प्रमुख प्रसंग काव्य-दोष, कवि-भेद, वर्णन के प्रकार, सामान्यालंकार, राजश्री, विशिष्टालंकार (जिसमें वास्तव में अलंकारों का विविध भेदों सहित वर्णन है), नख-शिख, चित्रालंकार आदि के वर्णन हैं। इसमें विशेष कोशिश यह है कि अलंकारों के वर्गीकरण को दिखाया जा सके। यह वर्गीकरण उक्ति, उपमा, तुलना, शब्दावृत्ति, अनेकार्थता, कार्य-कारण संबंध आदि के आधार पर किया गया है।

(2) रसिकप्रिया- यह इनकी एक प्रौढ़ रचना है। इसमें उदाहरणों की चतुराई से काम लिया गया है साथ ही इसके पद विन्यास भी बहुत अच्छे हैं। इन उदाहरणों में वाग्वैदग्ध्य के साथ-साथ सरसता भी पाई जाती है। 'रसिकप्रिया' रसिकों की तृप्ति के लिए है। केशव ने कहा है-

अति रति गति मति एक करि, विविध विवेक विलास।
रसिकन को रसिक प्रिया, कीन्हीं केशवदास॥

रसिक प्रिया में केशव ने रस की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के द्वारा प्रकाशित स्थायी भाव है।

मिलि विभाव अनुभाव पुनि, संचारी सुअनूप।
व्यंग्य करै थिर भाव जो, सोई रस सुख रूप॥

(3) रामचंद्रिका- रामचंद्रिका केशव की एक प्रसिद्ध काव्य रचना है। लेकिन इसमें वह गांभीर्य नहीं है जो इस तरह की धार्मिक कथा वाली रचनाओं में होता है। यह प्रभु राम से संबंधित रचना है। केशव उक्ति वैचित्र्य और शब्द क्रीडा के प्रेमी थे। इसीलिए इसमें गंभीरता और जीवन के गंभीर और मार्मिक पक्षों पर उनका ध्यान नहीं जा पाया है। इसका एक कारण है, उनके आस पास का माहौल। वे एक दरबार में रहते थे। इसलिए वहाँ के राजनीतिक दांव-पेंच तो हैं लेकिन तुलसी के रामचरितमानस की तरह मार्मिकता और गंभीरता नहीं है। केशव को प्राकृतिक दृश्यों में भी कोई खास रुचि नहीं थी। केशव को रामचंद्रिका के संवादों में अच्छी सफलता मिली है। इसमें कई तरह के छंदों का प्रयोग है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है 'रामचंद्रिका छंदों का अजायबघर है'।

(4) वीरसिंहदेव चरित- यह एक प्रबंध काव्य है। हालांकि रामचंद्र शुक्ल इसे प्रबंध काव्य मानने के पक्ष में नहीं हैं। इसमें वीरसिंह देव का चरित तो थोड़ा है, दान, लोभ आदि के संवाद खूब हैं।

(5) विज्ञानगीता- विज्ञानगीता एक आध्यात्मिक ग्रंथ है। यह संस्कृत नाटक 'प्रबोध चंद्रोदय' के आधार पर रचित काव्य है। इसमें वैराग्य से संबंधित भावनाओं को दिखाया गया है। यह भक्ति और ज्ञान से संबंधित रचना है।

(6) रतनबावनी- इसमें इंद्रजीत के बड़े भाई रतन सिंह की वीरता का छप्पयों में अच्छा वर्णन है। यह वीर रस का अच्छा काव्य है।

(7) जहांगीरजस चंद्रिका- इसमें जहांगीर की प्रशंसा की गई हैं। कारण साफ है कि उनसे इन्हें लाभ प्राप्त हो रहा था। यह वीरगाथा परंपरा की रचना है।

बोध प्रश्न

- 'रामचंद्रिका' के संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने क्या कहा?
- 'विज्ञानगीता' किस प्रकार का ग्रंथ है?

(ख) काव्यगत विशेषताएँ

1. आचार्य और कवि- केशवदास को हम एक आचार्य के रूप में जितना अधिक जानते हैं उतना अधिक उन्हें कवि के रूप में नहीं जानते। उन्होंने अपने आचार्यत्व का प्रदर्शन अधिक किया है। उनका कवि रूप कम ही दिखता है। रामचंद्र शुक्ल ने सत्य ही लिखा है 'केशव को कवि हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए।' इनके यहाँ आलोचकों को काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है। इसीलिए इन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' भी कहा गया है।

2. पांडित्य प्रदर्शन- इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि राजा के दरबार में यदि अपनी धाक जमानी है तो अपने पांडित्य का प्रदर्शन तो करना ही होगा। ध्यान में रखना चाहिए कि दरबारों में पुस्तकें लेकर नहीं बैठा जाता वहाँ तो सुनना और सुनाना यही चलता है। साथ ही काव्य आदि से संबंधित प्रतियोगिताओं में विजयी होना भी जरूरी होता है। इससे मान-सम्मान में वृद्धि होती है, साथ की धन-वैभव में भी बढ़ोत्तरी होती है। अभिजात्य व पढे-लिखे वर्ग को आकर्षित करने के लिए विभिन्न अलंकारों और वाक्य चातुर्य का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। केशव ने इसमें भी कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। वह समय मुग़ल शासन-प्रशासन का था। फारसी का प्रभाव था। वहाँ वाह-वाही लूटना भी केशव के लिए जरूरी था। इसलिए उन्होंने अपने काव्य में पांडित्य प्रदर्शन खूब जमकर किया है।

3. प्रकृति वर्णन- केशव राजदरबार और शासन-प्रशासन के बीच रहने वाले कवि थे। उनके यहाँ प्रकृति वर्णन को बहुत भली प्रकार से नहीं दिखाया गया है। उनका प्रकृति वर्णन अलंकारों के बोझ से दबा हुआ है। साथ ही दोषपूर्ण है। उस प्रकृति वर्णन में वह मनोरमता नहीं है जो कि होनी चाहिए। रामचंद्र शुक्ल ने सत्य ही लिखा है 'केशव के लिए प्राकृतिक दृश्यों में कोई आकर्षण नहीं था। ... चारों ओर फैली हुई प्रकृति के नाना रूपों के साथ केशव के हृदय का सामंजस्य कुछ भी न था।'

4. संवाद योजना- केशव की रामचंद्रिका में संवाद योजना अवश्य ही प्रशंसनीय है। इन संवादों में पात्रों के अनुकूल भाव-भंगिमा, क्रोध, उत्साह आदि की अभिव्यक्ति साफ तौर पर देखी जा सकती है। राम, लक्ष्मण, परशुराम संवाद, लवकुश के प्रसंग के संवाद अपने आप में बेजोड़ हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है 'उनका रावण-अंगद-संवाद तुलसी के संवाद से कहीं अधिक उपयुक्त और सुंदर है।' इन संवादों में वाक्पटुता के साथ-साथ राजनीतिक, दांव पेंच को देखा जा सकता है।

5. भाषा- उनकी भाषा में राजसी ठाठ-बाट के दर्शन होते हैं। कारण यही है कि ये राजदरबार में रहते थे तो उसी तरह की शब्दावली भी उनके ज़ेहन में रहती थी। वही शब्दावली वे अपनी रचनाओं में प्रयोग करते थे। शब्दों पर अधिकार तो था ही उनका शब्द भंडार भी कम विस्तृत नहीं था। उनकी भाषा चमत्कारिक है। हाँ उनकी भाषा

कहीं-कहीं बहुत अधिक ऊबड़ खाबड़ हो गई है। वे काव्य में अलंकारों को विशेष महत्व देते थे। उन्होंने लिखा भी है-

भूषण बिना न सोहई, कविता बनिता मित्त।

6. काव्यांग निरूपण (रस, छंद, अलंकार आदि)- केशव ने अपनी रचनाओं में काव्यांगों का अच्छा विवेचन किया है। कविप्रिया, रसिक प्रिया आदि रचनाएँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। वे अलंकारों को महत्व तो देते ही थे। इन सबके बीच केशव का महत्व कम नहीं है। उनकी महत्ता इस बात में है जो आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में है कि 'केशव की रचना में सूर, तुलसी आदि की सी सरसता और तन्मयता चाहे न हो पर काव्यांगों का विस्तृत परिचय कराकर उन्होंने आगे के लिए मार्ग खोला।'

3.3.6.3 अन्य रीतिबद्ध कवि

(क) चिंतामणि- रीतिकाल के प्रमुख आचार्यों में चिंतामणि का नाम लिया जाता है। इनके विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने लिखा है 'हिंदी रीति ग्रंथों की परंपरा चिंतामणि त्रिपाठी से चली, अतः रीतिकाल का आरंभ उन्हीं से मानना चाहिए। उन्होंने संवत 1700 के कुछ आगे-पीछे 'काव्यविवेक', 'कविकुल कल्पतरु', और 'काव्य प्रकाश' ये तीन ग्रंथ लिखकर काव्य के सब अंगों का पूरा निरूपण किया और पिंगल या छंद शास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी। उसके उपरांत तो लक्षण ग्रंथों की भरमार सी होने लगी। कवियों ने कविता लिखने की एक प्रणाली ही बना ली कि पहले दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिखना फिर उसके उदाहरण के रूप में कवित्त या सवैया लिखना।' इससे ही चिंतामणि जी का महत्व समझ में आ जाता है।

इनका जन्म संवत 1600 के लगभग और रचनाकाल संवत 1700 विक्रमी (1643 ई.) के लगभग माना जाता है। ये तिकवाँ, जिला कानपुर के रहने वाले थे। इनके भाइयों में भूषण, मतिराम और जटाशंकर थे। इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। इनका 'कविकुल कल्पतरु' नामक ग्रंथ संवत 1707 में लिखा गया। इन्हें रुद्र साहि सोलंकी, बादशाह शाहजहाँ और जैनदीं अहमद ने बहुत दान दिए थे। इन्होंने अपने ग्रंथों में कहीं-कहीं अपना नाम मणिमाल भी बताया है।

इन्होंने नागपुर के सूर्यवंशी भोंसला राजा मकरंदशाह के आश्रय में अपना ग्रंथ 'पिंगल' बनाया। यह बात ग्रंथ के प्रारंभ में दिए गए दोहे से स्पष्ट हो जाती है।

चिंतामनि कवि को हुकुम किए साहि मकरंद।
करौ लच्छी लच्छन सहित भाषा पिंगल छंद।

छंद पर इनका दूसरा ग्रंथ 'छंद-विचार' भी मकरंदशाह के ही आश्रय में बना। इन दो ग्रंथों के अलावा 'रामायण', 'काव्य-विवेक' 'शृंगार मंजरी', 'रसमंजरी', 'काव्यप्रकाश' और 'कविकुल कल्पतरु' का भी उल्लेख मिलता है।

(ख) पद्माकर-पद्माकर का जन्म 1753 ई. और मृत्यु 1833 ई. में हुई। इन्हें कवि समाज में बहुत ही श्रेष्ठ स्थान मिलता रहा है। 'ऐसा सर्वप्रिय कवि इस काल के भीतर बिहारी को

छोड़ दूसरा नहीं हुआ है।' इनका जन्म बांदा, उत्तर प्रदेश में हुआ था। इनके प्रमुख ग्रंथों में 'हिम्मतबहादुर विरुदावली', 'जगदविनोद', 'पदमाभरण', 'प्रबोध पचासा' और 'राम रसायन' हैं। उनकी कविता का एक नमूना देखिए जो मन को प्रफुल्लित कर देने वाला है। यहाँ होली का दृश्य है और राधा-कृष्ण का प्रेम है-

फागु की भीर, अभीरन में गही गोविंदै ले गई भीतर गोरी।
भाई करे मन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी॥
छीनी पीतम्बर कम्मर तें सु, विदा दई मोडि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ कहै मुसकाइ, लला फिर आइयो खेलन होरी॥

(ग) मतिराम-इनका जन्म तिकवांपुर, जिला कानपुर में संवत 1674 के लगभग हुआ था। इन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'ललित ललाम' बूंदी के महाराव भावसिंह के आश्रय में लिखा था। 'छंद सार' नामक ग्रंथ महाराज शम्भूनाथ सोलंकी को समर्पित है। इनका 'रसराज' नामक ग्रंथ किसी को समर्पित नहीं है। इसके अलावा 'साहित्य सार' और लक्षण शृंगार है। इन्होंने 'मतिराम सतसई' नामक ग्रंथ की रचना भी की है। मतिराम की भाषा अत्यंत स्वाभाविक है। न तो उसमें भावों की कृत्रिमता है और न ही भाषा की। इनकी कविताओं के भाव भी कृत्रिम नहीं हैं। न ही उनके व्यंजक व्यापार और चेष्टाएँ ही बनावटी हैं।

(घ) देव- देव का जन्म 1673 ई. में हुआ था। ये इटावा के रहने वाले थे। इनके ग्रंथों की संख्या 52-72 के आसपास है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है 'कई आश्रयदाताओं के दरबार में इन्हें भटकना पड़ा था। सबको खुश करने के लिए कई ग्रंथों की रचना करनी पड़ी थी। कभी-कभी नया नाम देकर पुराना मसाला डाल देने का कौशल भी अंगीकार करना पड़ा।' इनके प्रमुख ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं- (1) भावविलास (2) अष्टयाम (3) भवानी विलास (4) सुजान विनोद (5) प्रेम तरंग (6) राग रत्नाकर (7) कुशल विलास (8) देव चरित्र (9) प्रेम चंद्रिका (10) जाति विलास (11) रसविलास (12) काव्य रसायन या शब्द रसायन (13) सुख सागर तरंग (14) वृक्ष विलास (15) पावस विलास (16) ब्रह्मदर्शन पचीसी (17) तत्व-दर्शन पचीसी (18) आत्मदर्शन पचीसी (19) जगदर्शन पचीसी (20) रसानंद लहरी (21) प्रेमदीपिका (22) सुमिल विनोद (23) राधिका विलास (24) नीति शतक (25) नख-शिख प्रेम दर्शन।

देव का यह कथन खूब प्रयोग में लाया जाता है-

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन।
अधम व्यंजना रस विरस, उलटी कहत नवीन।

बोध प्रश्न

- देव की किन्हीं पाँच रचनाओं के नाम बताइए।

(ङ) भिखारीदास- भिखारीदास प्रतापगढ़ के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम कृपालदास था। इनकी रचनाएँ हैं- 'रससारांश' (1742 ई.), 'छंदार्णव पिंगल' (1742 ई.),

'काव्यनिर्णय' (1746 ई.), 'शृंगार-निर्णय' (1750 ई.), 'नामप्रकाश कोश' (1738 ई.) इत्यादि। काव्यशास्त्र की दृष्टि से इनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ 'काव्य निर्णय' ही है। इसमें ध्वनि के विवेचन के साथ-साथ रस, अलंकार, गुण, दोष आदि का वर्णन है। इनकी प्रसिद्धि का मुख्य आधार इनका 'काव्य निर्णय' है।

(च) रसलीन- ये बिलग्राम, जिला हरदोई के रहने वाले थे। यहाँ के लोग अपने नाम के साथ 'बिलग्राम' या 'बिलग्रामी' लगाना बहुत ही सम्मान की बात समझते हैं। इनके पिता का नाम बाकर था। 'अंगदर्पण' और 'रस प्रबोध' इनके दो प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। अंगदर्पण की रचना 1737 ई. में हुई थी। इसमें 177 दोहों में नख–शिख वर्णन है। यह दोहा जिसे बिहारी का समझा जाता था असल में रसलीन के अंगदर्पण का है-

अमिय हलाहल मद भरे सेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत इक बार।।

'रस प्रबोध' का रचनाकाल संवत 1798 है। यह दोहों में लिखा गया 'रस निरूपण' का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें 1155 दोहे हैं। इन दोहों में रस, भाव, नायिकाभेद, षटऋतु, बारहमासा आदि के अनेक प्रसंग आए हैं।

3.3.7 रीतिसिद्ध काव्यधारा का विकास व विशेषताएँ

'रीति' का सामान्य सा अर्थ है-'परंपरा का पालन'। रीतिकाव्य दरबारी संस्कृति और संस्कृत काव्यशास्त्र से प्रेरणा ग्रहण कर उसका वाहक बना। रीतिसिद्ध काव्यधारा के अंतर्गत वे कवि आते हैं जिन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र की परिपाटी का अनुसरण करते हुए रचनाएँ लिखी लेकिन किसी लक्षण ग्रंथ की रचना नहीं की। कहने का तात्पर्य है इन्होंने रीति का पालन करते हुए भी काव्यांग निरूपण के उद्देश्य से अपनी रचनाएँ नहीं कीं। इनकी रचनाएँ स्वतंत्र थीं। इस धारा में कई कवियों को स्वीकार किया जाता है जैसे- सेनापति, द्विजदेव, बिहारी। इन सब कवियों में बिहारी का स्थान सबसे ज्यादा महत्व का है। उनकी 'बिहारी सतसई' सतसई परंपरा का एक अतिमहत्वपूर्ण ग्रंथ है।

रीतिसिद्ध कवियों के यहाँ भावपक्ष और कलापक्ष में एक अच्छा संतुलन रहता है। कारण यह है इनका उद्देश्य काव्यांग निरूपण नहीं था। इस काव्यधारा के कवियों ने रीतिबद्ध काव्यधारा के कवियों की तरह लक्षण ग्रंथों की रचना न करके अपने अलग मौलिक ग्रंथों से ही अपनी महत्ता को स्थापित किया। हाँ यह अवश्य है की इनके ग्रंथों में यथा स्थान काव्यांग अर्थात अलंकार, रस आदि आए हैं लेकिन ये बस आए हैं। इन्हें जबरदस्ती लाया नहीं गया है। इस धारा के कवियों में भूपति (भूपति सतसई), बेनी (नवरस तरंग), कृष्णकवि (बिहारी सतसई की टीका), रसनिधि (रत्न हज़ारा), सेनापति (काव्यकल्पद्रुम, कवित्त रत्नाकर), बिहारी आदि हैं। इन सबमें बिहारी का स्थान सर्वोच्च है। आगे हम बिहारी पर चर्चा करेंगे।

3.3.8 रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि : बिहारी

3.3.8.1 बिहारी का जीवन परिचय

बिहारी के जन्म को लेकर मतभेद है। इनका जन्म सन् 1595 ई. माना जाता है। कुछ पुस्तकों में सन् 1603 ई. बताया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनका जन्मकाल संवत् 1660 (सन् 1597 ई.) के लगभग माना है। इनका जन्म ग्वालियर के पास गोविन्दपुर गाँव में हुआ था। ये जाति के माथुर चौबे थे। इनके पिता का नाम केशव था। ये केशव कवि केशवदास से भिन्न हैं। इनके गुरू नरहरिदास दास थे । इनके पास एक बड़ा भाई और एक छोटी बहन थी। इनके माता की मृत्यु छोटी बहन के जन्म के बाद थोड़े ही दिनों में हो गई। एक दोहे के आधार पर इनके विषय में जानकारी प्राप्त होती है। यह दोहा बिहारी द्वारा रचित माना जाता है परंतु यह दोहा 'बिहारी सतसई' में सम्मिलित नहीं है। दोहा द्रष्टव्य है-

जनम ग्वालियर जानिये खंड बुंदेले बाल।
तरूणाई आई सुखद मथुरा बसि ससुराल॥

बोध प्रश्न

- बिहारी के जन्म व बाल्यकाल आदि के विषय में प्रसिद्ध दोहे को बताइए।

पहले के बादशाह बहुत ही उदार प्रवृत्ति के होते थे। वे विभिन्न धर्म के लोगों, गुरुओं, महात्माओं का पूरा सम्मान करते थे। 1618 ई. में शाहजहाँ वृंदावन गए थे। उन्होंने महात्मा नरहरिदास से भेंट की। इस भेंट में नरहरिदास ने बिहारी की प्रशंसा की थी। कहते हैं कि आगरा में ही अब्दुलरहीम ख़ानख़ाना से बिहारी की भेंट हुई थी।

सन् 1620 ई. में शाहजहाँ के दरबार में कई राजे-महाराजे उपस्थित हुए। उस अवसर पर बिहारी की काव्य प्रतिभा को सभी ने देखा और बहुत से राजाओं ने उनकी वार्षिक वृत्ति बाँध दी। बाद में जहाँगीर और शाहजहाँ के बीच मतभेद पैदा हो गया। फलस्वरूप शाहजहाँ को आगरा से हटना पड़ा।

ध्यान रखा जाना चाहिए कि जब निज़ाम बदलता है तो वहाँ के सहयोगी, कृपापात्र सभी बदलते हैं। शाहजहाँ के साथ-साथ बिहारी के भी बुरे दिन आ गए। बिहारी अपनी वृत्ति लेने के लिए बूँदी, जोधपुर आमेर आदि जाया करते थे। इसी वृत्ति को प्राप्त करने के लिए वे एक बार आमेर नरेश जयसिंह के यहाँ गए। जानकारी मिली कि राजा जयसिंह अपनी नवोढा पत्नी के प्रेमपाश में ऐसे बँध गए हैं कि उन्होंने राजपाट पर ध्यान देना छोड़ दिया है। प्रधान महारानी (चौहान रानी) अत्यधिक दु:खी थीं। बिहारी ने कुछ यत्न लगाकर एक दोहा राजा जयसिंह के पास भिजवा दिया। राजा इससे बहुत प्रभावित हुए और आकर बिहारी से मिले तथा राजपाट संभालना शुरू किया। दोहा द्रष्टव्य है-

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास इहि काल।
अली कली ही सों बंध्यौ, आगे कौन हवाल।।

प्रधान महारानी को जब यह ज्ञात हुआ कि बिहारी के दोहे के प्रभाव के कारण राजा जयसिंह ने राजपाट संभाल लिया है तो उन्होंने प्रसन्न होकर बिहारी को 'कालापहाड़ी' नामक गाँव पुरस्कार स्वरूप दे दिया। बताया जाता है कि बिहारी मृत्यु सन् 1663 ई. में हुई।

3.3.8.2 बिहारी की काव्यगत विशेषताएँ

बिहारी की एक प्रामाणिक कृति 'बिहारी सतसई' प्राप्त होती है। यह ग्रंथ बिहारी की कीर्ति का आधार है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है 'बिहारी ने इस सतसई के अतिरिक्त और कोई ग्रंथ नहीं लिखा। यही एक ग्रंथ उनकी इतनी बड़ी कीर्ति का आधार है।' बिहारी सतसई को लिखने के संदर्भ में बिहारी ने एक दोहे के माध्यम से बताया है-

हुकुम पाइ जयसाहि कौ, हरि-राधिका-प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक संवाद ।।

चौहानी रानी (प्रधान रानी) के पुत्र रामसिंह की शिक्षा की ज़िम्मेदारी बिहारी को दी गई। रामसिंह का विद्यारंभ बिहारी की देखरेख में ही प्रारंभ हुआ। बिहारी ने उस समय तक जितने दोहे लिखे थे सबको संग्रहित किया। उसमें कुछ अन्य कवियों की रचनाओं का संग्रह करके रामसिंह का अध्ययन शुरू करवाया गया।

'बिहारी सतसई' में दोहों के विषय भिन्न-भिन्न हैं। वे दोहे भक्तिपरक, नीतिपरक और शृंगारपरक हैं। बिहारी सतसई में निश्चित रूप से भक्ति और नीतिपरक दोहे हैं परंतु इसमें प्रमुखता शृंगार की ही है। इसलिए बिहारी सतसई को शृंगार काव्य की संज्ञा भी दी जाती है। इसमें भक्ति, नीति, शृंगार के साथ व्यंग्य और प्रकृति चित्रण भी है.

बोध प्रश्न

- 'बिहारी सतसई' के सभी दोहों को एक जगह संग्रहीत करने का मुख्य उद्देश्य क्या था?

बिहारी की एक ही प्रामाणिक कृति है जिसका नाम है 'बिहारी सतसई'। यहाँ 'सत' का अर्थ हैं सात और 'सई' का अर्थ है सौ। इसमें दोहों की संख्या को लेकर विवाद रहा है। इसमें 713 दोहे हैं परंतु कुछ आलोचकों ने 713 से अधिक दोहे भी स्वीकार किए हैं। जगन्नाथदास रत्नाकर ने 'बिहारी सतसई' की टीका 'बिहारी रत्नाकर' के नाम से प्रस्तुत की है। इसमें विभिन्न प्राचीन प्रतियों, टीकाओं के आधार पर 'बिहारी सतसई' में 713 दोहे ही माने हैं।

'बिहारी सतसई' में दोहों में विभिन्न विषयों को उद्घाटित किया गया है। इसमें शृंगारपरक, भक्तिपरक, नीतिपरक, व्यंग्यात्मक और प्रकृति चित्रण सहित बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए दोहे समाहित किए गए हैं। शृंगारपरक एक दोहा द्रष्टव्य है-

बतरस लालच लाल की, मुरली धरि लुकाइ।
सौंह करै भौंहनि हँसे, दैन कहै, नटि जाइ॥

यहाँ गोपिकाओं ने श्री कृष्ण से मीठी-मीठी बातें करने के लिए उनकी मुरली को छिपाकर रख दिया है। वे कसम खाती हैं कि हे कन्हैया ! हमने तुम्हारी मुरली नहीं छिपाई है लेकिन उनकी भौहें हंसती रहती हैं। देने के लिए कहती हैं फिर मुकर जाती हैं।

नायिका के वियोग वर्णन में ऊहात्मकता आ गई है। दोहा द्रष्टव्य है-

इत आवति चलि जात उत, चली छ-सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ।।

नायिका वियोगावस्था में है। वह लेटी हुई है। वह जब साँस लेती और छोड़ती है तो छह-सात हाथ उसकी शरीर ऊपर-नीचे आता जाता है। ऐसा लगता है कि वह झूला झूल रही है। उसका अंतिम क्षण है।

बिहारी ने कृष्ण भक्ति की है। उनका एक भक्तिपरक दोहा द्रष्टव्य है-

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यों बूड़ै स्याम रँग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ॥

बिहारी कहते हैं इस चित्त या मन के बारे में क्या कहूँ? इसकी स्थिति कुछ समझ में नहीं आती। जैसे-जैसे यह कृष्णा के श्याम रंग में डूबता जाता है, वैसे-वैसे यह चित्त उज्जवल होता चला जाता है। उनकी भक्ति सच्ची है तभी तो वे लिखते हैं -

करौ कुबत जगु, कुटिलता तजौं न, दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत, त्रिभंगी लाल।।

बिहारी लिखते हैं ये संसार भले ही मेरी बुराई करे लेकिन मैं अपने मन के टेढ़ेपन को नहीं छोडूंगा. यदि मैं अपने ह्रदय को सरल या सीधा बना लूँगा तो उसमें बसने में त्रिभंगी (तीन जगह से भंग। कृष्ण जब मुरली बजाते हैं तो पैर, कमर और गर्दन को भंग करते हैं। अर्थात तोड़ते या मोडआते हैं।) कृष्ण को बहुत कष्ट होगा।

नीतिपरक दोहों की बात करें तो उसमें बड़ी ज्ञान की बातें छिपी हुई हैं।

कनक-कनक तें सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाए बौराय नर, यह पाए बौराय॥

बिहारी के यहां मात्र शृंगार, भक्ति, नीति के ही दोहे नहीं हैं। उनके दोहों में व्यंग्य चित्रण भी है। बिहारी के दोहों में अभिव्यक्त व्यंगोक्तियाँ कटूक्तियां नहीं बनी है। वे व्यंग्य ही हैं, जिसे देखकर या तो आप हंसते हैं या मुस्कुराते हैं। क्रोधित नहीं होते हैं. उदाहरण देखिए-

परतिय-दोषु पुरानु सुनि, सखि मुल्की सुखदानि।
कसु करि राखी मिश्रहूँ, मुंह आई मुसकानि॥

बोध प्रश्न

- ‘बिहारी सतसई’ में शृंगार, भक्ति और नीति के दोहे हैं स्पष्ट कीजिये।

बिहारी ने प्रकृति चित्रण भी किया है। उदाहरण देखिये-

छकि रसाल-सौरभ, सने मधुर माधुरी-गंध।
ठौर ठौर झौंरत झपत, भौंर-झौंर मधुअंध।।

बिहारी सतसई में गाँव तथा शहर के बीच की खाई साफ तौर पर दिखती है। बिहारी सतसई में जीवन के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात करते हुए दोहों की रचना की गई है। इन दोहों को संग्रहित इसलिए किया गया ताकि रामसिंह को शिक्षित किया जा सके। बिहारी का प्रयास कभी-भी दोहों को क्रमबद्धता प्रदान करने का नहीं रहा है। बिहारी सतसई का समाप्ति काल 1662 ई. माना जाता है। यह संवत् के हिसाब से संवत् 1719 आता है। इस विषय में एक दोहा भी प्रसिद्ध है।

संवत् ग्रह शशि जलधि छिति, तिथि छठ बासर चंद।

चैत मास पख कृष्ण में, पूरन आनंद कंद।।

यदि हम बिहारी सतसई की भाषा की बात करें तो बिहारी ने अपने दोहों की रचना ब्रजभाषा में की है। रीतिकाल में भाषा के रूप में ही 'ब्रज' को ग्रहण किया जाता था। वर्तमान में भले ही यह एक बोली के रूप में हो गई है। बच्चन सिंह लिखते हैं कि 'बिहारी की भाषा ब्रजभाषा है। उस समय की प्रचलित 'काव्य-भाषा' है। भक्तिकाल में प्रचलित ब्रजभाषा और रीतिकाल में प्रचलित काव्य-भाषा में एक अंतर दिखाई पड़ता है वह यह कि पहली लोक भाषा के निकट है जबकि दूसरी उससे दूर पड़ गई है। भक्तिकाल की कविताएँ जनता को संबोधित थीं तो रीतिकाल की कविताएँ राजाओं-महाराजाओं और सामंतों-सरदारों को। एक में जनमानस को छूने का प्रयास था तो दूसरी में सामंत वर्ग को चमत्कृत करने का प्रयास। ऐसी स्थिति में रीतिकालीन काव्य-भाषा का अलंकृतिपूर्ण हो जाना स्वाभाविक था।' बिहारी ने तो कई राज दरबारों को देखा था। यह तो स्वाभाविक ही है कि उनकी काव्य-भाषा में थोड़ी तड़क-भड़क, थोड़ी लचक-मचक रहेगी ही।

बिहारी ने अपने काव्य में संस्कृत के साथ-साथ अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। बिहारी ने अपनी बिहारी सतसई में संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है यथा- जालरंध्र, श्रमस्वेदकन, प्रथम, पयोद, रूपसुधा, सचिक्कन, अद्वैतता, कज्जल, निदाध, पावस, कलित, इन्दीवर, काव्य-व्यूह, कलित-दलित, अलिपुंज, कोकनद, घनसार, प्रतिबिंबित, परिमल, घण्टावली, श्रुति, ब्रह्म, मकराकृति आदि। बिहारी सतसई में अरबी-फारसी के भी कई शब्द मिलते हैं जैसे- अकस, कुबत, चश्मा, जोर, सिकार, बेकाम, निसान, हद, अहसान, लगाम, फौज, नाहक, मुलुक, पायन्दाज आदि।

पूर्व में संकेत किया गया है कि किसी कवि की एक प्रधान भाषा होती है। उसमें विभिन्न बोलियों-भाषाओं के शब्द मिले होते हैं। देखा जाए तो बिहारी ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है परंतु इस ब्रज भाषा पर विभिन्न बोलियों बुन्देलखण्डी, अवधी और पूर्वी बोलियों का प्रभाव है।

जहाँ तक छंद का प्रश्न है तो बिहारी ने दोहा छंद का प्रयोग किया है। मुक्तकों के अनेक भेदों में बिहारी ने दोहा छंद को चुना है। अन्य छंदों की भाँति दोहा छंद भी निरंतर परिमार्जित होता रहा है। 'बिहारी सतसई' में तो लगता है कि इसे पूर्णता प्राप्त हो गई है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में कहें तो 'ब्रजभाषा पर बिहारी का असाधारण अधिकार था। उनको शब्द और वर्ण के स्वभाव की परख थी। शब्द और वर्ण उनके दोहों में नगों के समान जड़े हैं और रत्नों की आभा बिखेरते हैं। शब्द को मांजने, चमकाने, मोड़ने और संवारने की कला में सिद्धहस्त हैं। उनकी रचना में ब्रज भाषा अपनी प्रौढ़ता और भाव-संपन्नता में इठलाती हुई फलती है। वह लय और गति, संगीत और नर्तन की विशेषताओं से युक्त है। उनकी भाषा प्रांजल, प्रौढ़, मधुर और सरस है।'

बोध प्रश्न

- बिहारी के यहाँ प्रयुक्त अरबी-फारसी के शब्दों के विषय में बताइए।

3.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! इस प्रकार हम देखते हैं कि 'रीति' शब्द का अर्थ परंपरा या परिपाटी से है। साहित्य में भले ही इसका कुछ अलग अर्थ हो। 'रीति' शब्द पर बखूबी चर्चा रीतिकाल के अंतर्गत की जाती है। इसकी समयसीमा संवत 1700-1900 तक स्वीकार की जाती है। इसके लिए शृंगार काल, अलंकृत काल आदि नाम भी बताए जाते हैं लेकिन वर्तमान ने 'रीतिकाल' ही सर्व स्वीकार्य और प्रचलन में है।

रीतिकाल की मुख्यतः तीन काव्यधाराएँ हैं यथा- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। इसके अलावा एक और काव्यधारा राष्ट्रीय चेतना की काव्यधारा भी स्वीकार की जाती है। रीतिबद्ध काव्यधारा के विकास में चिंतामणि, केशव सहित कई कवियों का महत्वपूर्ण योगदान है। रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि केशवदास हैं। इसके अलावा चिंतामणि, पद्माकर, मतिराम, देव, भिखारीदास, रसलीन आदि को भी रीतिबद्ध काव्यधारा के अंतर्गत स्वीकार किया जाता है।

रीतिसिद्ध काव्यधारा के विकास में बिहारी का महत्वपूर्ण योगदान है। ये रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। इनकी एक ही प्रामाणिक रचना मानी जाती है जिसका नाम है 'बिहारी सतसई'। इसमें भक्ति, नीति, शृंगार (संयोग और वियोग) आदि से संबंधित दोहे हैं।

3.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. हिंदी साहित्य के इतिहास में तीसरे क्रम पर आनेवाला 'रीतिकाल' एक महत्वपूर्ण काल है।
2. रीतिकाल की मुख्यतः तीन काव्यधाराएँ हैं यथा- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त।
3. रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि केशवदास हैं। इसके अलावा चिंतामणि, पद्माकर मतिराम, देव आदि को भी रीतिबद्ध काव्यधारा के अंतर्गत स्वीकार किया जाता है।
4. केशव के काव्य में आचार्यत्व की प्रधानता है।
5. रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि बिहारी हैं। उनकी कीर्ति का आधार 'बिहारी सतसई' है। इसमें भक्ति, नीति, शृंगार आदि के दोहे हैं। उन्होंने इन दोहों के माध्यम से 'गागर में सागर' भरने का काम किया है।

3.6 शब्द संपदा

1. अलंकार निरूपक आचार्य = अपनी रचनाओं में अलंकार को महत्व देते हुए अलंकार से संबंधित संस्कृत के ग्रंथों का सहारा लेकर अलंकारों का निरूपण करने वाले आचार्य। इसमें केशव, मतिराम, गोप आदि हैं।
2. कृत्रिम = दिखावटी, बनावटी, मानव-निर्मित
3. चारुत्व = चारुता
4. चेष्टाएँ = प्रयास, कोशिश
5. नख-शिख वर्णन = नायिका की सुंदरता का वर्णन नख (पैर के नाखून) से शिख

(शिखा अर्थात सर की चोटी) तक करना। लेकिन कवि जो वर्णन करते हैं वे शिख-नख करते हैं अर्थात पहले नायिका के केशों (बालों) की सुंदरता का वर्णन, फिर नेत्रों, कपोलों, होंठों आदि का वर्णन किया जाता है।

6. नायक-नायिका भेद निरूपक आचार्य = वे आचार्य जिन्होंने नायक और नायिकाओं के प्रकारों का वर्णन किया है। नायक के भेद हैं- धीरललित, धीरप्रशांत, धीरोदात्त आदि। इसी तरह नायिका के भेद हैं मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। इसमें में भी कई भेद-उपभेद हैं। इसमें हैं- मतिराम, पद्माकर आदि। रहीम के 'बरवै नायिका' भेद में भी इस तरह की बातें हैं।

7. प्रतिपादन = अच्छी तरह से समझकर कोई बात कहना, अपना मत पुष्ट करने के लिए प्रमाणपूर्वक कुछ कहना

8. प्रफुल्लित = अत्यधिक प्रसन्न, आनंदित, खिला हुआ

9. रस निरूपक आचार्य = अपनी रचनाओं में रस को महत्व देते हुए रस के सभी प्रकारों का वर्णन करने वाले आचार्य। इसमें नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते समय विभिन्न रसों को दिखाया जाता है। यहाँ मुख्यतः शृंगार (संयोग, वियोग) रस का वर्णन दिखता है। इसमें देव, श्रीपति, बेनी आदि प्रमुख हैं

10. लक्षण ग्रंथ = काव्य या साहित्य के लक्षणों का विवेचन करने वाला ग्रंथ। साहित्यिक समीक्षा की पुस्तक या समालोचनाशास्त्र

11. संवत = संवत्, वर्ष की गणना का पैमाना। संवत् वर्ष में से 57 वर्ष घटा देने से सन ईस्वी प्राप्त होता है जैसे- संवत् 1700 में से 57 घटा देने से जो अंक मिलेगा वह सन ईस्वी होगा. यहाँ सन 1643 ईस्वी होगा

12. सर्वांग निरूपक आचार्य = वे आचार्य जिन्होंने सभी रूपों का वर्णन किया है। इन्होंने अपनी रचनाओं में काव्य के लक्षण, रस, छंद, अलंकार, शब्दशक्ति, काव्यदोष, नायक-नायिका भेद आदि। ये आचार्य हैं- चिंतामणि, कुलपति मिश्र, भिखारीदास आदि।

3.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ)दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. बिहारी का जीवन परिचय लिखिए।
2. रीतिकाल की प्रमुख काव्यधाराओं के विषय में बताइए।
3. केशव की काव्यगत विशेषताओं को लिखिए।

खंड (ब)

(आ)लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. रीतिबद्ध काव्यधारा के विकास पर अपने विचार लिखिए।
2. 'रीति' शब्द के अर्थ व इतिहास के विषय में लिखिए।
3. रसलीन के विषय में बताइए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. बिहारी की रचना का नाम है? ( )
   (अ) विज्ञानगीता (आ) बिहारी सतसई (इ) मतिराम सतसई (ई) काव्य निर्णय
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी रीति ग्रंथों की परंपरा किससे मानी है? ( )
   (अ) रसलीन (आ) भूषण (इ) पद्माकर (ई) चिंतामणि
3. 'कठिन काव्य का प्रेत' किसे कहा जाता है? ( )
   (अ) देव (आ) भिखारीदास (इ) केशवदास (ई) मतिराम

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. अंग दर्पण के रचयिता ....हैं।
2. भूषण राष्ट्रीय चेतना के .... माने जाते हैं।
3. 'रामचंद्रिका छंदों का अजायबघर है'। यह कथन .... का है।

III. सुमेल कीजिए -

1. केशव को कवि हृदय नहीं मिला था	(अ) देव
2. शृंगार काल	(ब) मतिराम का जन्म स्थान
3. तिकवाँ, कानपुर	(स) आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
4. भाव विलास	(द) आचार्य रामचंद्र शुक्ल

3.8 पठनीय पुस्तकें

1. रीतिकाव्य की भूमिका : नगेंद्र
2. हिंदी रीति साहित्य : भगीरथ मिश्र
3. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल
4. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास : बच्चन सिंह
5. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी
Estd. 1998
MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY

इकाई 4 : रीतिमुक्त काव्य

रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 मूल पाठ : रीतिमुक्त काव्य
4.3.1 रीतिमुक्त का अर्थ एवं विवेचन
4.3.2 रीतिमुक्त काव्य परंपरा का परिचय
4.3.3 रीतिमुक्त काव्य-प्रवृत्तियाँ
4.3.4 रीतिमुक्त रचनाकार एवं रचनाओं का परिचय
4.3.5 हिंदी साहित्य में रीतिमुक्त काव्य का स्थान एवं महत्व
4.4 पाठ सार
4.5 पाठ की उपलब्धियाँ
4.6 शब्द संपदा
4.7 परीक्षार्थ प्रश्न
4.8 पठनीय पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! इस इकाई में रीतिकाल के रीतिमुक्त काव्य धारा का अध्ययन करेंगे। रीतिकाल के नामकरण तथा विभाजन के संदर्भ में विद्वानों में प्रायः मतभेद पाया जाता है। विविध विद्वानों ने काव्य प्रवृतियों के आधार पर अलग-अलग नाम दिए हैं जिनमें जार्ज ग्रियर्सन ने 'रीतिकाव्य', मिश्रबंधुओं ने 'अलंकृत काल', श्याम सुंदर दास ने 'रीतिग्रंथ काल', रामचंद्र शुक्ल ने 'रीतिकाल', विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'शृंगार काल', रामकुमार वर्मा ने 'कला काल', गणपति चंद्र गुप्त ने 'अपकर्ष काल' तथा रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने 'कला काल' आदि नाम दिए हैं। रीतिकालीन रचनाओं की तीन प्रमुख धाराएँ 'रीतिसिद्ध', 'रीतिबद्ध', 'रीतिमुक्त' आदि हैं। रीतिकालीन रचनाओं का समय 1700 ई. से 1900 ई. के मध्य माना जाता है। प्रस्तुत इकाई में रीतिमुक्त कवियों के भाव, काव्य तथा शिल्प सौंदर्य का विवेचन किया जाएगा।

4.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- रीतिमुक्त कवियों एवं काव्यों से अवगत हो सकेंगे।
- रीतिकालीन कवियों के काव्य के केंद्रीय विषय को समझ सकेंगे।
- रीतिमुक्त कवियों की स्वच्छंदतावादी भावना का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिमुक्त काव्य के शिल्प पक्ष को समझ सकेंगे।
- रीतिमुक्त कवियों की भाव प्रवणता से अवगत हो सकेंगे।

4.3 मूल पाठ : रीतिमुक्त काव्य

हिंदी साहित्य के 'रीतिकाल' नामकरण को अधिकांश विद्वानों ने मान्यता दिया है। 'रीति' शब्द को प्रणाली, पद्धति अथवा शैली के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। 'रीति' शब्द को संस्कृत में 'विशिष्ट पद रचना' के रूप में तथा हिंदी में लक्षण ग्रंथों के आधार पर काव्य रचना के रूप में लिया जाता है। रीतिकालीन रचनाओं में जिन कवियों ने संस्कृत के लक्षणों को प्रस्तुत करते हुए रचनाएँ की, उन्हें रीतिसिद्ध कहा गया। इस काल में कुछ ऐसे भी कवि हुए, जिन्होंने लक्षणों से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से रचनाएँ की। ऐसी रचनाओं को रीतिमुक्त के नाम से जाना जाता है। रीतिकाल के वे कवि जिन्होंने लक्षण ग्रंथ आदि की रचना न करते हुए लक्षणयुक्त स्वतन्त्र रचनाएँ की, उनकी रचनाओं को रीतिसिद्ध कहा गया। रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं में प्रेम, ओज तथा नैतिक मूल्यों से संबद्ध विषयों को भी देखा जा सकता है। इन कवियों की रचनाओं में स्वान्तः सुख की धारणा होते हुए भी सामाजिकता को भी स्थान दिया गया है । क्योंकि इनके प्रेम-चित्रण में उदारता के दर्शन किए जा सकते हैं। रीतिमुक्त रचनाओं में तत्कालीन सांस्कृतिक परिवेश को भी यदा-कदा देखा जा सकता है।

4.3.1 रीतिमुक्त का अर्थ एवं विवेचन

रीतिकालीन जिन रचनाकारों ने संस्कृत काव्यशास्त्रों के नियमों से मुक्त होकर अपने हृदय की अनुभूति को काव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। रीतिमुक्त कवियों ने अलंकार आदि से अधिक मार्मिक अभिव्यंजना को प्रमुखता दी है। रीतिमुक्त 'प्रेम की पीर' को हम घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा तथा द्विजदेव प्रभृति रचनाकारों की रचनाओं में अनुभूत कर सकते हैं। विशेष रूप से घनानंद को 'प्रेम पीर का कवि' माना जाता है। आलम को 'मधुरता' का कवि माना जाता है। यदि प्रेम के शाश्वत स्वरूप के दर्शन करने हो, तो ठाकुर की रचनाएँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। बोधा और द्विजदेव की रचनाओं में प्रेम के दोनों ही स्वरूप के दर्शन होते हैं। रीतिमुक्त कवियों की रचनाएँ सप्रयत्न न होकर सहज रूप से प्रवाहित हुई हैं, मानो झरने से पानी बहने लगा हो। घनानंद के द्वारा अपनी काव्य रचना के संदर्भ में लिखी गई ये पंक्ति उल्लेखनीय है - 'लोग है लागि कवित्त बनावत,/ मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।' चूंकि ये पंक्ति घनानंद ने अपनी कविताओं के लिए कहें हैं किंतु रीतिमुक्त अन्य कवियों पर भी यह उतनी ही सटीक बैठती है। रीतिमुक्त कविताओं को सामान्य आँखों के बजाय हृदय की आँखों से देखें, तो वे अति रुचिकर जान पड़ती है।

बोध प्रश्न

- प्रेम पीर का कवि किसे कहा जाता है?
- मधुरता का कवि किसे कहा जाता है ?

4.3.2 रीतिमुक्त काव्य परंपरा का परिचय

हिंदी साहित्य के तृतीय काल में रीतिबद्धता काव्य की विशेष प्रवृत्ति बन गई थी जिसमें संस्कृत की काव्य-रीति के नियमों का पालन करते हुए कई रचनाएँ हुईं। किंतु इसके साथ ही कुछ ऐसे भी दरबारी कवि हुए जिन्होंने इन नियमों के पालन को अनिवार्य काव्य गुण न मानते हुए स्वच्छंद कविताओं की रचना की। इन रीतिमुक्त कवियों ने केशव, चिंतामणि तथा मतिराम

प्रभृति कवियों की भांति लक्षण ग्रंथ न लिखते हुए अपने स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति किया है। लाल तथा सूदन जैसे कवियों ने सामान्य प्रबंध काव्य लिखें, तो कुछ कवियों ने दानलीला एवं मानलीला जैसे वर्णनात्मक काव्य सर्जनाएँ की। इन रीतिमुक्त काव्य धारा में वृंद, गिरधरदास तथा दीनदयाल गिरि प्रभृति कवियों ने नीति के पद्य तथा सूक्तियों की रचनाएँ की। इस काल में मात्र शृंगार ही नहीं अपितु वैराग्य, भक्ति, वीर तथा ब्रह्मज्ञान को भी काव्य का विषय बनाया गया है। इन कवियों ने अपनी रचनाओं में किसी भी स्तर पर लक्षण ग्रंथों के प्रभाव को ग्रहण नहीं किया। इन रचनाकारों ने अलंकारों का अतिरिक्त प्रयोग न करते हुए भावपक्ष को दृढ़ अभिव्यक्ति दी है। रीतिकालीन अन्य धारा के कवियों की तरह रीतिमुक्त कवियों ने सामाजिकता को कहीं उपेक्षित नहीं किया है। इनकी रचनाओं में शृंगार को उच्छृंखलता से मुक्त रखा गया है।

बोध प्रश्न

- दानलीला, मानलीला किस प्रकार की रचनाएँ हैं?
- रीतिमुक्त कवियों ने शृंगार के अलावा और किस विषय पर काव्य सर्जनाएँ की?
- सामाजिक पक्ष का रीतिमुक्त धारा में क्या स्थान था?

4.3.3 रीतिमुक्त काव्य-प्रवृत्तियाँ

रीतिमुक्त काव्य की कई ऐसी विशेषताएँ हैं जो इन्हें अपने संकलित रचनाओं में विशिष्टता प्रदान करती हैं। इन प्रवृत्तियों को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत विवेचित किया जा सकता है -

क) स्वच्छंद एवं संयत प्रेम-वर्णन

रीतिमुक्त कवियों की प्रेम-दृष्टि औदात्य के धरातल खरी उतरती है। वे स्वच्छंद एवं सरस प्रेम का चित्रण करते हुए अपने हृदय के प्रेम भाव को सच्चाई के साथ अभिव्यक्त करते हैं। घनानंद की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य है - 'अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।/ यहाँ सांचे चलें तजि आपनपौ झिझकै कपटी जे निसाँक नहीं॥' रीतिमुक्त कवियों के शुद्ध हृदय से प्रेम आत्मा के राह से व्यक्त हुए हैं।

ख) शृंगारिकता के व्यापक धरातल का चित्रण

रीतिमुक्त कवियों ने अधिकांशत: शृंगार के विरह पक्ष को हृदय की गहराई के साथ चित्रित किए हैं। ये रचनाकार प्रेम की अदम्य इच्छाओं से आपूरित कविताएँ करते हुए प्रेम की पीर को अभिव्यक्त करते हैं। इन कवियों को प्रेम के बिना संसार असार प्रतीत होता है। भक्तिकाल के राधा-कृष्ण रीतिबद्ध काव्यधारा के संयोग चित्रण में अश्लीलता की सीमा में चित्रित हुए हैं, जबकि रीतिमुक्त कवियों ने कृष्ण-राधा के संयोग पक्ष को अपने अंतर्मुखी दृष्टि के कारण अत्यंत मार्मिकतापूर्ण अभिव्यक्ति दी है। इनकी रचनाओं में तो संयोग में भी वियोग की पीड़ा देखी जा सकती है। घनानंद की यह काव्य पंक्ति उल्लेखनीय है - 'यह कैसी संयोग न जानि परै जु वियोग न क्यौहूँ बिछोहत है।'

ग) प्रकृति-चित्रण

रीतिकालीन रचनाओं में प्रायः प्रकृति उद्दीपक रूप धारण करके ही अवतरित हुई हैं। द्विजदेव ऐसे रीतिमुक्त कवि के रूप में उभरे हैं, जिन्होंने प्रकृति के स्वतंत्र चित्रण अपनी रचनाओं

में किये हैं। बोधा की कृति 'विरह वारीश' में बोधा ने प्रकृति-चित्रण में शास्त्रीय पद्धति का अंशतः पालन तो किया है, किंतु साथ ही उन्होंने स्वच्छंद दृष्टि को भी अपनाया है।

घ) भक्ति का चित्रण

भक्तिकाव्य के राधा-कृष्ण को रीतिकाल के कवियों ने ले तो लिया, किंतु वे भक्त की सीमा से सर्वदा बाहर ही रहें। रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं में उन्मुक्त भक्ति के दर्शन अवश्य किए जा सकते हैं। रसखान तथा घनानंद जैसे कवियों ने भक्ति के प्रति उदार दृष्टि को अपनाया है। इसके पश्चात् भी इनकी रचनाओं को विशुद्ध भक्ति काव्य कहना असंगत होगा।

ङ) सांस्कृतिक चित्रण

रीतिमुक्त कवियों की स्वच्छंद काव्य-दृष्टि ने अपने समकालीन परिवेश को रचनाओं में खूब शामिल किए हैं। उन्होंने सामाजिकों के आनंद-उत्सव में खुल कर सहभागिता की। ठाकुर का अपनी रचनाओं में घनघौर का चित्रण जीवंत हो उठा है। विशेष रूप से ठाकुर की रचनाओं में होली, अखतीज, वटसावित्री आदि त्यौहारों को बुंदेलखंड की पृष्ठभूमि में रचा गया है। वैभवपूर्ण भारतीय सांस्कृतिक झांकी को रीतिमुक्त कवियों ने प्रतिष्ठित किया है। इन कवियों ने सामाजिक सरोकार को बड़े मनोयोग से अपनी रचनाओं में चित्रित किया है।

च) मुक्तक काव्य-रचना

रीतिकालीन दरबारी संस्कृति में मुक्तक रचनाओं को ही प्रश्रय मिल सकता था, लेकिन कुछ रीतिमुक्त कवियों ने प्रबंध काव्यों की सर्जना भी की है। यथा- बोधा की 'माधवानल कामकंदला', 'विरह-वारीश' तथा आलम की 'माधवानल-कामकंदकला', 'सुदामा-चरित' तथा 'श्याम-सनेही' आदि उल्लेखनीय प्रबंध काव्य है।

छ) काव्य-पद्धति

रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने अपने युगीन रचनाकारों की तरह ही अपने काव्यों में खंडिता का चित्रण किया है। इन कवियों ने खंडिताओं के बाहरी आवरण के बजाय उनके मन को दिखाने की कोशिश की है। इन कवियों ने अपने समकालीन काव्यधारा को अपनाते हुए आरम्भ में नेत्र-व्यापार का चित्रण किया है, किंतु बाद में इन काव्य पद्धतियों से कवियों का मन हट गया।

छ) शब्दालंकारों का अत्याधिक प्रयोग

रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं में शब्दालंकारों का विशेष रूप से अधिक प्रयोग हुआ है। रीतिकालीन रचनाएँ अपने शिल्पगत सौंदर्य के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं। रीतिकालीन कवियों ने अलंकारों के लिए काव्य रचना नहीं की है, बल्कि इन कवियों की रचनाओं में स्वतः ही अलंकार आ गए हैं। घनानंद की निम्न पंक्ति में विषमतामूलक विरोधाभास अलंकार को देखा जा सकता है- 'हाथ साथ लाग्यौ, पै समीतन न कहुँ लहे।'

ज) ब्रजभाषा के प्रांजल रूप का प्रयोग

रीतिकाल के अधिकांश कवियों की भाषा में प्रादेशिक प्रभाव को देखा जा सकता है। रीतिमुक्त कवियों ने ब्रजभाषा के प्रांजल स्वरूप का प्रयोग किए हैं। रीतिमुक्त कवियों की रचनाओँ में शुद्ध ब्रजभाषा के प्रयोग के साथ ही लोकोक्तियों, मुहावरों एवं उक्ति-वैचित्र्य तथा

लक्षणा शब्द शक्ति का व्यापक प्रयोग किया गया है। रसखान और घनानंद ने साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। ठाकुर की रचनाओं में लोकोक्तियों का सुंदर प्रयोग बहुतायत हुआ है।

बोध प्रश्न

- 'श्याम सनेही' किसकी कृति है?
- ठाकुर कैसी रचनाएँ करते थे ?

4.3.4 रीतिमुक्त रचनाकार एवं रचनाओं का परिचय:

रीतिमुक्त कवियों में घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर, वृंद, गिरिधर कविराय तथा सूदन आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। इनका क्रमशः परिचय द्रष्टव्य है -

घनानंद

रीतिमुक्त कवि घनानंद का जन्म सं. 1764 में हुआ था। घनानंद मुग़ल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के मीर मुंशी थे। एक बार दरबारियों ने इनके विरूद्ध कुचक्र रचते हुए बादशाह के कान भर दिए कि मीर मुंशी बहुत अच्छा गाते हैं। जब बादशाह ने गाने को कहा तो न गाकर बादशाह की नृत्यांगना सुजान, जिससे घनानंद प्रेम करते थे, उसके कहने पर बादशाह की ओर पीठ करके सुजान को देखते हुए उन्होंने बहुत ही हृदयहारी गायन किया। बादशाह ने अपनी उपेक्षा से कुपित होकर घनानंद को अपने नगर से बाहर जाने का आदेश दिया। जब घनानंद ने चलते समय सुजान को साथ चलने के लिए कहा, तो सुजान ने इंकार कर दिया। इस घटना से घनानंद का मन संसार से विरक्त हो गया और उन्होंने वृंदावन पहुँच कर निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षा ले लिया।

घनानंद की प्रमुख रचनाओं में 'सुजान सागर', 'विरह-लीला', 'रस-केलिवल्ली', 'सुजान हित', 'सुजान विनोद', 'सुजान हित प्रबंध' 'कृपाकांड', 'कोकसार' तथा फुटकर सवैयों तथा लगभग 400 कवित्त की रचनाएँ की। यही नहीं छतरपुर के राज पुस्तकालय में घनानंद की कृष्ण भक्ति संबंधी रचनाएँ बड़ी संख्या में देखी जा सकती है। इन रचनाओं में 'ब्रजव्यवहार', 'प्रिया-प्रसाद', 'कृष्ण-कौमुदी', 'नाम माधुरी', 'धाम चमत्कार', 'गोकुल विनोद', 'भावनाप्रकाश', 'वृंदावन मुद्रा', 'रस-बसंत' तथा 'प्रेम पत्रिका' आदि विविधमुखी रचनाएँ देखी जा सकती हैं। घनानंद की रचनाओं में प्रेम के फारसी काव्य-पद्धति का अत्यधिक प्रभाव है। इनकी रचनाओं में हृदय की छोटी से छोटी भावनाओं का चित्रण हुआ है। इनकी रचनाओं में सुजान शब्द का प्रयोग कृष्ण के लिए भी प्रयुक्त किया गया है, किंतु इस आधार पर इन्हें भक्त कवि नहीं माना जा सकता है। इन्हें विरक्ति भावना के उदय होने के पश्चात् भी प्रेम मार्ग के पथिक के रूप में ही जाना जाता है। यदि इन्हें प्रेमरस का अवतार कहें तो अत्युक्ति न होगी। एक उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है -'अति सूधो सनेह को मारग है, जहँ नैकु सयानप बाँक नहीं।/ तहँ सांचे चलै तजि आपनपौ, झिझकै कपटी जो निसाँक नहीं ।/ घनानंद प्यारे सुजान सुनौ, इन एक ते दूसरो आँक नहीं।/ तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लहू पै देहु छटाँक नहीं।'

घनानंद ने काव्य के शिल्प पक्ष पर सम्यक ध्यान देते हुए रचनाएँ की हैं। उन्होंने भाषा, छंद, अलंकार के साथ ही विशुद्ध ब्रज भाषा का व्यंजनात्मक प्रयोग करते हुए परवर्ती रचनाकारों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

आलम

रीतिमुक्त कवियों में आलम का जन्म सन् 1655 में प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आलम औरंगजेब के पुत्र मुअज्जमशाह के दरबारी कवि थे। हिंदी साहित्य के आलोचकों का मानना है कि आलम की प्रेयसी रंगरेजिन थी, जो बहुत ही मधुर कविताएँ लिखती थी। कुछ आलोचक रंगरेजिन का नाम शेख मानते हैं। इनकी प्रेम कहानी भी अनोखी है। कहते हैं एक बार आलम ने अपनी पगड़ी रंगने को दिया था, उसमें दोहे की एक पंक्ति रह गयी थी - 'कनक छरी-सी कामिनी काहे को कटि छीन', जिसका रंगरेजिन ने उत्तर देते हुए लिख कर भेजा-'कटि को कंचन काटि विधि कुचन मध्य धरि दीन।'

आलम के समस्त काव्यों का 'आलमकेलि' के नाम से संग्रह किया गया है। शेख भणिति के साथ लिखी कवितायेँ रंगरेजिन की ही मानी जाती है। इनकी कविताओं के संबंध में आचार्य शुक्ल ने कहा है - 'ये प्रेमोन्मत्त कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार रचना करते थे। इसी से इनकी रचनाओं में हृदय-तत्व की प्रधानता है। प्रेम की पीर या इश्क का दर्द इनके एक-एक वाक्य में भरा पाया जाता है। उत्प्रेक्षाएँ भी इन्होंने बड़ी अनूठी और बहुत अधिक की हैं। शब्द-वैचित्र्य, अनुप्रासादि की प्रवृत्ति इनमें विशेष रूप से कहीं नहीं पाई जाती। शृंगार की ऐसी उन्मादमयी उक्तियाँ इनमें मिलती हैं कि पढ़ने और सुनने वाले लीन हो जाते हैं। यह तन्मयता सच्ची उमंग में ही संभव है। प्रेम की तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना रसखान और घनानंद की कोटि में होनी चाहिए।' इस प्रकार आलम की रचनाओं में स्वच्छंदतावादी सारी विशेषताएँ देखी जा सकती हैं।

ठाकुर

हिंदी साहित्य में स्वच्छंदतावादी रीतिमुक्त कवियों में ठाकुर का नाम अत्यंत प्रसिद्ध है। ठाकुर का जन्म बुंदेलखंड में 1823 में हुआ। जोधपुर के राजा हिम्मत बहादुर के दरबार में इन्हें पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। ठाकुर की रचनाओं को लाला भगवानदीन ने 'ठाकुर ठसक' के नाम से संग्रहित किया है। इसके अतिरिक्त 'ठाकुर शतक' नामक रचना भी इन्हीं की मानी जाती है। इनकी कविताओं में फारसी की काव्य शैली को देखा जा सकता है। प्रेम की सहज शैली को ठाकुर ने बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत किया है। इनकी कविताओं में लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग यथास्थान हुआ है, जिससे ब्रजभाषा की सुंदरतम छटा अधिक ही द्रष्टव्य होती है। ठाकुर की रचनाओं में लोकव्यापार की सुंदर झांकी द्रष्टव्य होती है। मानव जीवन के विविध व्यापार इनकी कविताओं को अधिक मीठी बनाती हैं।

बोधा

बोधा का वास्तविक नाम बुद्धिसेन है। बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में सं. 1804 जन्मे बुद्धिसेन को बोधा नाम महाराजा पन्ना ने दिया था। कवि बोधा दरबार की 'सुभान' नामक वेश्या से प्रेम करते थे। महाराज के सामने ही प्रेम प्रकट करने के कारण राजा ने इन्हें 6 माह के

लिए देश निकाला दे दिया था। इन 6 माह में बोधा ने 'विरह-वारीश' काव्य सर्जना की, जिसे सजा समाप्त होने के बाद उन्होंने राजा पन्ना को सुनाया तो राजा ने प्रसन्न होकर सुभान वेश्या बोधा को सौंप दिया। इसके पश्चात् उन्होंने 'इश्कनामा' काव्य की रचना की। इनके काव्य में कहीं कहीं प्रेम का बाजारू रूप भी देखा जा सकता है। इनकी रचनाओं में यत्र-तत्र घनानंद सी भावुकता देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए इन पंक्तियों को देख सकते हैं - 'जब ते बिछुरे कवि बोधा हितू, तब ते उरदाह थिरातो नहीं। हम कौन सों पीर कहें अपनी, दिलदार तो कोई दिखातो नहीं।' समग्रतः बोधा की कविताओं में प्रेमरस का भरपूर आनंद लिया जा सकता है।

रीतिमुक्त काव्य धारा में प्रेमासक्ति के साथ ही कुछ ऐसे भी कवि भी रहें, जिन्होंने नीति सम्बन्धी काव्य रचनाएँ की हैं। नीति संबंधी काव्य रचना करने वाले कवियों में वृंद, लाल, गिरधर कविराय तथा सूदन का नाम अति प्रसिद्ध है। रीतिमुक्त स्वच्छंद काव्यधारा के कवियों के बारे में निम्न बिंदुओं में जाना जा सकता है।

वृन्द

वृन्द कृष्णगढ़ के महाराजा राजसिंह के गुरु थे। रीतिकालीन समाज में 'वृन्द सतसई' अति प्रचलित नीति रचना के रूप में पढ़ी जाती थी। इसके अतिरिक्त 'चौर पंचाशिका', 'शृंगार शिक्षा' रचना को हिंदी के विद्वान समीक्षक वृन्द की ही मानते हैं। इनके काव्य की ये पंक्तियाँ वृन्द की नीति दृष्टि को स्पष्ट करती हैं - 'भले बुरे सब एक सम जौ लौ बोलत नाहिं।/ जानि परत है काग पिक ऋतु बसंत के माहिं।'

लाल

लाल कवि बुंदेलखंड के मऊ के रहने वाले थे। महाराज छत्रसाल के दरबारी कवि लाल की 'विष्णु विलास', 'छत्रप्रकाश' प्रमुख रचनाएँ हैं। लाल ने 'छत्रप्रकाश' रचना में महाराज छत्रसाल के यश का गायन दोहा तथा चौपाई शैली में किया है। 'विष्णु विलास' में उन्होंने नायिका-भेद से सम्बंधित काव्य रचे हैं। उन्होंने अपने प्रबंध कौशल के माध्यम से सहज शैली में काव्य रचना की है।

गिरधर कविराय

गिरधर की कुण्डलियाँ आज भी ग्रामीण तथा बुद्धिजीवियों में प्रचलित है। नीति से सम्बंधित कुण्डलियाँ इनकी प्रसिद्धि का आधार है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में- 'वस्तुतः साधारण हिंदी जनता के सलाहकार प्रधानतः तीन ही रहे हैं - तुलसीदास, गिरधर कविराय और घाघ। तुलसीदास धर्म और आध्यात्म के क्षेत्र में, गिरधर कविराय व्यवहार और नीति के क्षेत्र में, और घाघ खेती-बाड़ी के मामले में।' एक छोटा सा उदाहरण इस सन्दर्भ में दृष्टव्य है - 'दौलत पाय न कीजिए सपन में अभिमान।' इस प्रकार गिरधर की कुंडलिया अति सुन्दर, सरल, रोचक तथा प्रेरक रूप में प्रचलित है।

सूदन

कवि सूदन मथुरा के रहने वाले माथुर चौबे थे। ये भरतपुर के महाराज वदनसिंह के पुत्र सुजानसिंह अथवा सूरजमल के छत्रछाया में रहते थे। कवि सूदन ने अपने आश्रयदाता के वीर चरित्र से प्रभावित होकर 'सुजान-चरित' नाम से प्रबंध काव्य की रचना की। आचार्य

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सूदन के सन्दर्भ में कहा है- 'चाँद के पृथ्वीराज रासो में जिस प्रकार घोड़ों और अस्त्रों आदि की उपमा देने वाली सूची मिलती है उसी प्रकार सूदन के सुजान-चरित में भी है। काव्य-रूढ़ियों का इसमें जमकर सहारा लिया गया है, यद्यपि कथानक में रूढ़ियों की वैसी भरमार नहीं जैसी कि रासो में है। शब्दों को तोड़-मरोड़कर युद्ध के अनुकूल ध्वनिप्रसु वातावरण उत्पन्न करने में सूदन बहुत दक्ष हैं पर उसमें भाषा के प्रति न्याय नहीं हो सका है।'

उपर्युक्त उद्धृत रीतिमुक्त कवियों के अतिरिक्त द्विजदेव की 'सिंहासन बत्तीसी' भी उल्लेखनीय है। रीतिमुक्त रचनाओं की कई ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं, जो उन्हें अपने समकालीन रचनाओं में विशेष बनाती है।

क) प्रेम के स्वच्छंद स्वरूप का चित्रण

रीतिमुक्त रचनाओं में उदात्त प्रेम का वासना रहित स्वच्छंद चित्रण किया गया है। इन कवियों ने प्रेम को सृष्टि का मूल आधार माना है। रीतिमुक्त कवियों की प्रेम के प्रति एकनिष्ठता और संकल्प ही इनकी वेदना को मर्मस्पर्शी बनाती है। ये कवि अपनी प्रेमिका के न मिलने पर किसी पर रोष अथवा दोष व्यक्त नहीं करते हैं, वरन प्रेम को ईश्वरीय कृपा के रूप में अनुभूत करते हैं । यही कारण है कि प्रेम के संयोग तथा वियोग दोनों ही स्थितियों में संतुलित रहते हैं।

ख) शृंगार रस का सुन्दर परिपाक

रीतिमुक्त कवियों का सबसे प्रिय रस शृंगार रस है। उन्होंने शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों की रूपों को बड़े मनोयोग के साथ अपनी कविताओं में चित्रित किए हैं। इन कवियों को अपनी प्रेयसी का रूप कभी धुंधला नहीं प्रतीत होता है, बल्कि वह उनके लिए सदैव आकर्षक तथा नवीन प्रतीत होता है। एक उदाहरण इस सन्दर्भ में देखा जा सकता है - 'रावरे रूप की रीति अनूप नयो-नयो लागत ज्यौं-ज्यौं निहारिये।'

रीतिमुक्त कवियों का मन संयोग से अधिक वियोग में रमा है। अपने प्रियतम के प्रेम में तड़पना भी इन्हें प्रीतिकर प्रतीत होता है। प्रेम के परंपरागत प्रतिमान मछली और पतिंगा भी इन कवियों का आदर्श नहीं बन सका, क्योंकि प्रेमी के वियोग में भी इन कवियों ने आनंद की अनुभूति की है।

ग) प्रकृति का उदात्त उपमान के रूप में प्रयोग

रीतिमुक्त रचनाकारों ने प्रकृति के आलंबन तथा उद्दीपन, दोनों ही रूपों का चित्रण किया है। मिलन के समय प्रकृति मन को मुग्ध करती है, तो वियोग में वही प्रकृति प्रेमी की तड़प को बढ़ा देती है। प्रकृति पर आधारित काव्य तो इस काल में नहीं रचे गए, किन्तु काव्य में नायक-नायिका के सौंदर्य में वृद्धि के चित्रण में प्रकृति मानो स्वयं सजीव बनकर अवतरित हो गई हो।

घ) रीतिमुक्त रचनाओं में भक्ति चित्रण

हिंदी साहित्य में भक्तिकाल के बाद रीतिकालीन रचनाएँ कदाचित विपरीत दिशा में रची जाने लगी थी। इसके बावजूद भी पूर्व से चली आ रही काव्य परिपाटी पूर्णतः परिवर्तित न हुई। यही कारण है कि रीतिमुक्त कवि घनानंद अपने प्रेम के वियोगावस्था में सुजान से प्रेम की कसक कृष्ण के प्रेम में परिवर्तित होती हुई प्रतीत होती है। किंतु इन कवियों की भक्ति भावना में भक्तिकाल जैसी भावना नहीं दिखाई देती है।

ङ) सूफी प्रेम पद्धति की झलक

रीतिमुक्त कवियों ने प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए सूफी मार्ग का चयन किया किंतु सूफी कवियों की तरह दार्शनिकता इनकी रचनाओं में किंचित भी नहीं है। रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं पर सूफी काव्य पद्धतियों के प्रभाव का प्रमुख कारण यह है कि घनानंद तथा आलम आदि कवि मुग़ल बादशाहों के दरबारी कवि थे और राजकाज की प्रमुख भाषा फारसी होने के कारण इन कवियों के काव्यों पर सूफी काव्य प्रभाव स्वाभाविक है।

च) काव्य में सामाजिकता का उल्लेख

रीतिमुक्त रचनाओं को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकाल पर लगने वाले आक्षेप कि वे समाज सापेक्ष रचनाएँ नहीं है, कदाचित रीतिमुक्त कवियों की रचनाएँ देखने के पश्चात् सत्य प्रतीत नहीं होती हैं। क्योंकि इनकी रचनाओं में तद्युगीन समाज, रीति-रिवाज, मूल्यों तथा परंपराओं को बड़ी सुंदरता के साथ चित्रित किया गया है।

छ) भाषा-शिल्प

रीतिमुक्त रचनाओं की मुख्य भाषा हिंदी साहित्य की पूर्व प्रचलित ब्रज भाषा ही थी। चूंकि यह भाषा प्रेम भावनाओं की अभिव्यक्ति हेतु सर्वथा उपयुक्त थी, इसलिए प्रेम प्रधान रीतिकालीन रचनाओं के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। दरबारी संस्कृति के कारण कवियों का काव्य-सर्जना का प्रमुख उद्देश्य राजाओं एवं दरबारियों का मनोरंजन करना था। अतः रीतिमुक्त कवियों के द्वारा अपनी रचनाओं को प्रतिस्पर्धात्मक स्तर पर खरा सिद्ध करने के लिए विविध छंद रूपों, बिंबों तथा अलंकारों के प्रयोग किए गए हैं। इन रचनाओं में सर्वाधिक सवैया, कवित्त तथा दोहा छंद के ब्रज भाषा के सामंजस्य के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। इसके अतिरिक्त छप्पय, बरवै, सोरठा आदि छंदों की भी काव्यों में प्रयुक्ति हुई है। अलंकारों के क्षेत्र में रीतिमुक्त रचनाओं में अर्थालंकारों तथा शब्दालंकारों को खूब प्रमुखता दी गई है, जिन्हें देख कर कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि मानो अलंकार का चित्रण करने के लिए ही रचनाएँ की गई हैं। डॉ. नगेन्द्र ने रीतिमुक्त रचनाओं के सन्दर्भ में कहा है - 'भाषा के प्रयोग में इन कवियों ने एक खास नाज़ुक मिजाजी बरती है। इनके काव्य में किसी भी ऐसे शब्द की गुंजाइश नहीं जिसमें माधुर्य नहीं है।'

भाषा के स्तर पर रीतिमुक्त धारा की रचनाओं में व्याकरणिक दोष, यथा लिंग, कारक आदि के स्तर पर होते हुए भी भाषिक माधुरी सर्वत्र व्याप्त रही। इस काल की कला संबंधी तीक्ष्णता के कारण ही 'शृंगार काल', 'कलाकाल', 'अलंकार काल' आदि नाम दिया गया है। इस धारा की काव्य रचनाओं का उद्देश्य आनंद-प्राप्ति अथवा कवियों का निज प्रेमाभिव्यक्ति ही अधिक थी।

बोध प्रश्न

- सुजान किस कवि की प्रेमिका का नाम था?
- सुभान किस कवि की प्रेयसी थी?

4.3.5 हिंदी साहित्य में रीतिमुक्त का स्थान एवं महत्त्व

साहित्य के सत्यं, शिवम् तथा सुन्दरम् की अवधारणा रीतिकालीन रचनाओं का उद्देश्य न था। इसके बावजूद भी रीतिमुक्त रचनाएँ इस युग के साहित्य की साख बचाने में समर्थ रही। रीतिमुक्त कवियों ने अपने युग के काव्यादर्शों को अपनाते हुए भी अपनी स्वच्छंद काव्य प्रवृत्ति को विकसित किया। कोई भी रचनाकार अपने युग से विच्छिन्न होकर रचना कर्म में प्रवृत्त नहीं हो सकता। रीतिमुक्त कवि काव्य के शरीर से अधिक आत्मा को महत्त्व देते हैं, यही कारण है कि इनका मन अनेक मधुर भावनाओं का अम्बार प्रतीत होता है। जहाँ मन का राज चलता हो, वहाँ बुद्धिवाद फीका पड़ जाता है। इन कवियों के भावावेग इन्हें उन्मुक्त भाव से काव्य रचना के लिए प्रवृत्त करते हैं। विशेष रूप से घनानंद और आलम के काव्य भावों को देख कर इनके काव्य बिम्ब स्वतः ही आकर्षक बन जाते हैं। इन काव्यों को पढ़-सुन कर पाठक अनायास ही अनोखे रचनालोक के आनंद का आस्वादन करने लगते हैं। रीतिमुक्त कवियों की आत्माभिव्यक्ति अपने पूर्वयुगीन भक्तिकालीन आत्माभिव्यक्ति से सर्वथा भिन्न धरातल पर स्थित है। क्योंकि भक्तिकाल में आत्माभिव्यक्ति की प्रक्रिया में दास्य भाव समाहित रहता था। जबकि रीतिमुक्त रचनाओं में प्रेम भाव की प्रधानता देखी जा सकती है। सबसे बड़े संयोग की बात ये रही कि रीतिमुक्त रचनाओं के अधिकांश कवि अपने जीवन में प्रेम में चोट खाएँ हुए हैं। अपने जीवन में मिले चोट को ये कवि आहत होकर अपनी रचनाओं में व्यक्त करते हुए स्वयं को प्रेम पीड़ा से राहत दिलाने का प्रयास करते हैं। भक्तिकालीन प्रेम की पीड़ा पाठक अथवा श्रोता को आलौकिक प्रेमानुभूति की अनुभूति कराती है। रीतिमुक्त रचनाएँ पाठक या श्रोता को लौकिक सुख की अनुभूति कराता है। इन रचनाओं में फारसी की उत्तम पुरुष में प्रस्तुति को देखा जा सकता है।

रीतिमुक्त काव्यों में प्रेम के व्यथाजनक पहलुओं को समाहित किया गया है। यहाँ तक कि संयोग के समय में भी ये कवि वियोग भय से त्रस्त हैं। एक उदाहरण देख सकते हैं - 'यह कैसी संयोग न सूझि परै, जो वियोग न क्यों हूं बिछोहतु है।' इस काव्य धारा के रचनाकारों पर अपने युगीन समाज की विचारधारा का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। रीतिकालीन सामाजिकों के मन पर निराशा, अवसाद तथा घुटन के बादल छाये हुए थे। जनसामान्य को अपने व्यक्तिगत व्यथा-कथा को अभिव्यक्त करने हेतु किसी भी स्तर पर स्वतंत्रता न थी, ऐसे में रीतिमुक्त कवियों की व्यक्तिगत प्रेमकथा को यदि महत्त्व मिलता है तो निश्चय ही इन रचनाओं में सामाजिक असंतोष का थोड़ा बहुत अंश तो होगा ही। यह असंतोष काव्य में यदा-कदा देखा जा सकता है।

रीतिमुक्त काव्यों की सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपने पूर्व परंपरा में प्रयुक्त नायिका-भेद की शैली को नहीं अपनाया है। क्योंकि परंपरागत नायिका-भेद में नायिका के बाह्य सौन्दर्य का चित्रण ही किया जाता रहा है। रीतिमुक्त कवियों ने नायिका के आतंरिक अर्थात आत्मिक सौन्दर्य को अधिक महत्त्व दिया। नायिकाओं का रीतिमुक्त कविताओं में विशेष स्थान रहा, क्योंकि वे लौकिक जीवन से जुड़ी हुई थीं। इसलिए जब कवियों ने काव्य रचनाएँ की तो अलंकार, मुहावरे आदि सहज स्वरूप में आते गए। रीतिकालीन अन्य काव्यधाराओं की भाँति इन्हें काव्य में अलंकार, रस, छंद तथा मुहावरों को अपनी विद्वत्ता प्रदर्शन के लिए नहीं प्रयुक्त करने पड़े। ठाकुर की काव्य रचनाओं में अलंकार का अत्यल्प प्रयोग हुआ है, किंतु ठाकुर ने

कहावतों का प्रयोग करते हुए साहित्य को जनसामान्य से जोड़ने की कोशिश अवश्य की। उनकी रचनाओं की अनगढ़ता पाठकों को अपनी ओर अधिक आकर्षित करती है। घनानंद की रचनाओं में यद्यपि अलंकार खूब प्रयुक्त हुए हैं तथापि वे सप्रयास काव्य में न आकर स्वतः ही आ गए हैं। घनानंद की शैली में मुहावरों तथा लक्षणाओं का नए ढंग से प्रयोग किया गया है।

रीतिमुक्त रचनाओं पर यदि दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि इन रचनाओं में नायिकाओं का मनोहारी चित्रण हुआ है। घनानंद, आलम, ठाकुर आदि कवियों के कई पद बिना किसी नायिका भेद तथा अलंकारों के भी अति मनोहारी बन पड़े हैं। जैसे - सुजान का सोकर उठना, काली साड़ी पहनना, बन-सँवर कर निकलना, चिक की आड़ से झांकना, नाचने के लिए एड़ी उठाना, सखियों से हँस-हँस कर बातें करना आदि छोटी-छोटी दैनंदिन कार्यों का चित्रण नायिका को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है।

रीतिमुक्त कवियों के उदात्त प्रेम का पक्ष इनकी रचनाओं को कालातीत बनाती है। ये कवि अपने प्रेमी से बिछड़ कर उनकी खुशियों के लिए ही मंगल-कामनाएँ करते रहते हैं। आलम ,घनानंद आदि कवियों को जब अपनी प्रेयसी नहीं मिलती हैं, तो वे अपनी प्रेयसी के सन्देश से ही संतुष्ट हो जाते हैं। अपनी प्रेयसी के वियोग में रहकर भी उनकी यादों के सहारे जीवन जीने में इन कवियों को कोई गुरेज नहीं है। अपने प्रिय से मिले वियोग के क्षणों को भी ये कवि अपना सौभाग्य समझ कर स्वीकार करते हैं। रीतिमुक्त कवियों का निश्छल प्रेम भाव प्रेमी के साथ रहने या दूर रहने पर कम या अधिक नहीं होता है। रीतिमुक्त कवि एक साहित्यकार से अधिक सच्चे प्रेमी सिद्ध होते हैं। इन कवियों को सदैव प्रेम-भाव में मग्न रहना सुहाता है। भावप्रधानता इस धारा के रचनाकारों को अश्लीलता से मुक्त रखती है। ये कवि प्रिय के साथ रहने या दूर रहने पर, दोनों ही स्थितियों में निरंतर प्रेम भाव में मग्न रहते थे। प्रिय के वियोग वर्णन का चित्रण करने के लिए ये कवि अनुभूतियों का सागर उड़ेल देते हैं। वे अपने मन की छोटी से छोटी बातों को विविध प्रतीकों, बिम्बों के सहारे ऐसे अभिव्यक्त करते हैं कि पाठक तथा श्रोता गूँगे के गुड़ के समान उसका आस्वादन करने लगते हैं। कई बार ये प्रेमाभिव्यक्तियाँ स्थूल रहने पर सांसारिक प्रतीत होती हैं, तो कई बार ईश्वरीय निकटता की अनुभूति के कारण आलौकिक प्रतीत होती हैं। ये कवि रहस्य के क्षेत्र में अधिक सफल तो नहीं हुए हैं, किंतु रीतिमुक्त रचनाएँ काव्यात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से अति मनभावन बन पड़ी हैं। ये कवि अपने प्रिय की उपेक्षा अथवा लापरवाही से आहत न होकर सदा प्रिय के प्रेमानंद में मग्न रहते हैं। ये रचनाकार कई बार प्रेम का प्रतिदान प्रेम से ही चाहते हैं, यही कारण है कि घनानंद अपनी प्रेयसी की उपेक्षा से उद्विग्न हो उठते हैं। फ़ारसी-काव्य के एकतरफा प्रेम की प्रवृत्ति को रीतिमुक्त रचनाओं में प्रस्तुत किया गया है। भक्ति काल की माधुर्य भक्ति में भी रीतिमुक्त कवियों की भांति ही प्रिय की उपेक्षा के विरुद्ध शिकायतें देखी जा सकती है। भक्तिकालीन प्रेम में विषमता के लक्षण रीतिमुक्त रचनाओं में भी द्रष्टव्य हैं। प्रेम की कसक इन रचनाओं की प्रमुख भावधारा बन कर उभरती है। स्वच्छंदतावादी रीतिमुक्त कवियों की प्रेमभाव की पुष्टि का आधार प्रिय की उपेक्षा के पश्चात् भी तिल भर न डगमगाई, इन कवियों की यही सोच उनकी रचनाओं को औदात्य के धरातल पर स्थापित करती है। प्रेम की

पुष्टि मिलन से अधिक वियोग में सिद्ध होती है, ऐसी ऊँची विचारधारा ही रीतिमुक्त कवियों को दृष्टि प्रौढ़ता प्रदान करती है।

भाव, भाषा, शिल्प तथा अभिव्यक्ति के स्तर पर रीतिमुक्त रचनाकार एवं रचनाएँ साहित्य के ऊँचे पायदान पर स्थापित है। साहित्यिक भाषा-शिल्प की सहजता रीतिमुक्त रचनाओं को अधिक जीवंत बनाती है। साहित्य के लोक पक्ष के बिना साहित्य का कोई औचित्य नहीं रह जाता है। अतः रीतिकालीन साहित्य पर लगने वाले आक्षेपों को निरस्त करने में रीतिमुक्त रचनाओं का प्रदेय स्तुत्य है। भक्तिकाल का साहित्य जनता के बीच, जनता के लिए तथा जनता के द्वारा ही प्रवाहित हुआ, इसलिए वह हिंदी साहित्य के स्वर्णिम युग की साक्षी बन जाती है। साहित्य दरबार में आकर रीतिकालीन हिंदी साहित्य की आत्मा कसमसाने लगती है। भाषा, संस्कृति तथा समाज के अन्यमनस्क भाव को साहित्य अधिक देर तक वहन न कर सकी। फलतः स्वच्छंदतावादी कवियों के असफल सांसारिक प्रेम वर्णन के बहाने प्रवाहित हो उठी। भक्तिकाल के राधा-कृष्ण की गरिमा को बचाने में रीतिमुक्त रचनाकारों का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि जनसाधारण के हृदय से उतर कर दरबारी मानसिकता वाले कवियों की लेखनी से राधा-कृष्ण सामान्य नायक-नायिका बन गये थे। रीतिमुक्त कवियों के निर्मल प्रेम ने कुछ सीमा तक उन्हें पुनः प्रतिष्ठा दिलाने में सफलता प्राप्त की।

बोध प्रश्न

- रीतिमुक्त कवि किसकी उपेक्षा से विरक्त होते थे?
- रीतिमुक्त कवियों ने राधा-कृष्ण के किस रूप का चित्रण किया है?

4.4 पाठ सार

हिंदी साहित्य में रीतिमुक्त काव्य धारा ने अपनी रचना शैली के विशिष्ट गुणों के कारण अधिक लोकप्रियता प्राप्त की। जहाँ सामन्तवादी विचारधारा के कारण रीतिकालीन रचनाएँ अश्लीलता की ओर बढ़ती जा रही थी, वहीं रीतिमुक्त रचनाकारों ने तद्युगीन परिपाटी से अलग अपने प्रेम को मुख्य विषय बनाते हुए सृष्टि का आधार प्रेम में मानते हुए उसके उज्ज्वल पक्ष को प्रस्तुत किया। रीतिमुक्त कवियों ने भक्तिकालीन राधा-कृष्ण तथा राम-सीता को भौतिक प्रेम की भावधारा पर न उतारते हुए उन्हें गरिमामयी स्थिति प्रदान की। ये कवि प्रिय के मिलन या विछोह में, दोनों ही स्थितियों में निरंतर प्रेम भाव में मग्न रहते थे। प्रिय के वियोग वर्णन का चित्रण करने के लिए ये कवि अनुभूतियों का सागर उड़ेल देते हैं। वे अपने मन की छोटी से छोटी बातों को अलग-अलग प्रतीकों, बिंबों के माध्यम से ऐसे अभिव्यक्त करते हैं कि पाठक तथा श्रोता भावमग्न हो जाते हैं। कई बार ये प्रेमाभिव्यक्तियाँ स्थूल रहने पर सांसारिक प्रतीत होती हैं तो कई बार ईश्वरीय निकटता की अनुभूति के कारण आलौकिक प्रतीत होती हैं। रीतिमुक्त कवियों के उदात्त प्रेम का पक्ष इनकी रचनाओं को कालातीत बनाती है। ये कवि अपने प्रेमी के साथ न देने पर भी उनकी खुशियों के लिए ही कुशल कामनाएँ करते रहते हैं। आलम, घनानंद आदि कवियों को जब अपनी प्रेयसी नहीं मिलती हैं तो वे अपनी प्रेयसी के सन्देश से ही संतुष्ट हो जाते हैं। अपनी प्रेयसी के वियोग में रहकर भी उनकी यादों के सहारे जीवन जीने में इन कवियों को कोई गुरेज नहीं है। अपने प्रिय से मिले वियोग के क्षणों को भी ये कवि अपना सौभाग्य समझ कर

स्वीकार करते हैं। रीतिमुक्त कवियों का निश्छल प्रेम भाव प्रेमी के साथ रहने या दूर रहने पर कम या अधिक नहीं होता है। रीतिमुक्त कवि एक साहित्यकार से अधिक सच्चे प्रेमी सिद्ध होते हैं। रीतिमुक्त कवियों के काव्य में भाव तथा शैली पक्ष दोनों ही बड़ी दृढ़ता के साथ चित्रित हुई हैं।

4.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. रीतिकाल के ऐसे कवियों को रीतिमुक्त या स्वच्छंद कवि कहा जाता है जिन्होंने रीति निरूपण और रीति निर्वाह की रूढ़ि का पालन नहीं किया।
2. इन कवियों ने मुख्य रूप से प्रेम की विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया है।
3. रीतिमुक्त काव्य में प्रेम की पीड़ा, मधुरता, सौंदर्य और उदात्तता के दर्शन होते हैं।
4. कुछ रीतिमुक्त कवियों ने प्रकृति का भी स्वतंत्र चित्रण किया है।
5. रीतिमुक्त काव्य में भक्ति के तत्व भी दिखाई देते हैं। लेकिन इसे विशुद्ध भक्ति काव्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता।
6. शब्दालंकारों के अत्यधिक प्रयोग के लिए भी रीतिमुक्त कवि खास तौर पर पहचाने जाते हैं।

4.6 शब्द संपदा

1. अंतर्मुखी = स्वयं की सोच में व्यस्त रहना
2. अत्युक्ति = बढ़ा-चढ़ा कर कही हुई बात
3. अन्यमनस्क = जिसका मन एकाग्र न हो
4. अभिव्यंजना = अभिव्यक्ति
5. अश्लील = जिसमें शील न हो
6. असार = सारहीन / तत्वरहित
7. उच्छृंखल = बंधन न मानना
8. ओज = साहस / प्रकाश
9. औदात्य = महान / श्रेष्ठ / उदार
10. खंडिता = जिसका प्रिय किसी अन्य स्त्री से प्रेम करे
11. तीक्ष्णता = पैनापन
12. ध्वनिप्रसु = काव्य भेद, जिसमें वाच्य से व्यंग्य चमत्कार उत्पन्न हो
13. निरस्त = त्याग किया हुआ
14. ब्रह्मज्ञान = अलौकिक सत्ता का ज्ञान
15. विदित = अवगत / ज्ञात
16. वैराग्य = विरक्ति / वियोग
17. शाश्वत = सदा रहने वाला
18. स्थूल = मोटा / मांसल
19. स्वच्छंद भाव = स्वतंत्र भाव

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी Estd. 1998 MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY

4.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. रीतिमुक्त काव्यधारा का विस्तृत परिचय दीजिए?
2. रीतिमुक्त कवियों के काव्यगत विशेषताओं को बताइए।
3. हिंदी साहित्य में स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का स्थान निर्धारित कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. घनानंद का काव्यगत परिचय दीजिए।
2. कवि आलम की काव्यात्मक विशेषताएँ बताइए।
3. रीतिमुक्त कवियों के सामाजिक पक्ष को बताइए।
4. रीतिमुक्त काव्य शिल्प का उल्लेख कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. डॉ. जार्ज ग्रियर्सन ने रीतिकाल को क्या नाम दिया? (   )
   (अ) रीतिकाव्य (आ) रीतिकाल (इ) रीतिग्रंथ काल (ई) रीति निरूपण काल
2. 'माधवानल कामकंदकला' किसकी कृति है? (   )
   (अ) घनानंद (आ) बोधा (इ) आलम (ई) बिहारी
3. रीतिकाल की समयावधि बताइए? (   )
   (अ) सन् 1700 से 1900 तक (आ) सन् 1770 से 1900 तक
   (इ) सन् 1600 से 1909 तक (ई) सन् 1700 से 1909 तक

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. संस्कृत में 'रीति' शब्द को .... पद रचना' के रूप में लिया जाता है।
2. 'लोग है लागि कवित्त बनावत' पंक्ति कवि.................... की है।
3. 'सुदामा-चरित' काव्य रचना ....कवि की है।
4. आलम की प्रेयसी का नाम ....था।

III. सुमेल कीजिए -

1. रामकुमार वर्मा	(अ) मुग़ल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले
2. आलम	(आ) राजा हिम्मत बहादुर के दरबार में
3. घनानंद	(इ) 'कला काल'
4. ठाकुर	(ई) 'मधुरता' का कवि

4.8 पठनीय पुस्तकें

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी रचना संचयन : महावीर प्रसाद द्विवेदी
2. हिंदी आलोचना का विकास : नंद किशोर नवल
3. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल
4. सं. हिंदी साहित्य का इतिहास : नगेंद्र
5. हिंदी साहित्य का अतीत (शृंगार काल) : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
6. हिंदी साहित्य - युग और प्रवृत्तियाँ : शिवकुमार वर्मा

खंड 2 : निर्गुण भक्तिकाव्य

इकाई 5 : कबीरदास, रैदास और मलिक मोहम्मद जायसी : एक परिचय

रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मूल पाठ : कबीरदास, रैदास और मलिक मोहम्मद जायसी : एक परिचय
5.3.1 कबीरदास
5.3.2 रैदास
5.3.4 मलिक मोहम्मद जायसी
5.4 पाठ सार
5.5 पाठ की उपलब्धियाँ
5.6 शब्द संपदा
5.7 परीक्षार्थ प्रश्न
5.8 पठनीय पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का भक्तिकाल स्वर्णिम युग माना जाता है। ग्रियर्सन ने इस समय को 'स्वर्ण युग' कहा है। निस्संदेह हिंदी साहित्य को कई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ इस काल के माध्यम से प्राप्त हुई हैं। हिंदी साहित्य इतिहास के भक्तिकाल को दो शाखा में विभाजित किया जाता है - सगुण भक्तिधारा एवं निर्गुण भक्तिधारा। भक्तिकाल के निर्गुण संत साहित्य के कवियों में कबीरदास का योगदान महत्वपूर्ण है एवं साथ ही रैदास का भी स्थान अतुलनीय है। सूफी साहित्य में प्रमुख कवि हैं मलिक मुहम्मद जायसी। किसी भी साहित्यकार व कृतिकार के कृति के बारे में जानने के लिए उसका समय एवं परिवेश की जानकारी रखना आवश्यक है, क्योंकि साहित्यकार अपने परिवेश का ही उपज होता है। परिवेशानुसार कृतियों की रचना करता है। अतः एक साहित्यकार का व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में जानकारी केवल साहित्यकार का ही नहीं, उस समय एवं परिस्थितियों का भी सूचक होता है।

5.2 उद्देश्य

छात्रो! इस ईकाई के अध्ययन के बाद आप -

- कबीरदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझ सकेंगे।
- कबीरदास की काव्यगत विशेषताओं को आत्मसात कर सकेंगे।
- रैदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझ सकेंगे।

- रैदास की काव्यगत विशेषताओं को आत्मसात कर सकेंगे।
- जायसी की काव्यगत विशेषताओं को आत्मसात कर सकेंगे।
- जायसी की काव्यगत विशेषताओं को आत्मसात कर सकेंगे।

5.3 मूल पाठ : कबीरदास, रैदास और मलिक मोहम्मद जायसी : एक परिचय

5.3.1 कबीरदास

व्यक्तित्व

हिंदी साहित्य के ज्ञानमार्गीय शाखा के प्रतिनिधि कवि संत कबीरदास का जन्म के बारे में मतभेद हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार कबीरदास का जन्म संवत् 1456 अर्थात् सन् 1399 ई. माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि कबीर का जन्म 'काशी' में हुआ था जबकि कुछ विद्वान उनको को 'मगहर' का वासी भी मानते हैं। लेकिन कबीरदास ने स्वयं को 'काशी का जुलाहा' कहा है। कहा जाता है कि संत कबीर का जन्म एक विधवा ब्राहमणी से हुआ था। इसने सामाजिक अपवाद से बचने के लिए नवजात बालक को 'लहरतारा' तालाब की सीढ़ियों पर छोड़ दिया था। इस बालक को नीरू और नीमा नामक मुस्लिम जुलाहा दंपति ने लालन-पालन किया। कबीरदास रामानंद के शिष्य थे। रामानंद जी ज्ञानमार्ग का उपदेश देकर सामाजिक हीनता की भावना को समूल नष्ट करने का प्रयास किया और साधना एवं भक्ति को सभी वर्गों तथा सभी वर्णों के लिए समान माना। इसी गुरु-मंत्र को लेकर कबीरदास ने तत्कालीन सामाजिक रूढि परंपराओं, कुरीतियों, धार्मिक-सामाजिक विसंगतियों पर करारा व्यंग्य किया है। किंतु कबीरदास के 'राम' रामानंद के 'राम' नहीं हैं।

कबीरदास विवाहित थे। उनकी पत्नी का नाम लोई है। उनकी दो संतानें थीं - पुत्र कमाल और पुत्री कमाली थी। कबीरदास जुलाहे का काम करते थे। उसी कमाई से अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। अपने विद्रोही स्वभाव के चलते उन्हें राज सत्ता के कोप का भी शिकार होना पड़ा। संत कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। इस संबंध में स्वयं कबीरदास कहते हैं कि-

"मसि कागद छूयो नहि, कलम गहि नहिं हाथ।
चरिऊ जुग की महातम्, मुखहि जनाई बात॥"

लेकिन कबीरदास बहुश्रुत व्यक्ति थे। उन्होंने लंबी-लंबी यात्राएँ की थी। विभिन्न धर्मों और मतों के संतों और फकीरों का सत्संग किया था। अपने जीवनाभुवों को चिंतन-मनन का आधार बनाया था। इसलिए कबीरदास कहते हैं कि-

"मैं कहता आँखिन की देखी।
तू कहता कागद की लेखी॥"

वे हिंदू-मुस्लिम एकता के पक्षधर थे। उन्होंने हिंदू-मुसलमानों के बीच एक सामान्य मानव धर्म का प्रचार किया है। उन्होंने अंधविश्वासों और रूढ़ियों का विरोध किया है।

कबीरदास के निधन के बारे में कहा गया है कि हिंदू उनके शव को जलाना चाहते थे और मुसलमान दफनाना। इस पर वाद-विवाद हुआ किंतु पाया गया कि कबीरदास का शव अंतर्धान हो गया। वहाँ कुछ फूल पड़े मिले। उनमें कुछ फूलों को हिंदुओं ने अग्नि के हवाले किया और कुछ फूलों को मुसलमानों ने ज़मीन में दफना दिया। कबीरदास की मृत्यु 'मगहर' जिला 'बस्ती' में संवत् 1575 विक्रम अर्थात् सन् 1518 ई. में हुई। कबीरदास का विश्वास था कि जो व्यक्ति हृदय से निर्मल और पवित्र है, चाहे काशी में मरे या मगहर में उसकी मुक्ति अवश्य होनी है-

"हिरदै कठौर मरै बारससि, नरक न वंच्या जाई।
हरि कौ दास मरै जे मगहर, सेन्या सकल विराई॥"

अक्षर ब्रह्म के परसाधक कबीरदास सामान्य अक्षर-ज्ञान से रहित थे। उनकी रचनाओं का संग्रह 'गुरुग्रंथ साहब' में और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तथा डॉ. श्यामसुंदर दास द्वारा संपादित 'कबीर ग्रंथावली' में है। कबीर की रचनाएँ 'बीजक' नामक ग्रंथ में संग्रहित हैं। 'बीजक' के तीन भाग हैं - साखी, रैमनी, सबद।

कबीरदास निर्गुणवादी अथवा निराकार संत है। उनके राम, दशरथ के राम से अलग है। वे कहते हैं कि दशरथ सुत तिहू लोक बखाना।/ राम नाम का मरम है आना।

उन्होंने राम का प्रयोग निर्गुण ब्रह्म राम के रूप में किया है। कबीरदास ने सहज योग को ही अपनी भक्ति-भावना में व्यक्त किया है। कबीरदास की साधना पद्धति पर नाथ पंथियों से प्रभावित है। जैसे: इंद्रीय साधना, प्राण साधना, मन साधना तथा वाणी साधना आदि। स्वामी रामानंद की विचारधारा तथा नाथ पंथ विचारधारा का मिश्रित रूप कबीरदास की भक्ति पद्धति में व्यक्त है। वे मुख्य रूप से उपदेशक और समाज सुधारक थे। उनकी रचनाओं में काव्य कम, काव्यानुभूति अधिक है।

कबीर जन्म से विद्रोही स्वभाव के थे। समाज सुधारक कारणों से प्रेरित होने के कारण वे समाज सुधाकर, प्रगतिशील, दार्शनिक और यथार्थवादी कवि रहे। उनके व्यक्तित्व का पूरा-पूरा प्रतिबिंब उनके साहित्य में विद्यमान है। कबीरदास का प्रतिपाद्य स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित किया जाता है। इनमें से प्रथम रचनात्मक है तथा दूसरा आलोचनात्मक। कबीरदास की भाषा को भी विभिन्न विद्वानों ने अनेक नामों से पुकारा है। कोई उनकी भाषा को खिचड़ी भाषा कहते हैं, तो कोई सधुक्कड़ी भाषा नाम देते हैं। किसी ने उसे संज्ञा भाषा कहा है, तो किसी ने संत भाषा नाम दिया है। उनकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी, पंजाबी, मिश्रित खड़ीबोली है। कबीरदास की भाषा में जो संप्रेषणीयता तथा प्रसाद गुण है। वह निशिचत रूप से लौकिक भाषा हिंदी है। उनकी भाषा को लेकर कई विद्वान के कई कथन हैं। जैसे- रामचंद्र शुक्ल ने कबीरदास की भाषा को सधुक्कड़ी कहा है। बाबु श्यामसुंदर दास ने पंचमेल खिचड़ी कहा है और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीरदास को 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है।

कबीरदास के व्यक्तित्व के निर्माण में उनके गुरु रामानंद का निर्विवाद रूप से योगदान रहा है। उनकी साधना, उपासना, भक्ति, चिंतन, समाज-सुधार संबंधी उनका दृष्टिकोण, राम के प्रति उनकी आस्था तथा जाति-पाँति, छुआछूत, भेद-भाव, वर्ग-व्यवस्था आदि के प्रति निर्मित उनकी अनास्था दृष्टि के मूल में कबीर की आँखिन देखी पीड़ित विवेक चेतना और समतामूलक दृष्टि तथा रामानंद के उपदेश का योगदान है। कबीरदास ने समाज की प्रगति विरोधी गतिविधियों के प्रति निर्भीक होकर अपनी असहमति व्यक्त की। धर्म और समाज को प्रीति ले जाने वाली शक्तियों पर जितना प्रभावशाली प्रहार कबीर ने किया, उतना संभवतः अन्य किसी कवि या साधक ने नहीं किया।

भारतीय साहित्य परंपरा में संतकबीर एक ऐसे विरल चरित्र के रूप में विकसित हैं, जो हिंदुओं के लिए वैष्णव भक्त रामानंद के शिष्य थे तथा शंकर के अद्वैतवादी दर्शन को मानने वाले भी थे। वे एक नए मानव धर्म के व्याख्याता थे। साथ ही वे 'पीर', 'भगत' और 'अवतार' भी थे। हिंदू-मुसलमान और कबीर पंथी सभी के लिए वे अपने थे। इस प्रकार कबीरदास का अभ्युदय भक्ति और चिंतन के इतिहास और परंपरा में एक विशिष्ट व्यक्तित्व के रूप में हुआ है। निर्भीकता, वैचारिक विस्तार और सामान्य जनमानस की जरूरतों के प्रति प्रतिबद्धता जितनी संत कबीर मंद थी, उतनी अन्यत्र नहीं मिलती है।

कृतित्व

संत कबीरदास की रचनाओं का कोई खास प्रमाण नहीं है। उन्होंने जिन पदों की रचना की, उनके शिष्यों ने उन्हें लिपिबद्ध किया। कबीरदास के नाम से कई दर्जन पुस्तकों का उल्लेख मिलता है। लेकिन उनमें से कितनी प्रामाणिक हैं और कितनी अप्रमाणिक, यह कहना कठिन है। कबीरदास के कई पद सिख धर्म के आदि ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहब' से संग्रहित है। कई पदों का संग्रह उनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया। कबीर के पदों को संपादित कर, उन्हें प्रकाशित करने का गुरुतर कार्य बाबू श्यामसुंदर दास द्वारा संपादित 'कबीर ग्रंथावली' इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तक मानी जाती है।

कहा जाता है कि कबीरदास के प्रमुख शिष्य धर्मदास ने सबसे पहले उनकी वाणियों का संग्रह 'बीजक' के नाम से तैयार किया है। 'बीजक' का अर्थ है- गुप्त धन बताने वाली सूची। इस संबंध में कबीरदास कहते हैं कि- बीजक बित बलावई, जो बित गुप्ता होय।/ सबद बतावौ जिव को, बुझे विरला कोय॥ बीजक के तीन भाग हैं - साखी, सबद और रमैनी।

साखी - साखी शब्द संस्कृत के साक्षी शब्द का तद्भव रूप है। कबीरदास द्वारा विरचित दोहे इसी में संग्रहित हैं। कबीरदास की साखियाँ अनुभव से अनुप्राणित हैं। कहा जाता है कि- 'साखी आखियाँ ज्ञान की।' निस्संदेह कबीरदास ने अपनी साखियों में जीवन और प्रेम का

व्यवहारिक अनुभव व्यक्त किया है। संकलित साखियों की संख्या 809 के आस-पास मानी जाती है।

सबद - सबद शब्द का तद्भव है। ये गेय पद है, जो अनेक शास्त्रीय रागों पर आधारित है। इन्हें पद भी कहा जाता है। कबीरदास ने अपने पदों में ब्रह्म, जीव, माया, मोक्ष, जगत आदि पर बड़ी गंभीरता और दार्शनिकता से विचार किया है।

रमैनी - कबीर वाङ्गमय में बताया गया है कि रमैनी शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है। वे-

1. जिसमें संसार में जीवों के रमण का विवेचन हुआ है।

2. वेद शास्त्र के विचारों में रमण करने वाली।

3. एक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चाप में सोलह मात्राएँ होती हैं।

स्पष्ट है कि रमैनी में जीव-जगत की दशा-अवस्था पर विचार किया गया है।

नाँ सो आवै ना सो जाई ताके बंध पिता नहीं माई।
चार विचार कुछ नहीं राकै, उनमनि लागि रहौ जें ताक॥

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कबीरदास के साहित्यिक रचनाओं में मानवता, आत्मशुद्धि और आत्म विस्तार का गहन संदेश मिलता है।

बोध प्रश्न

- कबीरदास के जन्म एवं मृत्यु के बारे में दी गई भिन्न-भिन्न मत क्या है?
- कबीरदास के रचनाएँ क्या है एवं उसके अर्थ बताइए?

कबीरदास की काव्यगत विशेषताएँ

कबीरदास अनपढ़ थे। अलंकार, छंद आदि से उनका परिचय न था। उनकी भाषा भी अटपटी और गंवारू थी। अतः कलापक्ष की दृष्टि से कबीर की कविता श्रेष्ठ की नहीं है। उनका भावपक्ष भी पूर्ण रूप से साहित्यिक नहीं है। तथापि उनमें उनके जीवन की महानता है। भावपक्ष की दृष्टि से कबीरदास का काव्य उच्च स्तर का है और वे बड़े से बड़े कवि से टक्कर ले सकते हैं। उनके काव्य में कुछ ऐसी विशेषताएँ है, जो उन्हें बहुत ऊँचा उठा देती है।

निर्गुण ब्रह्म की उपासना

कबीरदास निर्गुणोपासक थे। वे ईश्वर को निर्गुण, निराकार, अजन्म, अविनासी एवं सर्वव्यापी मानते हैं। कभी-कभी वे इस निर्गुण को राम, गोविंद, हरि आदि नामों से भी पुकारते हैं। कबीरदास ब्रह्म के सगुण रूप का विरोध करते हुए उनके निर्गुण रूप पर बल दिया है। वे कहते है कि-

निर्गुण राम जपहु रे भाई।
अविगत की गति लखी न जाई॥

कबीर दासके राम दशरथ सुत राम नहीं है। इस संबंध में वे कहते हैं कि-

दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना॥

कबीरदास के अनुसार वह परम तत्व पुष्प गंध से भी सूक्ष्म है और उसे घट-घट में व्याप्त है।

बहुदेववाद व अवतारवाद का विरोध

भक्तिकालीन निर्गुण संत कवियों ने बहुदेववाद एवं अवतारवाद का घोर विरोध करते हैं। उन्होंने इस भावना को पुर्णतः खंडन किया है।कबीरदास एक ही ईश्वर में विशवास रखते है। एक ही ईश्वर सर्वव्यापक है। सभी धर्मों, मतों आदि का मार्ग अंतत: इसी ओर जाते हैं। अनेक भगवान के नामों के आधार पर संघर्ष व्यर्थ है। एक ही ईश्वर से सबकी उत्पत्ति होती है और फिर सब उसी में लीन हो जाते हैं।

प्राणी ही ते हिम भया हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया अब कुछ कहा न जाई॥

सद्‌गुरु का महत्व

संत कवियों ने अपनी रचनाओं में गुरु को अधिक महत्व दिया है। उनके मतानुसार गुरु ही सर्वश्रेष्ठ है। कबीरदास ने गुरु की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए, गुरु को ईश्वर से भी बड़ा दर्जा दिया है। क्योंकि गुरु ही ब्रह्मा का साक्षात्कार कराते हैं। वही ज्ञान-नेत्र खोलता है। 'गुरुदेव कौ अंग' शीर्षक से संकलित साखियों में कबीरदास ने गुरु की महत्ता प्रतिपादित की है। गुरु की प्रतिष्ठा इन्होंने नाथपंथ से ग्रहण की है। वे कहते हैं कि

सतगुरु की महिमा अनतँ, अनतँ किया उपगार।
लोचन अनत उघाड़िया, अनतँ दिखावणहार॥

गुरु का महत्व स्पष्ट करते हुए कबीरदास जी ने लिखा है कि

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाइ।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताई।

रहस्यवाद

निर्गुण संत कवियों में रहस्यवाद की भावना मुख्य रूप में दिखाई देती है। रहस्य की दृष्टिसे कबीरदास का साहित्य अनुपम है।कबीरदास के काव्य में रहस्यवादी भावना के दर्शन होते हैं। वे ब्रह्म को प्रियतम और साधक को पत्नी के रूप में अभिव्यक्त किया है। अलौकिक के प्रति लौकिक प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति ही विधि रहस्य है। इस सबंध में वे कहते है कि - 'सब कोई कहै तुम्हारी नारी मौकों इहै अन्देहरे।/ एक में हूवै सेज न सोवैं, तब लागे कैसो नेहरे॥' इनका रहस्यवादी काव्य शंकराचार्य के अदैवतवाद से प्रभावित है।

जाति-पाँति का विरोध

संत कबीरदास ने जाति-पाँति का घोर विरोध किया है। संत कबीर ने बुद्ध की समतावादी दृष्टी के पुरस्कर्ता थे। उनके अनुसार न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है, ईश्वर की पूजा तथा आराधना करने का अधिकार प्रत्येक मनुष्य को है।इस सबंध में कबीरदास कहते है कि "जाति-पाति पूछे नहीं कोई,/ हरि को भजे सो हरि का होई।" इस प्रकार से कबीरदास के काव्य में इन सभी विशेषताओं को देख सकते हैं।

बोध प्रश्न

- कबीरदास की कुछ काव्यगत विशेषताएँ बताइए।
- रहस्यवाद से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।

कबीरदास की भक्ति भावना

कबीरदास की कविता का मूल स्वर भक्ति है। वे भक्ति को भवसागर के मुक्ति की सहजता व सद्विचारों से जोड़ा है। यह शारीरिक व मानसिक संस्कार का संयोग हैं।

आडम्बरों का विरोध

कबीरदास के साहित्य से यह पता चलता है कि उन्होंने विभिन्न धर्म और सामाजिक विसंगति, अंधविश्वास पर करारा व्यंग्य किया है। उन्होंने किसी भी धर्म को छोड़ा नहीं है। चाहे वह हिदू हो या मुस्लिम। उन्होंने जाति, धर्म और आर्थिक असमानताओं का विरोध किया है।उन्होंने हिन्दुओं की मूर्ति पूजा, तीर्थ यात्रा, व्रत, अवतारवाद, पोथि-पुराण पठन आदि का घोर विरोध किया है और मुस्लिम धर्मों में व्याप्त रोजा, नमाज, हज यात्रा आदि पर भी प्रहार किया है।इन सबके नाम पर किये जा रहें आडम्बरों का इन्होंने करार प्रहार किया है। वे मूर्तिपूजा का उपहास करते हुए कहते है कि- "पत्थर पूजे हरि मिलै, तो मैं पुजूं पहार।/ घर की चाकी कोई न पूजै जा कि पीसी खाए संसार"॥ वे मुस्लिम धर्म की विसंगतियों पर प्रहार करते हुए कहते हैं कि "काकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई चुनाय।/ तापर मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय॥"
"दिन भर रोजा रहत है राति हनत हैं गाय।/ यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुडाय॥"

माया का विरोध

कबीरदास ने माया को ईश्वर प्राप्ति में बाधक माना है। माया में पड़ा व्यक्ति अपनी ही बात सोचता रहता है। ब्रह्म की प्राप्ति हेतु माया का त्याग अनिवार्य माना है। जैसे- "जब मैं था तब हरि नहीं।/ अब हरि है मैं नाहि॥"

माया का दूसरा नाम अज्ञान है। माया की उत्पत्ति का स्थान मन है। वे माया से बचने का उपाय संसार से विमुख रहना बताते है। कबीर कहते है कि- "औंधा घड़ाजल मैं डूबे सूधा सूभर भरिया।/ जाकौं यह सब धिनकर चालै ना प्रसादि निस्तरिया॥" कबीरदास ने माया से सावधान

रहने को उपदेश दिया। वे कहते है कि - "माया महा ठगनी हम जानी/ तिरगुन फाँस लिए वह डोले, बोले माधुर बानी।"

भजन तथा नाम स्मरण

कबीरदास ने भजन तथा नाम स्मरण को अधिक महत्व दिया है। उनका मानना है कि- भजन, कीर्तन एवं नामस्मरण मन में होना चाहिए। उसमें किसी भी प्रकार का दिखावा नहीं होना चाहिए। हर व्यक्ति को भजन, कीर्तन एवं नामस्मरण का अधिकार है। व्यक्ति को सच्चे हृदय से यह सब करना चाहिए।

मानवतावादी द्रष्टिकोण

संत कबीरदास की सामाजिक चेतना संपूर्ण मानवता की कल्याण-कामना से जुड़ी हुई है। वे मानव को आदर्श नागरिकता का पाठ पढ़ाते है तथा विवेकसम्मत जीवन और चिन्तन प्रदान करती हैं। इन्होंने सांप्रदायिकता, जातिवाद, वर्ग भेद आदि की आलोचना की है। वे कहते है कि- "जाति-पाँति पूछे नहि कोई।/ हरिको भजे सो हरि का होई॥"

भाषा एवं शैली

कबीरदास द्वारा रचित साखी, सबद और रमैनी में कवित्त की भक्ति समाहित है। इनकी भाषा सीदी-सादी है। परन्तु उसमें अभिव्यक्ति की क्षमता आश्चर्यजनक है। वे देशाघटन करने के कारण इनकी भाषा में ब्रज, अवधि, बुन्देलखंड, राजस्थानी आदि भाषाओँ के शब्द मिलते हैं। इसी करण इनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी' या 'पंचमेल खिचड़ी' कहा जाता है। कबीरदास जब रुढ़ियों पर प्रहार करते हैं, तो उनकी भाषा में तीर से भी अधिक चुभन पैदा होती है। जैसे- "मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहब तेरा बहरा है।/ चिऊँटी के पग नेवर बाजै सो भी साहब सुनता हैं॥"

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीरदास को 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है। इनके अनुसार- "जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है। उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है। बन गया हैं तो सीधा-सीधा नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। सीधी भाषा में वे ऐसी गहरी चोट करते है कि- चोट खाने वाला केवल धूल झाड़कर चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।"

अलंकार

कबीरदास के काव्य में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में हुआ है। वे भाषिक तथ्यों को उपमानों में लपेटकर प्रस्तुत करते हैं, जिससे उनके आकर्षण में अपार वृद्धि हो जाती है। कवि ने रूपक, उपमा, अन्योक्ति जैसे अलंकारों का सहज प्रयोग किया है। जैसे- "यह तन काचा कुंभ है, लिये फिरै था साथ।/ टपका लागा फूतिया, कुछ नहीं आया हाथ॥"

कबीरदास अपूर्व प्रतिभासंपन्न कवि थे। इनके काव्य में भाव और विचार, तथ्य और कल्पना, भाषा और अलंकार का आश्चर्यजनक रूप में समन्वय हुआ है। इन्होंने मध्ययुग में वैसा ही महान कार्य किया जैसा आधुनिक युग में 'स्वामी दयानन्द', विवेकानन्द आदि ने किया। डॉ. सरनाम सिंह के अनुसार- "जिस प्रकार नारियल या बादाम को ऊपर से देखकर उसकी भीतरी स्वरूप का विश्लेषण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार विश्लेषण के बाह्य रूप को देखकर, उनकी भर्त्सनामयी कठोर वाणी को पढ़कर उनके कोमल दयालु अंतर का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। उनके व्यक्तित्व की भावनाओं में सरल व गूढ़-दोनों रेखाओं का अनूठा मिलन है।"

बोध प्रश्न

- कबीरदास के भक्ति भावना के स्त्रोत क्या है?
- कबीरदास ने किस भाषा का प्रयोग किए है?
- संत कबीर ने किस शैली में अपना रचना किए है?
- संत कबीर माया का विरोध क्यों करते थे?

5.3.2 रैदास

व्यक्तित्व

संत रैदास 'रामानन्द' की शिष्य परंपरा और कबीरदास के समकालीन कवि थे। निर्गुण परंपरा के प्रमुख संत कबीरदास व अन्य संतों की तरह रैदास के जन्म तिथि के संबंध में कोई मतभेद नहीं हैं। आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद के अनुसार- रविदास का जन्म विक्रमी संवत् 1433 (1376ई.) में माघ शुक्ल पूर्णिमा तिथि रविवार को हुआ था।इन्होने स्वंय अपने जाति का उल्लेख किया है कि- "कहे रैदास खलास चमारा।" संत रैदास पढ़े-लिखे नहीं थे। इन्होंने प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन, भरतपुर, चितौड़ आदि स्थानों का भ्रमण कर निर्गुण ब्रह्म का जनसाधारण की भाषा में प्रचार-प्रसार किया। चितौड़ की रानी और मीराबाई इनकी शिष्या थी। "चौदह सौं तैतीस की माघ सुदी पददास।/ दुखियों के कल्याण हित, प्रगटे श्री रविदास॥"

रैदास की रचनाओं में संतों की सहजता, निस्पृहता, उदारता, विश्वप्रेम, दृढ़ विश्वास और सात्विक जीवन के भाव मिलते हैं। इनके फुटकर पद 'बानी' के नाम से 'संतबानी सीरिज' में संगृहीत मिलते हैं। इनके "आदि गुरु ग्रन्थ साहिब' में लगभग चालीस पद मिलते हैं।इन्होंने संत कबीरदास के समान मूर्तिपूजा, तीर्थ यात्रा आदि बाह्यआडम्बरों का विरोध किया है। रैदास कहते है कि "तीरथ बरत न करौ अंदेशा।/ तुम्हारे चरण कमल भरोसा।।/ जहँ तहँ जाओ तुम्हारी पूजा।/ तुमसा देव और नहीं दूजा।।"

संत रैदास ने जाति-प्रथा का घोर विरोध किया है। अपमान और ओछापन को लेकर उन्होंने लिखा है कि “जाती ओछा पाती ओछा, ओछा जनमु हमारा।/ राम राज की सेवा कीन्हीं, कहि रवि दास चमारा।”

रैदास रचित “वाणी” से स्पष्ट पता चलता है कि उनका जन्म दलित जाति की कुंटबाढला नामक शाखा में हुआ था और उनकी जाति के लोग काशी के आस-पास मरे हुए मवेशियों को ढोने का काम करते थे। “आदि ग्रन्थ” में संकलित इनकी वाणियों से इस मत की पुष्टि होती है। जैसे- “नागर जना मेरी जाति बिखिआत चामर।/ मेरी जाति कुटबांढला ढोर ढोवत, नितहि बनारैसी आस-पास।।”

डॉ. काशीनाथ इस संबंध में कहते है कि ‘भविष्य पुराण’ के अनुसार रविदास जी के पिता का नाममानदास था। (मानदासस्य पुत्री रविदास इति विश्रुत) किन्तु ‘रविदास रामायण’ में उनके पिता का नाम ‘रहु’ बताया है। यह नाम उनके अधिक प्रचलित नाम ‘रघु’ से मिलता जुलता है। उनकी माता का नाम करमादेवी था। बचपन से ही रविदास का मन साधु संतों के प्रवचनों एवं सत्संग में रमने लगा था। इससे चिंतित होकर इनके माता-पिता ने बचपन में ही इनका विवाह ‘लोना’ नामक लड़की से कर दिया। इनके पुत्र नाम था- विजयदास।

रैदास का जीवन अत्यंत संघर्ष में गुजरा है। लेकिन इन सबके बावजूद उन पर आध्यात्मिकता का रंग दिनोंदिन चढता ही जा रहा था। इनके गुरु के संबंध में अनेक विद्वानों में मतभेद हैं। डॉ. काशीनाथ उपाध्याय का कहना है कि- “यह संभव है कि रविदास जी अपने जीवन के प्रारंभिक काल में ‘रामानन्द’ जी के संपर्क में आये हो और उन्हें गुरु मानते रहें हो तथा बाद में उन्होंने कबीरदास जी से दीक्षा ली हो।”

रैदास के शिष्यों में मीराबाई का नाम लिया जाता है। मीराबाई के इन पदों को देखने से भी यह बात पुष्ट होती है कि “रैदास संत मिले मोहि सतगुरु,/ दीन्हीं सुरत सहदानी।।”
प्रियादास कृत ‘भक्ति रसबोधिनी’ में चित्तौड़ की झाली रानी को भी रैदास की शिष्या बताया गया है। जैसे- “बसत चित्तौर मांझ रानी एक झाली नाम।/ नाम बिन काम खाली आनि शिष्य भई है।।”

इन दृष्टांतों से स्पष्ट है कि नीच कही जाने वाली जाति में जन्म लेने के बावजूद भी रविदास ने इतनी आध्यात्मिक उन्नति कर ली थी कि बड़े घराने के लोग उनके शिष्य बनते गये थे। क्षत्रिय राजा पीपा भी उनके शिष्य थे। यह बात भी संत साहित्य में प्रचलित है।

कबीरदास की भांति रविदास को भी किसी विध्यालय में विधिवत शिक्षा नहीं मिली थी। उन्होंने जो कुछ कहा अपने जीवनानुभवों और आंतरिक अनुभवों से ही वर्णित किया है। इसके बावजूद उनकी वाणियों से साफ़ पता चलता है कि- उन्हें हिंदी, उर्दू, फ़ारसी तथा हिन्दुस्तान की

अनेक स्थानीय भाषाओँ का ज्ञान था। दूसरी ओर रैदास की प्रसिद्धि पूरे भारतवर्ष में फैली हुई थी। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र यहाँ तक की दक्षिण भारत तक उनके अनुयायी मिलते हैं तथा देशाटन से हुए अनुभवों के कारण ही उनकी रचनाओं में देश की विभिन्न बोली-भाषाओँ के शब्द मिलते हैं।

संत रैदास जी की महानता और भक्ति भावना की शक्ति के प्रमाण इनके जीवन के अनेक घटनाओं में मिलती है। जिसके कारण उस समय का सबसे शक्तिशाली राजा मुगल साम्राज्य के बादशाह बाबर भी संत रैदास जी से मिलता है, तो संत रविदास जी बाबर को दंडित कर देते थे, जिसके कारण बाबर का हृदय परिवर्तन हो जाता है और फिर सामाजिक कार्यों में लग जाता था।

संत रैदास जी बहुत परोपकारी तथा दयालु व्यक्तित्व के मालिक थे और दूसरों की सहायता करना उनका स्वभाव बन गया था। साधु-संतों की सहायता करने में उनकों विशेष आनंद मिलता था। कहा जाता है कि- मूल्य लिये बिना जूते भेंट कर दिया करते थे। रैदास की मृत्युके संबंध में एक अन्य दोहा प्रचलित है कि "पन्द्रह सौ चउरासी, भई चित्तौर मंह भीर।/ जर जर देह कंचन भई, रवि रवि मिल्यौ शरीर।।"

उनकी मृत्यु की तिथि संवत् 1584 पर्याप्त विश्वसनीय प्रतीत होती है। इस प्रकार उनकी आयु 151 वर्ष बैठती है, जो संभव नहीं है। अंत: उनका जन्म संवत् 1456 के आस-पास मान लिया जाए, तो लगभग 128 वर्ष की आयु पाने में विशेष आपत्ति नहीं रहती है।

रचनाएँ

रैदास में संतों की सहजता, निस्पृहता, उदारता, विश्वप्रेम, दृढ़ विश्वास और सात्विक जीवन के भाव इनकी रचनाओं में मिलते हैं। अन्य संत कवियों की तरह रैदास मौखिक परंपरा के कवि है, जो सत्संग के अवसर पर अपनी कविताओं को प्रस्तुत करते थे। दादू पंथी पोथी 'पंचबानी' से लेकर 'गुरुग्रंथ' व रज्जब की 'स्वर्गी' तक में उनके पद व साखियाँ मिलती हैं। रज्जब की 'स्वार्गी' में 9 और गोपालदास की 'स्वर्गी' में 67 रचनाएँ अंगों व रगों में वर्गीकृत है। दादू पंथ में रैदास को कबीरदास के निकट महत्व मिला। (शुकदेव सिंह- रैदासबानी) जयपुर सिटी पैलेस से प्राप्त 'सूर पद संग्रह' में रविदास के 40 पद हैं। गुरु अर्जुन देव द्वारा संपादित 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में रविदास के 40 पद हैं। इनकी रचनाएँ संतमन की विभिन्न संग्रहों में संकलित है। इनके फुटकर पद 'बानी' के नाम से 'संत-बानी सीरिज' में संग्रहित मिलते हैं। आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद ने 'रविदास दर्शन' नाम की पुस्तक में 190 साखियों को प्रस्तुत किया है।

'संत सुरिन्दर दास' के संपादन में 'जगतगुरु रविदास अमृतवाणी' का संपादन हुआ है, जो रविदासिया धर्म का 'पोथी ग्रन्थ' है, जहाँ गुरु भाव से इसकी पूजा होती है और इसमें कुल 140 पद और 37 वर्ग में साखियाँ दर्ज है।

'रैदास बानी' बनारस के राज-घाट पर बने रैदास मन्दिर की दीवारों पर उत्कीर्ण है, जो अमृतवाणी, सीरगोवर्धन के 'रैदास जन्मस्थान मन्दिर का आधार है।

बोध प्रश्न

- रैदास के जीवन क्यों संघर्ष भरा रहा है?
- रैदास के रचनाओं का नाम क्या है?

संत रैदास की काव्यगत विशेषताएँ

रैदास जी की रचनाओं में सत्य, अहिंसा, करुणा, विश्व,बंधुत्व- विचार धारा की छाप स्पष्ट दिखाई देते हैं। इनके काव्य की विचारधारा और विशेषताएँ निम्न प्रकार है।

भक्ति भावना

संत रविदास निर्गुण-निराकार की भक्ति का सरल और सहज मार्ग प्रशस्त किया है, जिसमें न हठयोग साधना थी, न ही धार्मिक क्रियाकर्म, पूजापाठ या व्रत-उपवास का विधान। वस्तुतः उनका यह मार्ग शुद्ध भक्ति का मार्ग था, जिसमें सहज-सरल रूप से परमात्मा का स्मरण किया जाता है और पूर्ण समर्पण के साथ उनकी अराधना की जाती है।

गुरु की महिमा

कबीरदास की भांति रविदास भी गुरु को गोविन्द के रूप में लेते है। उनकी दृष्टि में गुरु मनुष्य रूप में परमात्मा ही है जो सांसारिक माया जगत को दूर कर शिष्य में ज्ञान का दीपक प्रज्वलित करता है- "गुरु ग्यान दीपक दिया,बाती देई जलाय।/ रैदास हरि भगति करै, जनम मरन बिलाखय।।"

नाम स्मरण

निर्गुण संत मत में ईश्वर के नाम-स्मरण को भक्ति का पर्याय माना गया है। गुरु द्वारा ईश्वर का नाम एक ऐसी चिंगारी है, जो जन्म-जन्म के पापों की ढेरी को जलाकर नष्ट कर देता है। इसलिए रैदास सदैव जिह्वा से 'ओंकार' जप की बात करते हुए कहते है कि "जिव्हा सो ओंकार जप, हत्थन सों कर कार।/ राम मिलहि घर आइ कर, कहि रैदास विचार।।"

सत्संग का महत्व

संगति का प्रभाव मनुष्य जीवन में सबसे अधिक पड़ता है। अंत: संतों ने भक्ति के लिए सत्संग के महत्व की अत्यधिक चर्चा की है, जो जीव आध्यात्मिक उन्नति करना चाहता है। उसे परमात्मा के प्रेम और सत्संग की शरण लेना पड़ेगा। रैदास ने अपने काव्य में दुष्टों की संगति से

दूर रहने और सत्संग करने पर जोर देते हुए कहते है कि "जो जन दुष्ट कुमारगी, बइठहि नहिं तिंह पास।/ जो जन संत सुमारगी, तिन पायें लागो रविदास"।।

निष्काम कर्म

निर्गुण संतों ने निष्काम कर्म को अपना कर्तव्य समझकर कर्तव्यभाव से करते रहने की सिख दी है। रैदास ने भी क्रियात्मक कर्मण्य जीवन बिताते हुए गृहस्थ आश्रम को भोगा, लेकिन कभी भी कर्म से विमुख होकर पलायन नहीं किया रैदास की इन पंक्तियों में उनकी कर्म संबंधी अवधारणा की पृष्टि होती है। जैसे- "सौं बरस लौं जगत मनहि, जीवत रहि करू काम।/ रविदास करम ही धरम है, करम करहु निष्काम"।।

बाह्याडंबरों की निर्थरकता

रैदास ने स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि जो लोग अपने अंतर्मन में प्रभु से प्रेम नहीं रखते और बाह्यमुखी साधनाओं में अपना समय व्यर्थ गवाते हैं, वे निशिचत रूप से यमलोक जाएगें। इसलिए उन्होंने कबीरदास की तरह मन्दिर-मस्जिद में शीश झुकाने की अपेक्षा घट-घट व्यापी परमेश्वर को सिजदा करने पर जोर देते हुए कहते हैं कि "देहरा अरु मसीत मनहि, रविदास न सीस नवांय।/ जिह लौ सीस निवावना, सो ठाकुर सभथाय।।"

रैदास की भाषा

रैदास की वाणी का आधार उनकी वैयात्तिक अनुभूति है कि र तो हम जो तुम गिरिव" मोरा।/ जो तुम चन्द तो हम भए है चकोरा।।"

प्रतीकों का महत्व

आत्मा-परमात्मा के मध्य संबंध भावना को प्रकट करने के लिए प्रतीकों को अपनाया गया है। जैसे- मोर, चकोर, पानी, धागा आदि प्रतीकों का महत्व है।

लोक जीवन की भाषा

रैदास की भाषा लोकजीवन की भाषा है। इसमें अवधि, ब्रज की हिंदी रूपों का प्रभाव है। जैसे- "लोह की नव भाषा पषानन बोझी"।।

कविता की आंतरिक अभिव्यक्ति

उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि किसी जाति में जन्म लेने से व्यक्ति ऊँचा नहीं होता है। उसके गरिमा की कसौटी उसके कर्म ही है। "अंतरगति रांचे नहीं, बाहर करे उजास"।।

बोध प्रश्न

- रैदास के काव्यगत विशेषताएँ क्या है?
- रैदास के भक्ति भावना किस प्रकार के है?
- रैदास प्रमुखतः किस भाषा का प्रयोग अपने रचनाओं में करते थे?
- रैदास के दृष्टी में गुरु का अर्थ क्या है?

5.3.4 मलिक मोहम्मद जायसी

व्यक्तित्व

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल के निर्गुण प्रेमाश्रयी धारा के प्रतिनिधि कवि मलिक मोहम्मद जायसी है। वे अत्यंत उच्च कोटि के सरल और उदार सूफ़ी महात्मा थे। हिंदी साहित्य में कबीरदास, तुलसीदास और सूरदास के समान ही उनका पर्याप्त महत्व है। वे 'प्रेम की पीर' माने जाते हैं। जायसी के जन्म के संबंध में मतभेद है। 'मलिक मोहम्मद जायसी' का जन्म 900 हिजरी अर्थात् सन् 1494 ई. के लगभग माना गया है। जायसी उत्तर प्रदेश के 'जायस' नामक स्थान के रहने वाले है। इसलिए वे जायसी के नाम से प्रसिद्ध हुए। 'मलिक' उनकी पारिवारिक उपाधि थी। 'मोहम्मद' उनका नाम था। इस तरह जायसी का पूरा नाम 'मलिक मोहम्मद जायसी' से प्रसिद्ध हुआ।

जायसी जायस के रहने वाले थे या बाहर से आकर जायस में बस गये थे। यह स्पष्ट नहीं है। जायसी स्वयं कहते हैं कि "जायस नगर धरम अस्थान्।/ तहाँ आय कवि कीन्ह बसान्।।" इस कथन से यह आभास होता है कि जायसी जायस के मूलवासी नहीं थे और वे कहीं बाहर से आकार बसे हुए थे।

जायसी प्रख्यात सूफ़ी संत निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परंपरा से थे और अपने समय में अत्यंत सम्मानित संत और फ़कीर माने जाते थे। जायसी देखने में कुरूप थे। उनकी एक आँख ज्योतिहीन थी और एक कान से सुनाई भी नहीं देता था। लेकिन उनमें व्यवहार की निर्मलता और हृदयगत उदारता की कोई कमी नहीं थी। जायसी गाजीपुर और भोजपुर के राजा जगद्देव के आश्रय में थे। बाद में वे अमेठी के राजा के आश्रय में भी रहें। जायसी ने लम्बी यात्राएँ की थी तथा हिन्दू और मुसलमान संतों और फकीरों की सत्संग भी की।

जायसी के पूर्वज सम्भवतः अरब से थे। सैयद कल्ब मुस्तफा के ग्रन्थ के अनुसार इनके पिता का नाम मुमरेज था। इनका ननिहाल मानिकपुर में था। 'शेख अह्लादाद' इनके नाना थे।

जायसी का व्यक्तित्व शारीरिक रूप में उतना महान व सुंदर नहीं था, जितना की चारित्रिक, आंतरिक और कवि में। जो भी हो जायसी की कुरूपता जगत प्रसिद्ध है। वे एक बार शेरशाह के दरबार में गये थे। शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देखकर हँस पडे। इसपर जायसी ने अत्यंत ही शांत भाव से बादशाह से कहा कि 'मोहि का ह्सोसि कि कोहरहि'।अर्थात तू मुझ पर हँस रहा है या उस कुम्हार (गढ़ने वाले ईश्वर) पर? कहा जाता है कि जायसी के इन गंभीर शब्दों को सुनकर बादशाह बहुत लज्जित हुआ उसने क्षमा मांगी।

जायसी मुस्लिम परिवार में पैदा हुए थे। इसलिए कम से कम 'इस्लाम धर्म' की मुख्य बातों को जानना बिल्कुल ही स्वाभाविक था। उनका इस्लाम संबंधी ज्ञान भी गम्भीर था।

उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने ग्रन्थ में हिन्दू धर्म की रीतियों तथा कथाओं आदि का भी प्रयोग किया है, जिससे पता चलता है कि उन्हें हिन्दू धर्म की भी जानकारी थी।

जायसी की रचनाओं में हठयोग, रसायन था वेदांत आदि अनेक बातों का सन्निवेश मिलता है। हठयोग में मानी हुई इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों की चर्चा उन्होंने नहीं की है, बल्कि सुषुम्ना-नाड़ी में नाभिचक्र (कुंडलिनी), हत्कम्ल और दशम द्वार (ब्रहारंध्) का बार-बार उल्लेख किया है। इसी प्रकार 'पद्मावत' में भी रसायनियों की भी कई बातें आई है। गोरख पंथियों की तो जायसी ने अनेक बातें रखी है। सिंहल दीप में पद्मिनी स्त्रियों का होना और योगियों का सिद्ध होने के लिए वहां जाना उन्हीं की कथाओं के अनुसार है। इन सब बातों से पता चलता है कि- जायसी साधारण मुसलमान फकीरों की भांति नहीं थे। वे सच्चे- जिज्ञासु थे और हर एक मत के साधु-संतों तथा महात्माओं से मिलते-जुलते रहते थे और उनकी बातों से सार-तत्व ग्रहण करते रहते थे।

जायसी एक भावुक हृदय, संवेदनशील और भगवतभक्त व्यक्ति थे। वे अपने समय के पहुँचे हुए, एक सिद्ध और फ़कीर माने जाते थे। सभी धर्मों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखना उनकी विशेषता थी। वे ईश्वर तक पहुंचने के अनेक मार्गों को उदारतापूर्वक स्वीकार करते थे। "विधिना के मार्ग है तेते।/ सरग नखत, तन रावां जेते।।" लेकिन इन सब के होने के बावजूद भी मोहम्मद साहब में उनकी गहरी आस्था थी। वे कहते है कि "तिन मंह पंथ कहाँ अलगाई। जेहि दुनो जग छाज बड़ाई।।/ ये बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कैलाश बसेरा।।" वे महान तथा अत्यंत ही गंभीर और शांत स्वभाव वाले व्यक्ति थे। सन् 1542ई. (हिजरी 949) में जायसी का देहावसान हो गया था।

मलिक मुहम्मद जायसी 'पद्मावत' ग्रन्थ के प्रणेता हैं। उनका भावुक सुकोमल और प्रेम की पीर से भरा हृदय प्रेम पथ के पथिकों का सदैव मार्ग-दर्शन करेगा और उने लौकिक और आध्यत्मिक जीवन में नई ज्योति भरता रहेगा। हिन्दू-मुस्लिम के महान समन्वयकारी, उच्च जाति एवं उच्च कोटि के कवि और आदर्श मानव के रूप में जायसी भारतीय साहित्य तथा समाज में सदा स्मरणीय रहेंगे।

कृतित्व

मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित रचनाओं को संपादित कर प्रकाशित का महत्त्वपूर्ण कार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने किया। शुक्लजी के समय तक जायसी की तीन रचनाओं का पता चल चुका था। शुक्ल जी ने 'पद्मावत', 'आखिरी कलाम' और 'अखरावट' का संपादन किया। उसके बाद श्री माता प्रसाद गुप्त ने जायसी की एक और रचना "महरी बाईसी" नाम से प्रकाशित कराई। इसके अतिरिक्त भी जायसी के नाम से निम्नलिखित ग्रंथो का उल्लेख मिलता है। वे

"सखरावत, चंपावत, चित्रावत, कहरयानामा (सुर्वानामा), कन्हावत, मोराईनामा, मुकहरनामा, होलीनामा, इतरावत, मटकावत, नैनावत, पोस्तीनामा, सोरठा, मेखवत्नामा, धनावतें, परमार्य जपजी, स्फुटछंद आदि। यह विश्वासपूर्वक कहना कठिन ही है कि ये सभी पुस्तकें जायसी द्वारा रचित हैं। इन पुस्तकों का कहीं भी प्रामाणिक नहीं है। जायसी की सभी पुस्तकें अभी प्रकाशन में नहीं है। 'पद्मावत', 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' ही ऐसी पुस्तकें हैं, जो निर्विवाद रूप से जायसी द्वारा रचित मानी जाती है।

पद्मावत

मलिक मुहम्मद जायसी जिस ग्रन्थ के कारण लोक प्रसिद्ध हुए और जिस कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने उन्हें कबीर, सूर, तुलसी आदि के साथ परिगणित किया वह रचना 'पद्मावत' है। इसी ग्रन्थ में शाहेवक्त के रूप में जायसी ने शेरशाह का उल्लेख किया है, जबकि शेरशाह दिल्ली पर शासन 947 हिजरी अर्थात् 1540 के आस-पास किया था। शुक्लजी का अनुमान है कि 'पद्मावत' की रचना का आरंभ तो 1520ई. के लगभग हुआ होगा, लेकिन यह पूरा शेरशाह के समय में हुआ होगा। बहरहाल यह तय है कि 1540ई. के पास यह रचना पूरी हो चुकी थी।

'पद्मावत' प्रबंध काव्य है, जिसमें चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिहलदीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेम कथा कही गयी है। इस प्रबंध काव्य में दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के साथ रत्नसेन के संघर्ष का उल्लेख है, जो ऐतिहासिक तथ्य है। इसमें कल्पना का भी सहारा लिया गया है। यह ग्रंथ मसनवी शैली में लिखी गयी है। इसमें आत्मा और परमात्मा का संबंध को लौकिक के धरातल पर अलौकिक का चित्रण किया गया है।

आखिरी कलाम

इस पुस्तक की रचना 936 हिजरी अर्थात् 1530ई. में हुई थी। इस पुस्तक में जायसी ने उस समय के बादशाह बाबर की प्रशंसा की है। बाबर ने सन् 1526 से 1530 ई. तक दिल्ली पर शासन किया था। इसलिए इस पुस्तक का रचना काल 1530 ई. मानना उचित है।

इस पुस्तक में जायसी ने सबसे पहले ईश्वर की स्तुति की है। इसके बाद अपने जन्म के समय आये भयंकर भूकंप का उल्लेख किया है। इसके आगे गुरु की वन्दना की गयी है।इसमें जायस नगर का वर्णन है। बाबर की प्रशंसा आदि विषयों का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ का मुख्य विषय आखिरत का वर्णन है। इसे हम कयामत या प्रलय का वर्णन कह सकते हैं। यह इस्लामी परंपरा के अनुसार है। यद्यपि इस पर हिन्दू विचारधारा का प्रभाव भी दिखाई देता है।

अखरावट

'अखरावट' की रचना कब हुई थी यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। अनुमान किया जात है कि इसकी रचना 'पद्मावत' के बाद हुई होगी। 'पद्मावत' की रचना 1520-1540 के बीच मानी जाती है। शुक्ल जी के अनुसार 'अखरावट' में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर सिद्धांत संबंधी तत्वों में भरी चौपाइयां कही गयी है इस छोटी-सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किये गये है।

जायसी के उपर्युक्त तीनों ग्रन्थ अवधि भाषा में लिखे गये हैं तथा इनमें दोहा, चौपाई छंदों का प्रयोग किया गया है। 'आखिरी कलाम' और 'अखरावट' महत्त्वपूर्ण रचनाएँ होते हुए भी मूलतः धार्मिक ग्रन्थ है।

बोध प्रश्न

- जायसी के जीवनी के बारे दिए गए मत क्या है?
- जायसी के रचनाओं का नाम क्या है?
- जायसी के रचनाओं को अपने शब्दों में व्याख्या कीजिए?
- पद्मावत किस प्रकार का काव्य है?

जायसी की काव्यगत विशेषताएँ

विभिन्न धार्मिक मत-मतान्तरों, टकराहटों, सांप्रदायिक विद्वेष से परिपूर्ण समय और समाज के बीच मलिक मुहम्मद जायसी का काव्य मानव-मानव के बीच एकता की कहानी बयान करता है।

जायसी की भक्ति

मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत' निर्गुण भक्ति की प्रेमाख्यान परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण है। डॉ. रघुवंश के अनुसार- "जायसी की काव्याभिव्यक्ति में 'पद्मावत' पूरे प्रबंध का सांगोपांग रूपक-विधान नहीं है। उनकी मूल दृष्टि मानवीय जीवन के विभिन्न स्त्रोतों तथा पक्षों पर रही है। इनमें ही आध्यात्मिक संकेत तथा व्यंजनाएँ निहित होती रही है।" इस कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं। पहली अगर वह सांगोपांग रूपक नहीं है, तो भी जीवन का रूपक तत्व है। दूसरे इसमें जो आध्यात्मिक संकेत और व्यंजनाएँ है, तो वे जीवन के समानांतर और उनमें ही निहित है। ये आध्यात्मिक संकेत और व्यंजनाएँ ही भक्ति का उपजीव्य है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि जायसी की भक्ति को कथा की समानांतरता में ही समझा जा सकता है। जायसी की भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह उस समय के जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति कही है।

इतिहास और कल्पना का अद्भुत मिश्रण

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने काव्य में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय किया है। 'पद्मावत' महाकाव्य इसका प्रमाण है। इस काव्य का पूवार्ध यदि कल्पित है, तो उत्तरार्ध ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है। इसमें रत्नसेन, अलाउद्दीन, नागमती, पद्मावती आदि ऐतिहासिक पात्र हैं तथा अन्य काल्पनिक है।घटनाओं के वर्णन में कवि ने अपनी कल्पना शक्ति का अद्भुत परिचय दिया है। अलाउद्दीन के चितौड़ पर आक्रमण की ऐतिहासिक घटना का सुंदर वर्णन हुआ है। पद्मावत का सिंहलदीप वर्णन कवि की कल्पना शक्ति का अद्भुत उदाहरण है। जैसे- "अब संसार परथ मैं आए सातौं दीप/ एक दीप नहिं उत्तिम सिंहलदीप समीप"।।

लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना

'पद्मावत' केवल जायसी का ही नहीं, बल्कि हिंदी साहित्य का सफल एवं लोकप्रिय महाकाव्य है। इसमें कवि ने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। यह महाकाव्य सूफी मत के सिद्धांतों के अनुसार आध्यात्मिक प्रेम को अभिव्यक्त करता है। 'पद्मावत' की नायिका ईश्वर का प्रतीक है, तो रत्नसेन साधक का है। जैसे- "रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।/ रतन पदारथ मानिक मोती।।/ जँह- जँह बिहसि सुभावहि हँसी।/ तहँ-तहँ छिटकि जोति परगसी।।"

'प्रेम की पीर' के कवि

जायसी 'प्रेम की पीर' के कवि कहे जाते हैं। विरहजनित प्रेम में एक विलक्ष्ण तीव्रता और निराली तड़प होती है। जायसी ने अपने प्रेम वर्णन में हृदय की कोमल वेदना, विरह की व्यापकता, तीव्रता, मार्मिकता और तन्मयता को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्ति दी है। 'पद्मावत' का 'नागमती विरह खण्ड' विरह वर्णन की दृष्टि से हिंदी साहित्य का अप्रतिम काव्य खण्ड है। नागमती का विरह वर्णन में बारहमास का विशेष स्थान है। प्रत्येक मास की प्राकृतिक दशा के साथ नागमती के हृदय के शोक और हर्ष की व्यंजना की गयी है। वह अपने आप में अनुपम है। नागमती के प्रेम की पीड़ा पाठक के मन को सहानुभूति और वेदना से भर देती है। "फिरि फिरि रोव, कोई नहीं डोला।/ आधी रात विहंगम बोला।।/ तू फिरि- फिरि दाहै सब पांखी,/ केहि दुःख रैनि न लावसि आंखी।।"

शृंगार वर्णन

जायसी के काव्य में प्रधानता रसराज शृंगार की प्रधानता है। 'पद्मावत' में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का अद्भुत वर्णन किया गया है।संयोग रस का वर्णन रत्नसेन, नागमती तथा पद्मावती के आश्रय से किया गया है, जब पद्मावती को पाने के लिए रत्नसेन ने

घर छोड़ने का निर्णय किया तब नागमती ने उससे कहती है कि “तू जोगी होईगा बौरागी,/ हो जरि छार भयऊ तोहि लागी।।”

राजा रत्नसेन नागमति को मनाते हुए कहते हैं कि “कंठ लाई के नारि मनाई।/ जरि जो बेलि सिचि पहुताई।।”

रहस्यानुभूति

जायसी को सफल रहस्यवादी कवि कहा जा सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार भावात्मक रहस्यवाद केवल जायसी में ही है। वे प्रेमी को परमात्मा और प्रेमिका को आत्मा का प्रतीक मानते है। ‘पद्मावती’ की नायिका पद्मावती ईश्वर का प्रतीक है और रत्नसेन साधक का प्रतीक है। सिंहलदीप में कवि में हठयोग की प्रवृत्ति को अपनाया है। उन्होंने दाम्पत्य भाव के माध्यम से आत्मा और परमात्मा के संबंधों को प्रकट किया है। पद्मावती के रूप-सौन्दर्य में सर्वत्र ईश्वर की झलक दिखाई पड़ती है। उन्होंने संपूर्ण पात्रों का प्रतीक योजना के माध्यम से वर्णन किया है जो रहस्यवाद का अनुपम उदाहरण है। जैसे- “तन चितउर, मन राजा कीन्हा।/ हिय सिंहल, बुधि पद्मिनी चीन्हा।।/ गुरु सुआ जेई पंथ देखावा/ बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।”

भाषा एवं शैली

जायसी की भाषा ठेठ अवधि भाषा है। इसमें देशज व अन्य क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों का समावेश सहज ही हुआ है। जायसी की काव्य की भाषा सरलता व स्पष्टता, स्वाभाविकता तथा प्रसाद गुण आदि विशेषताओं से है। इनके प्रिय छंद दोहा-चौपाई हैं। मसनवी शैली तथा प्राकृत प्रेमाख्यानों की शैलियों का सुंदर समन्वय किया है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति तथा समासोक्ति जायसी के प्रिय अलंकार हैं। “रूप सुरूप पद्मिनी नारी/ पघ गंध तिन्ह अंग बसाही/ भंवर लागि तिन्ह संग फिरारी।।”

उपर्युक्त काव्यगत विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि जायसी एक सफल एवं श्रेष्ठ कवि हैं तथा उनका साहित्य सार्वकालिक है।

बोध प्रश्न

- जायसी के काव्य के विशेषताएँ क्या है?
- जायसी किस प्रकार के भाषा एवं शैली का व्यवहार करते थे?
- जायसी को ‘प्रेम की पीर’ क्यों कहा जाता था?
- क्या जायसी विरह के भी कवि है?

5.4 पाठ सार

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आपको यह स्पष्ट हो चूका होगा कि भक्तिकाल में कबीर दास, रैदास एवं जायसी का स्थान अतुलनीय है। कबीर दस एवं रैदास संत काव्यधारा के प्रमुख कवि है एवं जायसी सूफी काव्यधारा के प्रमुख कवि है। कबीरदास ने अपने रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरुतिओं को मिटाने का हर प्रयास किए है। वे जाती-पांति में विश्वास नहीं रखते थे। हिन्दू-मुस्लिम सभी एक मानते थे। मूर्ति पूजा, माला फेरना, नमाज, रोजा, उपवास आदि को भी नहीं मानते थे। सरल एवं सादा जीवन व्यतीत करते थे। जन्म से ही वे समाज सुधार एवं विद्रोही भावना को लेकर चलते थे। वे अनपढ़ थे। परन्तु उनके रचनाओं में कई भाषाओँ का वर्णान देखने को मिलता है। इसलिए उनके भाषा को पंचमेल खिचड़ी कहा जाता था। उन्होंने रामानुजाचार्य से शिषत्व ग्रहण किए थे। वे राम को अपना मार्गदर्शक मानते थे। वे अपने दोहे में लिखे है कि उनके राम दशरथ सूत राम नहीं है। उनके राम निर्गुण ब्रह्म राम है। संत काव्यधारा के दुसरे कवि संत रैदास कबीरदास के समकालीन थे। वे जाति में चमार थे। चमार जाति के होने के कारण उन्हें कई प्रकार के संघर्षों का सामना भी किए थे। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे एवं जन भाषा में इसका प्रचार एवं प्रसार करते थे। उन्होंने भी कबीरदास के भांति मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा एवं बाह्यआडम्बरों का घोर विरोध करते थे। हम यह कह सटे हैं कि- रैदास की विचारधारा मानवीय गुणों से मंडित होते रहे हैं। उनकी विनयता, सौम्यता एवं शालीनता ने उन्हें जन-जन का कंठहार बना दिया है। यही उनके जीवन और व्यक्तित्व का पद चिन्ह है। उनकी वाणी का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा है कि- समाज के सभी वर्गों के लोग उनके प्रति श्रद्धालु बन गए हैं। उनकी वाणी में भक्ति की सच्ची भावना, समाज के व्यापक हित की कामना तथा मानव प्रेम से ओत-प्रोत है। इसलिए उसका प्रभाव श्रोताओं के मन पर पड़ता है। संत काव्य के बाद सूफी काव्य में आते है तो, प्रेमाश्रय धारा के प्रमुख कवी जायसी को माना जाता है। जिन्हें 'प्रेम के पीर' भी कहा जाता है। कहा जाता है कि वे जन्म से कुरूप थे। परन्तु हृदय उनका निर्मल था। वे मुस्लिम थे एवं उन्हें इस्लाम धर्म का गहरा ज्ञान था। उनके रचनाओं में हठयोग का चित्रण भी मिलता है। उनके प्रमुख रचना पद्मावत उन्हें 'प्रेम के पीर' का नामकरण प्रदान किया था। उनकी रचनाओं की भाषा अवधि है। उन्होंने प्रेम के साथ विरह एवं शृंगार का भी चित्रण किए है।

5.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. कबीर और रैदास निर्गुण काव्य की ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवि हैं, जबकि जायसी प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि हैं।
2. कबीर, रैदास और जायसी तीनों ही के काव्य में गुरु का विशेष स्थान है।

3. कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व में विद्रोह और समर्पण का अद्भुत सामंजस्य है – रूढ़िवाद के प्रति विद्रोह और परमात्मा के प्रति संपूर्ण समर्पण।

4. रैदास के काव्य में विनय उर सौम्यता की प्रधानता है।

5. जायसी ने अद्वैतवाद और सूफी साधना के समन्वय द्वारा निर्गुण ब्रह्म की प्रेमपूर्ण आराधना को महाकाव्य का विस्तृत फलक प्रधान किया।

5.6 शब्द संपदा

1. अलौकिक = अद्भुत, अपूर्व
2. आध्यामिक = परमात्मा और आत्मा से संबंध रखनेवाला
3. कुरीतियाँ = कुप्रथा, निंदनीय प्रथा
4. निर्विवाद = विवादरहित
5. प्रगतिशील = उन्नतिशील, आगे बढ़नेवाला
6. यथार्थवादी = सत्य कहने वाला
7. रसायन = पदार्थ का तत्वज्ञान
8. रूढ़ि = परम्परा, प्रथा
9. लौकिक = सांसारिक
10. संसर्ग = सयोंग
11. हठयोग = योग के लिए कठिन तपस्या

5.7 परीक्षार्थी प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. कबीरदास के भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।
2. जायसी के काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. रैदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को स्पष्ट कीजिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न (आ)

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. जायसी के कृतित्व को स्पष्ट कीजिए।
2. हिंदी साहित्य में रैदास के स्थान को स्पष्ट कीजिए।
3. सूफी काव्यधारा के महत्व को समझाइए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. 'आखिरी कलाम' के कवि कौन हैं? ( )

(अ) सूरदास (आ) जायसी (इ) सुर (ई) तुलसी

2. पद्मावत काव्य किस भाषा में लिखा गया है? ( )

(अ) ब्रज (आ) अवधी (इ) खड़ीबोली (ई) सधुकड्डी

3. 'हठयोग' का वर्णन किस कवि ने अपने रचनाओं में किए हैं? ( )

(अ) कबीर (आ) रैदास (इ) जायसी (ई) सुर

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. जायसी के शिष्य थे ....।
2. पद्मावत के प्रकाशक बर्ष ....था।
3. क़यामत का चित्रण ....रचना में किया गया है।
4 .कबीरदास के भाषा को कहा जाता है..............।
5. रैदास के पिताजी के नामथा............. ।

III. सुमेल कीजिए -

1. बीजक	(अ) शेख मुहिनौलिया
2. जायसी	(आ) धर्म दास
3. नागमती वियोग खंड	(इ) संत-बानी- सीरिज
4. रैदास	(ई) विरह चित्रण
5. पद्मावत	(उ) जायसी

5.8 पठनीय पुस्तकें

1. जायसी ग्रंथावली : (सं) रामचंद्र शुक्ल
2. संत रैदास : (सं) योगेंद्र सिंह
3. कबीर : (सं) हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. जायसी : (सं) विजयदेव नारायण साही
5. हिंदी साहित्य का इतिहास : बच्चन सिंह
6. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल
7. कबीर ग्रंथावली : श्यामसुंदर दास
8. कबीर ग्रंथावली : माताप्रसाद गुप्त

इकाई 6 : कबीर-बानी

रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 मूल पाठ : कबीर-बानी
6.3.1 कबीरदास के पद
6.3.2 कबीरदास के दोहे
6.4 पाठ सार
6.5 पाठ की उपलब्धियाँ
6.6 शब्द संपदा
6.7 परीक्षार्थ प्रश्न
6.8 पठनीय पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का मध्यकाल की रचनाएँ भक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। इस समय केवल भक्तिपरक की रचनाएँ ही नहीं, अपितु समाज में फैली कुरीति एवं अंधविश्वास के हनन हेतु भी रचनाएँ लिखी गई हैं, जिसके लिए कबीरदास का नाम प्रसिद्ध रहा है। भक्तिकाल में कबीरदास एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने हिंदू एवं मुस्लिम दोनों संप्रदायों की कुरीतियों का खुलकर विरोध किया है। उन्होंने अपने पद में सामाजिक संस्कारों का भी चित्रण किया है। उनके पद एवं दोहों से भक्ति एवं समाज की अनेक प्रकार की समस्याओं के बारे में भी जानकारी मिलती है। अतः कबीर के पद के प्रासंगिकता को समझने के लिए उनके पदों के अर्थ को समझना जरूरी है।

6.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- कबीरदास के पदों के अर्थ को समझ सकेंगे।
- कबीरदास के दोहों को समझ सकेंगे।
- कबीरदास के दोहे में सतगुरु के महत्व को समझ सकेंगे।
- कबीरदास के अपने परमात्मा के प्रति अपार प्रेम को समझ सकेंगे।
- प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक सच्चे गुरु की भूमिका को समझ सकेंगे।

6.3 मूल पाठ : कबीर-बानी

6.3.1 कबीरदास के पद

दुलहनी गावहु मंगलचार,
हमघरि आए हो राजा राम भरतार ||टेक||
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत्त बराती।

राम देव मोरैं पाँहुनैं आये मैं जोबन मैं माती।
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेड उचार।
रामदेव सँगी भाँवरी लैहूँ, घनी घनी भाग हमार।
सुर तेतीसुँ कौतिग आये, मुनियर सहस अठ्यासी।
कहै कबीर हँम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी।

भावार्थ : दुलहनी = सौभाग्यवती स्त्रियाँ, विवाहिता, मंगलचार = मंगल गीत, भरतार = पति, रत = प्रेम, उचार = उच्चारण, मुनियर= मुनिवर, सहस = सहस्त्र, हज़ार, कौतिग = कौतुक, आश्चर्य।

संदर्भ : प्रस्तुत पद हिंदी की भक्तिकालीन संत ज्ञान मार्गी शाखा के प्रतिनिधि संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। कबीरदास की रचनाओं का संकलन डॉ. श्यामसुंदर दास कृत 'कबीर ग्रन्थावली' नाम से संपादित किया है। इस संकलन के 'पदावली' शीर्षक के 'राग-गौ़ड़ी' से संकलित किया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में कबीरदास जी ने आत्मा को प्रेमिका एवं परमात्मा को प्रेमी के रूप में चित्रित करके माधुर्य भाव की भक्ति से इन दोनों के विवाह का रूपक के द्वारा दोनों के मिलन एवं आनंद का वर्णन किया गया है।

व्याख्या : कबीरदास जी कहते है कि हे सुहागन स्त्रियो! तुम विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले मंगलमय गीत गाओं क्योंकि आज मेरे घर में प्रभु श्री राम पति रूप में पधारे हुए हैं। अर्थात् परमात्मा आये हैं। मेरा तन और मन दोनों ही अपने प्रियतम के प्रेम में या आसिक्त में लीन हो गये हैं। धरा, जल, अग्नि, आकाश एवं वायु नामक महातत्व राजा राम के साथ बराती बनकर आये हैं। रामदेव अर्थात् परमात्मा स्वयं यहाँ पर अतिथि बनकर आये हैं और मैं अपने यौवन अर्थात् उनकी भक्ति में मदमस्त हो गयी हूँ। मैं अपने शरीर रूपी कुण्ड को विवाह की यज्ञ-वेदी बना दूंगी। इस विवाह की परिक्रमाएँ पूरी करूँगी। मेरा जीवन धन्य है। अर्थात् यह मेरा सौभाग्य है कि- मेरा व परमात्मा का मिलन हो रहा है। मेरे व परमात्मा के इस विवाह मिलन को देखने के लिए तैंतीस करोड़ देवी-देवता और अट्ठासी हजार मुनिजन यहाँ पर आये हैं। कबीरदास जी कहते है कि- इस प्रकार मेरी आत्मा उस एक अविनाशी पुरुष अर्थात् श्री राम के साथ विवाह के अटूट बंधन में बंध जायेगी।

विशेषताएँ

1. कबीर यहाँ अपनी विचारधारा के प्रतिकूल तैंतीस करोड़ देवता एवं अट्ठासी हजार मुनियों तथा ब्रह्म आदि का उल्लेख किया है। किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं कि- कबीर बहुदेववाद अथवा अंधविश्वास से अन्य देवी-देवताओं को मानते हैं। इन सबका उल्लेख केवल यहाँ उस परम मिलन की सत्ता दिखाने के लिए ही किया है। इससे अन्य कोई अर्थ निकालना कबीर के साथ अन्याय होगा।
2. कबीर इस पद में परमपुरुष से अपने आध्यात्मिक मिलन का वर्णन विवाह के रूपक के द्वारा किया है।

3. इस पद में भारतीय परम्परा के अनुसार वैवाहिक संस्कार व परम्परा को आधार बनाया गया है।
4. कबीर ने प्रतीकों के द्वारा भगवत प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। यहाँ राम विश्व चेतना के प्रतीक है।
5. इस पद की भाषा सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा है,जिसमें अनेक बोलियों का मिश्रण हुआ है।
6. इस पद में प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. इस पद में रूपक, पुनरुक्ति तथा 'राजा राम', 'कहै कबीर' आदि में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
8. इस पद में संयोग शृंगार एवं शांत रस का प्रयोग हुआ है।
9. इस पद में प्रसाद और माधुर्य गुण, शब्द शक्ति, लक्षणा और अभिदा का प्रयोग हुआ है।

बोध प्रश्न

- कबीरदास आत्मा एवं परमात्मा का मिलन का वर्णन किस प्रकार किया है?
- कबीरदास के पद का दार्शनिक तत्व को स्पष्ट कीजिए?

मन रे मन ही उलटि समाँना।
गुर प्रसादि अकली भई तोकौं नहीं तर ठस बेगाँना||टेक||
नेडै थे दूरि दूर थैं नियरा, जिनि जैसा करि जाना।
औलौ ठीका चढ्या बलिडै, जिनि पीया तिनि माना||
उलटे पवन चक्र षट बेधा, सुन सुरति लै लागि।
अमर न मरै मरै नहीं जीवै, ताहि खोजि बैरागी।|
अनभै कथा कवन सी कहिये, है कोई चतुर बिबेकी।
कहै कबीर गुर दिया पलीता, सौ झल बीरलै देखि||"

भावार्थ : बेगाँना = पराया, औलौ ठीका = ओलती, बलिडै = बेंड़ा सुरति = चेतना, पलीता = वह बत्ती जिससे आग लगाई जाती है, झल = आग, ज्वाला।

संदर्भ : उपर्युक्त पद जैसा।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में निर्गुणोपासक संत कवि कबीरदास कहते है कि जब मन अंतर्मुखी होता है, तभी परमतत्व का ज्ञान होता है। सद्गुरु के उपदेश से योग-साधना के द्वारा प्रभु के दर्शन किए जा सकते हैं।

व्याख्या : कबीरदास जी कहते है कि- मेरा मन उलटकर अपने में ही लीन हो गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि साधक का मन जो पहले काम-वासना में भटका करता था, अब अपने ही अंदर परमात्मा के दर्शन के लिए प्रयास करने लगा है। गुरु की कृपा-रूपी प्रसाद को प्राप्त करके ही मुझे ज्ञान का लाभ हुआ है, अन्यथा मैं अपने से ही पराया था। जिस वस्तु अर्थात् मन को मैं निकट मानता था, वह मुझसे दूरी पर होती थी और जिसे (परमात्मा) को मैं मानता था वह निकट थी। अब मुझे पता चला है कि जिसने परमात्मा को जिस रूप में जाना, उसी रूप में उसे प्राप्त कर लिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि परमात्मा को दूर-दराज के तीर्थ-स्थली, मंदिरों में खोजने

वालों से परमात्मा दूर हो जाते हैं और मन में झांक कर देखने वाले को परमात्मा घर व अपने शरीर में ही दिखाई देते हैं। जिस व्यक्ति ने अपनी मनोवृत्तियों को अंतर्मुखी करके (मुंडेर के पानी को ऊपर चढ़ाकर) उस प्रेम रूपी जल को पिया है वही उस रस को जानता है। कुंडलिनी जागृत होकर छह चक्रों को बेंधती हुई शून्य रूपी सुरति में लीन हो जाती है।

कबीरदास जी कहते है कि हे बैराग! तुम उस तत्व को खोज करो, जिसको प्राप्त करने के बाद व्यक्ति अमर होने पर मरता नहीं है और इसी प्रकार वह मर कर भी जीवित नहीं होता है। अर्थात् वह आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है। इस अपूर्व कथा को अब किससे कहा जाये क्या कोई ऐसा चतुर विवेकी व्यक्ति है, जो इस कथा को समझ सके। कबीरदास जी कहते है कि- गुरु ने अब मेरे मन में ज्ञान का प्रकाश भर दिया है और उसकी ज्वाला को कोई विरला व्यक्ति ही देख सकता है। कबीर कहते है कि गुरु ने जो ज्ञान का जलता हुआ पलीता लगा दिया है, उसकी ज्योति एवं ज्वाला के दर्शन कोई विरला ही का पता है।

विशेषताएँ

1. प्रस्तुत पद में कबीरदास जी ने गुरुकृपा के महत्व को स्वीकारते हुए उसके द्वारा दिए गए ज्ञान-प्रकाश का उपयोग विरले व्यक्ति द्वारा किए जाने की बात पर बल दिया है। अर्थात् जिसने इस भक्ति रूपी रस का पान किया है। वही इसके महत्व को समझ सकता है। गुरु ही है, जो हमें इस अंधकार रूपी भाव सागर से ज्ञान का मार्ग दिखाकर पार करा सकता है।
2. प्रस्तुत पद में कबीरदास जी ने गुरु प्रसाद से योग साधना पूर्ण होने पर आत्मसाक्षात्कार की बात की है।
3. इस पद की भाषा सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा है, जिसमें अनेक बोलियों का मिश्रण हुआ है। इसमें संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों के अतिरिक्त देशज शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।
4. यह पद गाने योग्य पद छंद है। इसके प्रांभिक कार चरणों की टूक मिलती है इसके बाद दो-दो पंक्तियों की टूक मिलती है।
5. इस पद में रूपक, अनुप्रास, रूपकतिशयोक्ति, वीप्सा, संदेह, प्रश्न, दृष्टांत व विशेषोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. इस पद में भक्ति रस की प्रधानता है।

बोध प्रश्न

- कबीरदास सद्गुरु के उपदेश को योग-साधना के द्वारा प्रभु के दर्शन किस प्रकार कराते हैं।
- प्रेम रूपी जल को जिसने पिया वह क्या अनुभव कर सकता है?

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई||टेक||
पहले पूत पीछे भइ माँई, चेला कै गुरु लागै पाई।
जल की मछली तरवरि ब्याई, पकरि बिलाई मुरगै खाई।|
बैलहि डारि गुँनि घरी आई, कुत्ता कूँ लै गई बिलाई।|
तलिकरि साषा ऊपरि करि मूल बहुत भाँती जड़ लगे फूल।
कहै कबीर या पद को बूझै, ताँकू तीन्यूँ त्रिभुवन सूझै||

भावार्थ : अचंभा = आश्चर्य, ठाढ़ा = खड़ा हुआ, सिंघ = सिंह रूपी ज्ञान, गाई = इंद्रियों रूपी गाय, पूत = ज्ञान रूपी पुत्र, पीछे = बाद में, माँई = भक्ति रूपी माता, चेला = जीवात्मा रूपी शिष्य, गुरु = तत्वमसि आदि गुरु, लागै पाई = चरण स्पर्श करते हैं, जल की मछली = कुंडली रूपी मछली, तरवरि = शून्य शिकार रूपी श्रेष्ठ वृक्ष, ब्याई = ज्ञान एवं आनन्द को जन्म दिया, बिलाई = माया रूपी बिल्ली, मुरगै = ज्ञानी जीव रूपी मुर्गे, बैलहि = अहंकारी जीव रूपी बैल, डारि = त्याग कर, गुँनि = ज्ञान, कुत्ता = विषय रूपी कुत्ता, बिलाई = माया रूपी बिल्ली, तलिकरि = नीचे, मूल = जड़, संसार रूपी वृक्ष की जड़, ऊपरि करि = ऊपर करना, मूल = चैतन्य रूपी जड़ में, बहुत भाँती = अनेक प्रकार के, फूल = मिक्ष सिद्दी रूपी फूल, ताँकू = उसको, तीन्यूँ = तीनों।

संदर्भ : उपर्युक्त पद जैसा।

प्रसंग : प्रस्तुत पद निर्गुणोपासक संत कवि कबीरदास जी ने उलटबासियों का प्रयोग करते हुए, साधक को तत्व ज्ञान में ध्यान लगाने से उत्पन्न अवस्था का वर्णन किया है।

व्याख्या : कबीरदास जी कहते है कि- हे भाई! मैंने आज तक एक कौतुहल भरा कार्य देखा था। मैंने देखा कि- एक शक्तिशाली सिंह गायों को चरा रहा है अर्थात् शक्तिशाली जीव अपनी इन्द्रियों के पराधीन है। मैंने देखा कि पहले पुत्र का जन्म हुआ उसके बाद माता का आविर्भाव हुआ अर्थात् पहले तो साधक का जन्म हुआ, उसके बाद साधना की उत्पत्ति हुई।

ब्रह्मानंद ने साधक को पकड़ लिया है। मैंने देखा कि जल में रहने वाली मछली ने पेड़ पर चढ़कर बच्चों को जन्म दिया है अर्थात् मूलाधार में सुप्तावस्था में रहने वाली कुंडलिनी अब जागृत होकर, ब्रह्मारन्ध्र में पहुँच कर ज्ञान उत्पन्न कर रही है। मैंने देखा कि मुर्गे ने बिल्ली को पकड़कर खा लिया है अर्थात् अंतमुर्खी प्रवृत्तियों ने बाह्य प्रवृत्तियों को पकड़ कर, अपने प्रभाव में ले लिया है। मैंने देखा कि अनाज की गठरी बैल को घर छोड़कर आ गई है। अर्थात् चैतन्य ने अविवेक को पकड़कर ले गयी है अर्थात् माया ने अज्ञानी व्यक्तियों को पकड़ लिया है। मैंने देखा कि एक पेड़ की जड़े ऊपर की ओर हैं और उसकी शाखाएँ नीचे की ओर हैं तथा उसकी ऊपर की ओर जड़ों में अनेक प्रकार के फल लगे हुए हैं अर्थात् मूल चेतना ब्रह्मारन्ध्र ऊपर की ओर है, जबकि उसकी नाड़ी-मण्डल नीचे की ओर है तथा साधना के सिद्द होने पर मूल में आनंद, ज्ञान आदि अनेक प्रकार के फूल लगते हैं। कबीरदास जी कहते है कि जो व्यक्ति इस पद को समझ सकता है, उसे तीनों भुवन अर्थात लोक, आकाश, पाताल, पृथ्वी का ज्ञान प्राप्त हो जाएगा।

विशेषताएँ

1. इस पद में कबीरदास जी ने कौतुहल की दृष्टि से योग-साधना के द्वारा ईश्वर प्राप्ति के पश्चात् की दशा का वर्णन किया है।
2. इस पद में उलटबांसियों का प्रयोग हुआ है। उलटबांसियों में साधारण रूप से बात उल्टी जान पड़ती है, पर वास्तव में जो अर्थ होता है, उसे जानकार आंनन्द प्राप्त होता है। इस आधार पर सम्पूर्ण पद में विरोधाभास अलंकार भी माना जा सकता है।
3. इस पद में सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसमें अनेक बोलियाँ शामिल की गई है।

4. इस पद में अनुप्रास, रूपकतिशयोक्ति, ध्वनिसाम्य अलंकारों का प्रयोग किया गया है। इस पद में 'तीन्यूँ त्रिभुवन' में पुनराक्ति दोष है।
5. इस पद में भक्ति एवं शांत रस का प्रयोग हुआ है।

बोध प्रश्न

- कबीरदास के पदों में उलटबासियों का प्रयोग किस प्रकार हुआ है?

6.3.2 कबीरदास के दोहे

गुरु कौ अंग

सतगुरु सवाँन को सगा, सोधी सईं न दाति।
हरिजी सवाँन को हितू, हरिजन सईं न जाति।

शब्दार्थ : सवाँ न = समान नहीं, सोधी = शोध करने वाला या शिष्य के गुण-दोषों को ढूँढ़ कर दूर करने वाला, सईं = समान, दाति = दाता, हरिजन = भगवान का भक्त, हितू= हितैषी।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा हिंदी की भक्तिकालीन संत ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। कबीरदास की रचनाओं का संकलन डॉ. श्यामसुंदर दास कृत 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' के 'गुरु कौ अंग' से दिया गया है।

प्रसंग : इस दोहे में कबीरदास, गुरु के महत्व को व्यक्त किया है। भक्तिकाल के संत काव्य में गुरु के प्रति अनन्य कृतज्ञता ज्ञापित की गई है। संत कबीरदास ने गुरु की महिमा को जो प्रतिष्ठा दी है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

व्याख्या : कबीरदास जी कहते है कि इस माया रूपी संसार में सतगुरु के समान कोई दान नहीं होता है। चाहे वह धन का दान हो, हीरे-जवाहरात का सब तुच्छ है। शुद्धता ही सबसे बड़ा दान है। सतगुरु अपने दृष्टि द्वारा या वचन द्वारा शिष्य में ऐसे मानस तरंग उत्पन्न करता है, जो उसकी नाड़ियों में प्रवाहित होकर उसके रक्त चित्त दोनों का शोधन करता है। इसलिए कवि के कहने का भाव यह है कि हृदय और मन को जो निर्मल कर दे वैसा कोई दूसरा दान नहीं है। हरि के समान कोई हित करने वाला नहीं है और हरि के जो सेवक है, उनके समान कोई जाति नहीं है। कहने का आशय यह है कि जन्म के आधार पर कोई श्रेष्ठ नहीं बनता है। वह श्रेष्ठ तभी बनता है जब वह ईश्वर की भक्ति में लीन होकर अपने आप को पूर्ण रूप से ईश्वर के समक्ष समर्पित कर देता है।

विशेषताएँ

1. इस दोहे में सतगुरु का अप्रतिम महत्व बताया गया है। ध्यातव्य है कि कबीर 'गुरु' नहीं 'सतगुरु' का महत्व बताते हैं। क्योंकि जहाँ गुरु का संबंध साधना व शास्त्रीय ज्ञान से है, वही सतगुरु नि:स्वार्थ भाव से जीवन के गहनतम रहस्यों का ज्ञान देता है।
2. सभी धर्मों में गुरु को अधिक महत्व दिया गया है। वेदों ने गुरु को 'आचार्य देवो भव' के समान पूज्य बताया है। कई स्थानों में गुरु को साक्षात ब्रम्ह ही माना है।
3. इस दोहे में सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग किया गाय है।
4. इस दोहे में छंद दोहे का प्रयोग किया गया है।
5. इस दोहे में सतगुरु के माध्यम से ही ईश्वर को प्राप्त करने का रहस्य बताया गया है।

6. कबीर पर नाथों का गहरा प्रभाव है। उन्हें गुरु-भक्ति का यह भाव संभवतः नाथों की प्रेरणा से ही मिला है।
7. इस दोहे में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है। भगवद् भक्तों का संप्रदाय सर्वव्यापी एवं सार्वभौमिक बताया गया है।
8. इस दोहे में भक्ति रस का प्रयोग हुआ है।

बोध प्रश्न

- कबीरदास के दोहों में गुरु के महत्व का वर्णन कीजिए?
- कबीरदास के दोहों में उपदेशात्मक तत्व को स्पष्ट कीजिए?

बलिहारी गुर आपणैं द्यौं हाड़ी कै बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार।

शब्दार्थ : द्यौं = दूँ, हाड़ी = हड्डियों से बना हुआ शरीर, बार = न्योछावर, बार= विलंब, मानिष= मनुष्य।

संदर्भ : उपर्युक्त संदर्भ जैसा।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहे में कबीरदास गुरु का महत्व बताकर उस पर सर्वस्व न्योछावर करने में अपना सौभाग्य मानते हुए कहते हैं।

व्याख्या : संत कबीर कहते है कि- मैं अपने गुरु पर अपने आप को बार-बार न्योछावर करता हूँ। क्योंकि वे देवालय के द्वार है। अर्थात् उन्हीं की ज्ञान कृपा से स्वर्ग में प्रवेश किया जा सकता है, जिन्होंने मनुष्य से देवता बना दिया। और मनुष्य से देवता बन ने में किसी प्रकार का विलम्ब भी नहीं किया। अर्थात् गुरु की महिमा इतनी प्रबल है कि- जो एक ही अपनी कृपा से मनुष्य को देवता बनाने में समर्थ है। उनकी महिमा अनंत है, इसे वही समझ सकता है जिसे ज्ञान का भली-भांति बोध हो गया हो। कबीरदास गुरु के महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहते है कि यहाँ स्वर्ग और देवता का संयोग द्रष्टव्य है। देवता बनने पर ही मनुष्य स्वर्ग का अधिकारी होगा। क्योंकि स्वर्ग देवों का निवास स्थान है। दिव्य का अर्थ आकाश ही है। योग मार्ग में गुरु, शिष्य को आकाश जिसे शून्य या सह चक्र कहते है उसका दर्शन होता है।

विशेषताएँ

1. इस साखी दोहे में 'घौहाड़ी' एक जटिल प्रयोग है। इसका जटिलता दूसरी पंक्ति के आलोक में विचार करने पर खुल जाती है। दूसरी पंक्ति में 'देवता' बनने का उल्लेख है। यह भी ज्ञातव्य है कि- देवता का निवास स्थान स्वर्ग है। अंत: स्वर्ग के ही अर्थ में 'घौहाड़ी' शब्द प्रयुक्त हुआ है।
2. इस दोहे में सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसमें अनेक बोलियों के शब्द शामिल किये गए हैं।
3. मानिष तै देवता में मनुष्य मरणशील है। वह जन्म-मरण के बंधन में पड़ता रहता है। देवता जन्म-मरण से रहित हैं। तात्पर्य यह है कि- गुरु ने मुझे आत्म-ज्ञान दिया।
4. इस दोहे में दोहा छंद का प्रयोग किया गया है।
5. इस दोहे में अनुप्रास, श्लेष अलंकार का प्रयोग हुआ है।

6. इस दोहे में लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

बोध प्रश्न

- कबीरदास क्या न्योछावर करने की बात कहते हैं?

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाडिया, अनंत दिखावण हार।

शब्दार्थ : उपगार = उपकार, अनंत = अनंत, उघाडिया = उदघटित कर दिए हैं, खोल दिए, लोचन अनंत = ज्ञान की आंखे, अनंत = अनंत सत्ता, प्रभु का विराट स्वरूप, दिखावणहार = साक्षात्कार कराने वाले, दिखाने वाले।

संदर्भ : उपर्युक्त संदर्भ जैसा।

प्रसंग : कबीरदास भारतीय साहित्य परंपरा के एकमात्र रचनाकार है, जिन्होंने गुरु को ईश्वर से अधिक महत्व दिया है। संतकाव्य में गुरु के प्रति अनन्य कृतज्ञता ज्ञापित की गई है। सतगुरु के महिमा को अनंत सिद्ध करते हुए कहते है। यह दोहा भी इसी भावबोध से युक्त है।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि सतगुरु की महिमा अपार है। उसकी कोई सीमा नहीं है। उसका कहीं अंत नहीं हैं। गुरु ने मुझ पर अनंत उपकार किया है। मेरे सीमा रहित ज्ञान चक्षुओं को खोलकर असीम ब्रह्मा का जो स्थान और काल से परे है, जिसका न कोई आदि है, और न ही अंत उसका दर्शन करने का श्रेय उन्हीं गुरु को है। उसने हमारी आँखे खोलकर हमें उस असीम ब्रह्म का, अर्थात् उसने माया से आबद्ध जीव को ज्ञानरूपी दृष्टि प्रदान कर, ब्रह्मानुभूति को संभव कर दिया है। इस लिए गुरु का गौरव असीम है।

विशेषताएँ

1. भक्तिकाल का सतगुरु आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था के अध्यापक से भिन्न है। सतगुरु वह है, जो हमारे भीतर अपर्याप्तता का बोध उत्पन्न कर हमारे अहंकार का नाश करता है और हमारे भीतर ज्ञान की प्यास पैदा करता है। ऐसे गुरु के प्रति अनुभूतिक संबंध महसूस करते हुए कबीर कृतज्ञता का भाव प्रकट करते है और बार-बार उसकी महत्ता का वर्णन करते हैं।
2. संत काव्यधारा का गुरु, ब्रह्म का ज्ञान देता है। शिष्य को यात्रा स्वयं करनी होती है।
3. गुरु द्वारा दी गई ज्ञान रूपी दिव्य दृष्टि से प्रभु की सत्ता को समझना या उसका अनुभव करना संभव है।
4. कबीरदास के इस भाव पर वैष्णवी भक्ति-चेतना का प्रभाव लक्षित होता है।
5. इस दोहे में सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
6. इस दोहे में दोहाछंद का प्रयोग हुआ है।
7. इस दोहे में दूसरी पंक्ति में 'अनँत; 'अनँत' के प्रयोग में यमक अलंकार है।
8. प्रस्तुत दोहें में शांत, भक्ति रस तथा प्रसाद गुण विघमान है।
9. इसमें 'लक्षण शब्द शक्ति' का प्रयोग हुआ है।

बोध प्रश्न

- कबीरदास गुरु की उपकार की भावना किस प्रकार व्यक्त किया हैं?

राम नाम कैपटंतरे, देबे कौ कुछ नाहीं।

क्या ले गुर संतोषिए, हौंसरही मन माहीं।"

शब्दार्थ : कै = के, पटंतरे = बराबरी में, उपमा में, विनिमय में, संतोषिए = संतुष्ट किया जाय, क्या ले = क्या ले कर, किस बूते पर, हौंसरही = इच्छा रही।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा हिंदी की भक्तिकालीन संत ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। कबीरदास की रचनाओं का संकलन डॉ. श्यामसुंदर दास कृत 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' के 'गुरु कौ अंग' से दिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहें में कबीरदास गुरु को संतुष्ट करने में अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहते हैं।

व्याख्या : प्रस्तुत दोहें में कबीरदास कहते हैं कि सतगुरु ने मुझे राम नाम जैसी दिव्य का दान दिया है। अर्थात् सतगुरु ने ही मुझे ईश्वर प्राप्ति का साधन दिया है और इस राम नाम के बदले में देने के लिए शिष्य के पास कुछ भी नहीं है। शिष्य की यह सामर्थ्य नहीं है कि- वह गुरु को प्रसन्न कर सके। अर्थात् कहने का तात्पर्य है कि शिष्य अपने सतगुरु को दक्षिणा देने में असमर्थ है।

विशेषताएँ

1. राम नाम की अद्वितीय महत्ता और शिष्य की विनम्रता एक साथ लक्ष्य हुआ है।
2. शिष्य, गुरु दक्षिणा की इच्छा रखता है। परंतु वह गुरु को कुछ भी देने योग्य नहीं है। शिष्य, गरुदेव के प्रति कृतज्ञ है।
3. इस दोहे में सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसमें अनेक बोलियों के शब्द शामिल किया गया है।
4. इस दोहे में दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।
5. इस दोहे में अनुप्रास अलंकार प्रयोग हुआ है।
6. इस दोहे में (i) अन्नयोपमा- प्रथम पंक्ति(ii) गूढोत्तर- दितीय पंक्ति का प्रयोग हुआ है।
7. इस दोहे में गुरु की महानता का वर्णन हुआ है।
8. इस दोहे में भक्ति रस का प्रयोग हुआ है।

बोध प्रश्न

- कबीरदास गुरु को संतुष्ट करने में क्यों असफल हुए हैं?

सतगुरु के सदकै करूँ, दिल अपणी का साछ।

सतगुर हम स्यूँ लडि पड्या मुहकम मेरा बाछ।।

शब्दार्थ : सदकै = न्योछावर होना, साछ = साक्षी, मुहकम = हाकिम, मालिक, बाछ = बचा लिया।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा हिंदी की भक्तिकालीन संत ज्ञान मार्गी शाखा के प्रतिनिधि संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। कबीरदास की रचनाओं का संकलन डॉ. श्यामसुंदर दास कृत 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' के 'गुरु कौ अंग' से दिया गया है।

प्रसंग : इस दोहें में कबीर ने गुरु के प्रति अनंत कृतज्ञता की भावना ज्ञापित की है। मैं सतगुरु पर प्राण से न्योछावर हूँ। कबीरदास कहते है कि इस कलियुग अर्थात् माया-मोह जैसे प्रपंच के आकर्षणों से गुरु किस प्रकार रक्षा करता है, यह बताते हुए कबीरदास कहते है।

व्याख्या : कबीरदास जी कहते है कि- मैं अपनी आत्मा की गवाही लेकर शुद्ध हृदय से अपने गुरु पर बार-बार न्योछावर करता हूँ। कलियुग अर्थात् (मोह, माया, प्रपंच) मुझसे लड़ पड़े हैं। लेकिन मेरी इच्छा (ईश्वर प्राप्ति की कामना) बड़ी मजबूत थी। इसलिये वह किसी प्रकार का व्यवधान नहीं डाल पाया। अर्थात् कबीर कहते है कि मेरा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा, जब तक सत गुरु मेरे पास है।

विशेषताएँ

1. प्रस्तुत दोहें में 'कलियुग' शब्द का तात्पर्य मोह, माया से है। गुरु की कृपा से ही मनुष्य कलियुगी अकर्षणों से बच सकता है।
2. इस दोहे में सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसमें अनेक बोलियों के शब्द शामिल किए गए हैं।
3. इस दोहे में दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।
4. इस दोहें में अनुप्रास, ध्वनिसाम्य और मानवीकरण अलंकार का प्रयोग हुआ है।
5. इस दोहे में भक्ति प्रयोग हुआ है।

बोध प्रश्न

- कबीरदास क्यों कहते हैं कि उसका कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते?

सतगुरु लई कमाँण करि, बाँहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर।

शब्दार्थ : बाँहण लागा = चलाने वाला, बाह्या = मार, सूँ = से

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा हिंदी की भक्तिकालीन संत ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। कबीरदास की रचनाओं का संकलन डॉ. श्यामसुंदर दास कृत 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' के 'गुरु कौ अंग' से दिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहें में कबीर ने गुरु के प्रति अनंत कृतज्ञता की भावना ज्ञापित की है। इस 'साखी' में इसी भक्ति भावना का विस्तार करते हुए कबीरदास इस दोहे में कहते है कि- सतगुरु ने शब्द-रूपी धनुष से ज्ञान रूपी बाण फेंका है। अर्थात् कहने का तात्पर्य है कि मैंने सतगुरु के ज्ञान की भली-भांति आत्मसात कर लिया है।

व्याख्या : प्रस्तुत दोहे में संत कबीर कहते है कि- सतगुरु ने मुझे धनुष की प्रत्यंचा बनाकर ग्रहण कर लिया और मुझ पर ही तीर चलाने लगे। उनमें से उन्होंने एक तीर प्रेम का ऐसा चलाया जो

मेरे शरीर के भीतर ही रह गया। कबीर के कहने का तात्पर्य यह है कि गुरु ने उनके भीतर ब्रह्म-प्रेम का भाव उत्पन्न कर दिया।

विशेषताएँ

1. प्रस्तुत दोहें में कबीर ने गुरु के प्रति अनंत कृतज्ञता की भावना ज्ञापित की है। इस 'साखी' में इसी भक्ति भावना का विस्तार किया गया है।
2. शिष्य का कमान होना, गुरु के प्रति विनम्रता की व्यंजना करता है। इसके अभाव में गुरु शिष्य का कल्याण नहीं कर सकता। साथ ही गुरु के पास भी तराशे हुए तीरों का होना अर्थात् उसका ज्ञान- संपन्न होना जरूरी है। अन्यत्र कबीर ने कहा है- "पहिरे जडतन बखतरी, चुभे न ऐकौ तीर"।।
3. इस दोहे में रूपकतिशयोक्ति के माध्यम से उन्होंने सतगुरु की दीक्षा विधि और शिष्य द्वारा उसके ग्रहण की व्यंजना की है।
4. इस दोहे में सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसमें अनेक बोलियों के शब्द शामिल किए गए हैं।
5. इस दोहे में दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।
6. इस दोहे मेंअनुप्रास और रूपकतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया है।
7. इस दोहे में भक्ति रस का प्रयोग हुआ है।

बोध प्रश्न

- कबीर के अनुसार गुरु ने कौन-सा तीर चलाया?

सतगुरु साँवा सूरिवाँ, सबद जू बाह्या एक।
लागत ही मैं मिलि गया, पढ्या कलेजै छेक।

शब्दार्थ : सूरिवाँ = शूरवीर, शूरमा, बाह्या = मारा, लागत ही मैं = हृदय के साथ तदरूप हो गया, सबद = शब्द, उपदेश, छेक = छेद, घाव, अनाशक्ति या दूरी।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा हिंदी की भक्तिकालीन संत ज्ञान मार्गी शाखा के प्रतिनिधि संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। कबीरदास की रचनाओं का संकलन डॉ. श्यामसुंदर दास कृत 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' के 'गुरु कौ अंग' से दिया गया है।

प्रसंग : इस दोहे में कबीरदास गुरु को शूर-वीर सिद्ध करते हुए, अपने मन पर पड़े उनके उपदेश का प्रभाव बताते हैं। आशय यह है कि- सद्‌गुरु का निशाना अचूक होता है और वह शब्द- बाणों से शिष्य के सारे विकारों को नष्ट कर देता है।

व्याख्या : प्रस्तुत दोहें में कबीरदास जी कहते है कि सतगुरु ही सच्चा सूरमा है, शूरवीर है, जिस प्रकार युद्धभूमि में शूरवीर अपने विरोधी पक्ष पर बाणों की वर्षा करके दुश्मन को परास्त कर देता है। उसी प्रकार उस सतगुरु रूपी शूरवीर के शब्द रूपी तीर के चलते ही शिष्य भूमि में मिल जाता है। अर्थात् गुरु की शिक्षा हृदयांगम होते ही उसका अहंकार नष्ट होगया है, कलेजे में छेद हो गया है, हृदय ज्ञान से परिपूर्ण हो गया है।

विशेषताएँ

1. इस दोहे में गुरु को ईश्वर से भी अधिक महत्व दिया गया है।

2. इस दोहेमें सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसमें अनेक बोलियों के शब्द हैं।
3. इस दोहे में दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।
4. इस दोहे में अनुप्रास और चपलातिशयोक्ति अलंकार काप्रयोग हुआ है।
5. गुरु के शब्द-बाण से मेरा मर्म आहत हो गया और मुझे खोया हुआ आत्मरूप प्राप्त हो गया।
6. इस दोहे मेंभक्ति रस का प्रयोग हुआ है।

बोध प्रश्न

- कबीरदास के दोहों में गुरु के महत्व का वर्णन कीजिए?
- कबीरदास के दोहों में गुरु उपदेशों के महत्व को स्पष्ट कीजिए?

सतगुरु मारया बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि।
अंगि उघाडै लागिया, गई दवा सूँ फूंटि।

शब्दार्थ : भरि = पूरी शक्ति से, धरि करि सूधी मूठि = सीधी मूँठ में लेकर, ठीक निशाना साधकर, उघाडै लागिया = नग्न होने लगा, दवा = दावाग्नि, सूँ = सी, समान।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा हिंदी की भक्तिकालीन संत ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। कबीरदास की रचनाओं का संकलन डॉ. श्यामसुंदर दास कृत 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' के 'गुरु कौ अंग' से दिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहे में कबीरदास श्रद्धालु शिष्य पर ज्ञानोपदेश रूपी बाण का वर्णन किया है।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि सतगुरु ने सीधे लक्ष्य करके पूरी शक्ति के साथ शब्द-बाण का प्रहार किया है। वह नंगे अंग पर लगा है और दावाग्नि-सी फूट पड़ी है। अर्थात् कहने का तात्पर्य है कि- नंगे शरीर पर लक्ष्य बाज बिल्कुल सटीक लगता है और वह शरीर में आर-पार समा जाता है। गुरु ने जो शब्द बाण मारा है, वह भी शिष्य के शरीर में बिल्कुल ठीक जगह लगा और उसके शरीर में प्रभु-दर्शन प्राप्ति की विरहाग्नि रूपी दावाग्नि जल पड़ी है। कहने का तात्पर्य यह है कि- सतगुरु ने साधक के ऊपर यह उपदेश पूर्ण शक्ति से खींचकर एवं मूठ को लक्ष्य करके सीधा मारा है, जिससे दावाग्नि की ज्वाला धधक उठी। उसी ज्वाला में समस्त वासना, मोह-माया आदि जल-जलकर भस्म होने लगे। अर्थात् वस्तु स्थिति प्रभु से साधक का साक्षात्कार हो गया।

विशेषताएँ

- प्रस्तुत 'साखी' में प्रभु-दर्शन की प्राप्ति की महत्ता को दर्शाया गया है।
- इस दोहे में गुरु का शिष्य पर ज्ञानोपदेश का प्रभाव का चित्रण हुआ है।
- इस दोहे में सांसारिक मोह-माया से राजित होने से है।
- इस दोहे में सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसमें अनेक बोलियों के शब्द हैं।
- इस दोहे में भक्ति रस एवं श्रद्धा भाव का चित्रण हुआ है।
- इस दोहे में दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।

- इस दोहे में रूपातिश्योक्ति, उपमा, ध्वनिसाम्य अलंकार का प्रयोग हुआ है।

बोध प्रश्न

- सतगुरु ने सीधे लक्ष्य करके पूरी शक्ति के साथ कैसा प्रहार किया?

हंसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि।
कहै कबीर भीतरि भिधा, सतगुर कै हथियार

शब्दार्थ : उनमनी = अनमनी, संसार से उदासीन, अनासक्ति, मेल्ह्या = नष्ट कर दिया, मारि = मार कर, वश में करके, भिधा = प्रविष्ट हो गया, भेदन कर दिया।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा हिंदी की भक्तिकालीन संत ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। कबीरदास की रचनाओं का संकलन डॉ. श्यामसुंदर दास कृत 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' के 'गुरु कौ अंग' से दिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहे में कबीरदास जी मन की चंचल वृत्तियों को नष्ट करने वाले सतगुरु के अस्त्र या उपदेश का वर्णन किया है।

व्याख्या : कबीरदास जी कहते है कि- सतगुरु का शब्द रूपी बाण अर्थात् अस्त्र मन को ऐसा भेद दिया है, जिससे मन बेचैनी से भर गयाहै अर्थात् जिससे मन की सारी चंचलता (मन की संकल्प क्षमता और विकल्प क्षमता) मिट गयी और जीवात्मा उन्मनी अवस्था में पहुंच जाती है। परिणाम-स्वरूप शिष्य की ऐसी दशा है कि जिसमें शिष्य न बोलता है और न हंसता है। अर्थात् सांसरिक ह्रास विलास से विरक्त हो गया है। वह ईश्वर साधना में हठ योग की क्रियाओं द्वारा संलग्न हो गया है। अतः उसने अपने मन को निर्लिप्त कर लिया है। साधक की मुक्ति मन की चंचल वृत्तियों के समाप्त होने पर ही निर्भर है, बाह्य आडंबर पर नहीं। कबीर ने इस साखी का आधार इसी मान्यता को बनाया है।

विशेषताएँ

1. 'हठयोग प्रदीपिका' में 'उन्मनी' अवस्था के बारे में लिखा है कि- जब सुषुम्ना नाड़ी में प्राणवायु का संचार होने लगता है तब मन स्थिर हो जाता है। वह अवस्था 'उन्मनी' अवस्था है।
2. 'कबीर' वैष्णवी भक्तिमार्ग के प्रभाव में योगमार्ग से भक्तिमार्ग की ओर तो आते हैं, परन्तु वे इसे सरल और सहज नहीं मानते हैं। बल्कि इसकी जगह वे मानते है कि बहुत साधना के बाद ब्रह्म-प्रेम की उपलब्धि होती है।
3. इस दोहे में सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसमें अनेक बोलियों के शब्द हैं।
4. इस दोहे में भक्ति रस एवं श्रद्धा भाव का चित्रण हुआ है।
5. इस दोहे में दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।
6. इस दोहे में रूपाकातिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

बोध प्रश्न

- मन की चंचल वृत्तियों को नष्ट करने वाले सतगुरु के उपदेश क्या है।

गूंगा हूवा बावला, बहरा हुआ कान।

पाऊँ थै पंगुल भया, सतगुर मारया बाण।

शब्दार्थ : बावला = सांसारिक दृष्टि से पागल, भागवत प्रेम में उन्मुक्त, बहरा हुआ कान = कान से बहरा हो गया, पाऊँ थै = पैरों से, पंगुल = अपंग, लंगड़ा, न चल सकने योग्य।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा हिंदी की भक्तिकालीन संत ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है। कबीरदास की रचनाओं का संकलन डॉ. श्यामसुंदर दास कृत 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' के 'गुरु कौ अंग' से दिया गया है।

प्रसंग : इस दोहे में संत कबीरदास जी सतगुरु के उपदेश के श्रद्धालु शिष्य पर होनेवाले प्रभाव का वर्णन हुआ है।

व्याख्या : प्रस्तुत दोहें में कबीरदास कहते हैं कि सतगुरु के शब्द रूपी बाण मारने से शिष्य गूंगा और बावला हो जाता है। कान से बहरा हो जाता है और पाँव से लंगड़ा हो जाता है। यहाँ पर कबीरदास ने यह संकेत दिया है कि सद्गुरु के ज्ञान से ज्ञानोंनिद्र्यों (आँख, कान, नांख, जीभ, त्वचा) ही बाह्य वृत्ति रुक जाती है और वह अन्तर्मुखी हो जाता है। इसी अन्तर्मुखी से साधक-शिष्य अपने भीतर ईश्वर का साक्षात्कार करता है।

विशेषताएँ

1. प्रस्तुत दोहे में बताया गया है कि भक्त अपने अन्तर्मुखता के बावजूद अपने भीतर ईश्वर का अर्थात् ब्रह्म सत्ता का साक्षात्कार कर लेता है।
2. सतगुरु के शब्द-रूपी बाण लगने से शिष्य गूंगा, बहरा, काना, लंगड़ा अर्थात् अपंग हो गया है। ऐसी स्थिति के करण ही उसे पागल घोषित कर दिया गया है।
3. ज्ञानोपदेश का प्रभाव होने से वाणी, कान, मन एवं चरण सभी इंद्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं। इस लिए वे संकेत को ग्रहण नहीं करती। इस सखी का आधार यही मान्यता है।
4. इस दोहे में सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसमें अनेक बोलियों के शब्द हैं।
5. इस दोहे में शांत रस एवं श्रद्धा भाव का चित्रण हुआ है।
6. इस दोहे में दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।
7. इस दोहे में अनुप्रास, रूपातिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

बोध प्रश्न

- गुरु के शब्द रूपी बाण से शिष्य की क्या हालत होती है?

6.4 पाठ सार

कबीरदास भक्ति कल के संत काव्यधारा के प्रमुख कवि है। वह प्रमुख रहस्यवाद के कवि भी थे। वे अनपढ़ थे। वे जनभाषा में रचना करते थे। परंतु उनके पास असीम ज्ञान का भंडार था। उनके पद एवं दोहे आज भी प्रासंगिक है। उनके जीवन में उनके गुरु रामानंद का श्रेष्ठ स्थान था। उन्होंने गुरु सतगुरु, ब्रह्म आदि भी कहे है। उनके दोहे में गुरु के प्रति प्रेम सदैव झलकता है। उन्होंने अपने आराध्य देवता प्रभु श्रीराम को ही मानते थे। उन्होंने अपने दोहे में यह भी स्पष्ट

किए है कि- उनके राम दशरथ पुत्र राम नहीं है। वे निराकार ब्रह्म है। मोह, माया से दूर रहने के लिए सदैव कहते थे। वे सिर्फ मनुष्य जाती को ही विश्वास करते थे।

6.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. कबीर की भक्ति में परमात्मा के प्रति 'परम प्रेम' प्रमुख है।
2. कबीर साधक के रूप में एक ऐसी प्रेमपूर्ण आत्मा है जो निरंतर अपने प्रियतम अर्थात परमात्मा को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है।
3. कबीर ने परमात्म तत्व के प्रति भक्ति को प्रकट करने के लिए पट्टी-पत्नी के रूपक का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।
4. कबीर के काव्य में योग की विविध स्थितियों का भी प्रतीकात्मक वर्णन मिलता है।
5. कबीर ने साधना की रहस्यपूर्ण स्थितियों का वर्णन करने के लिए उलटबांसियों का भी प्रयोग किया है।
6. कबीर के काव्य के गुरु के प्रति सर्वोच्च श्रद्धा दिखाई देती है।

6.6 शब्द संपदा

1. अचंभा	= आश्चर्य
2. आत्मा	= मन, जीव
3. आध्यात्मिक	= परमात्मा और आत्मा से संबंध रखनेवाला
4. उचार	= उच्चारण
5. चंचलता	= अस्थिरता
6. जीवात्मा	= जीव में रहनेवाली आत्मा
7. दुलहनी	= सौभाग्यवती
8. निराकार	= जिसका कोई आकार नहीं
9. निर्लिप्त	= मोह से दूर रहने वाला
10.परमात्मा	= परब्रह्म, इश्वर
11.बाह्यआडम्बर	= दिखावा
12.बेगाँना	= पराया
13.मनोवृत्ति	= मन के चलने या काम करने का ढंग
14.मूल	= जड़

6.7 परीक्षार्थी प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. कबीरदास के किन्हीं दो पदों का उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए?
2. "मन रे मन ही उलटि समाँना।
   गुर प्रसादि अकली भई तोकौं नहीं तर ठस बेगाँना||टेक||......
   अनभै कथा कवन सी कहिये, है कोई चतुर बिबेकी।
   कहै कबीर गुर दिया पलीता, सौ झल बीरलै देखि||"- उपरोक्त पद का अर्थ सहित व्याख्या कीजिए।
3. कबीरदास के 'गुरु कै अंग' के पाँच दोहे का उदाहरण सहित विशेषताएँ बताईए?

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. गूंगा हूवा बावला, बहरा हुआ कान।/ पाऊँ थै पंगुल भया, सतगुर मारया बाण। - इस दोहा का सप्रसंग व्याख्या कीजिए।
2. सतगुरु लई कमाँण करि, बाँहण लागा तीर।/ एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर। - इस दोहा का सप्रसंग व्याख्या कीजिए।
3. कबीरदास के दोहे में सतगुरु के महत्व को समझाइए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए –

1. कबीरदास के रचनाओं का संकलन किसने 'कबीर ग्रंथावली' नाम से संपादित किया थे? ( )
   (अ) रामचंद्र शुक्ल (आ) हजारी प्रसाद द्विवेदी (इ) श्यामसुंदर दास (ई) डॉ. नागेन्द्र
2. कबीरदास किस भाषा में रचना करते थे? ( )
   (अ) सधुकड्डी एवं पंचमेल खिचड़ी (आ) अबधि (इ) पाली (ई) ब्रज
3. कबीरदास ने किससे दूर रहने के बात करते थे? ( )
   (अ) प्रेम (आ) वासना (इ) घृणा (ई) माया

II. रिक्तों स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. कबीरदास ने................ के लिए सुहागन स्त्रियों को गाना गाने के लिए कहते थे।
2. ....ने कबीरदास को इश्वर प्राप्ति का गौरव दिखाया था।
3. उन्मनी अवस्था.................है।
4. "सतगुरु मारया बाण भरि, ... है।

5. मोह, माया से सर्वदा.................. रहना चाहिए।

III. सुमेल कीजिए।

1. कबीर ग्रंथावली	(अ) कबीर दास
2. सधुकड्डी	(आ) डॉ. श्यामसुंदर दास
3. पदावलीराग	(इ) गौ़ड़ी
4. कलियुग	(ई) गवाही
5. साखी	(उ) माया-मोह

6.8 पठनीय पुस्तकें

1. कबीर ग्रंथावली : श्यंसुंदर दास
2. कबीर ग्रंथावली : माताप्रसाद गुप्त
3. कबीर : (सं). हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास : बच्चन सिंह
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी Estd. 1998 MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY

इकाई 7 : रैदास-बानी

रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 मूल पाठ : रैदास-बानी
7.3.1 व्याख्या भाग
7.3.2 रैदास के पदों में अभिव्यक्त भक्ति एवं मानवीय-स्वर
7.3.3 रैदास की प्रासंगिकता
7.4 पाठ सार
7.5 पाठ की उपलब्धियाँ
7.6 शब्द संपदा
7.7 परीक्षार्थ प्रश्न
7.8 पठनीय पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! इस इकाई में आप मध्यकाल के संत कवि रैदास जिन्हें रविदास के नाम से भी जाना जाता है, उनके पाँच निर्धारित पदों का अध्ययन करेंगे। संत रैदास निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवियों में सम्मिलित हैं। उन्होंने अपने काव्य में ब्रह्म के निराकार स्वरूप की आराधना की है।

7.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- संत रैदास के निर्धारित पदों की विषय वस्तु से परिचित हो सकेंगे।
- संत कवि रैदास के काव्य में निहित आध्यात्मिक और मानवीय मूल्यों से अवगत हो सकेंगे।
- संत रैदास के काव्य के मूल संदेश को समझ सकेंगे।
- संत रैदास की प्रासंगिकता से परिचित हो सकेंगे।

7.3 मूल पाठ : रैदास-बानी

7.3.1 व्याख्या भाग

[1]

खिल खिले नहिं का कहि पंडित, कोई न कहै समुझाई।
अबरन बरन रूप नहिं जाके, कहं लौं जाइ समाई॥
चंद-सूर नहिं, राति-दिवस नहिं, धरनि अकास न भाई।
‘करम-अकरम नहिं, सुभ-असुभ नहिं, का कहि देहु बडाई॥

सीत न उस्न न बाउ नहिं सरवत, काम कुटिल नहिं होई।
जोग न भोग, रोग नहिं जाके, कहौं राम सत सोई॥
निरंजन, निराकारा, निरलेपी, निरविकार निसासी।
काम कुटिल नहिं होई हर-हर आवै हांसी॥
गगन धूर-धूप नहिं जाके, पवन पूर नहिं पानी।
गुन निर्गुन कहियत नहिं जाके, कहौ तुम बात सयानी॥
याही सों तुम जोग कहत हौ, जब ल आस की पासी।
छूटे तबहीं जब मिलै एक हीं, भनै रैदास उदासी॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए। 2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

शब्दार्थ : कहि = कहना, पंडित = विद्वान, समुझाई = समझाना, अबरन = रंगविहीन, बरन = रंग से युक्त, कहं लौ = कहाँ तक, समाई = सामर्थ्य, चंद = चंद्र, सूर = सूर्य, धरनि = धरती, अकास = आकाश, करम = कर्म, अकरम = अकर्म, सुभ = शुभ, सीत = ठंडा, उष्ण = ताप/गरमी, बाउ = वायु, निरलेपी = निर्लिप्त (जो संसार की मोह माया में लिप्त न हो), निसासी = जिसमें कोई आशा न हो, हाँसी = हँसी, धूर = धूल, पवन = हवा, निर्गुण = जिसका कोई गुण नहीं हो, आस = इच्छाएँ, पासी = पाश/फाँसी, छूटे = छूटना/मुक्त होना, भनै = कहना, उदासी = उदास

संदर्भ : यह पद 'रैदास बानी' से लिया गया है। इसके रचनाकार हैं संत कवि रैदास जिन्हें रविदास के नाम से भी जाना जाता है। उनकी गिनती कबीर और नामदेव जैसे संत कवियों की श्रेणी में होती है। कबीर की तरह रैदास ने निर्गुण भक्ति का निरूपण किया है। प्रस्तुत पद में उन्होंने निर्गुण निराकार ब्रह्म का वर्णन किया है।

प्रसंग : संत रैदास ने इस पद में निर्गुण भक्ति का मंडन करते हुए कहा है कि समस्त कामनाओं को त्याग करने से साधक को निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है।

व्याख्या : इस पद में संत कवि रैदास कहते हैं कि हे पंडित! मैं उस ब्रह्म का वर्णन करूँ तो कैसे करूँ जिसके बारे में आज तक मैं ठीक से समझ नहीं पाया हूँ और न ही कोई उसके बारे में ठीक से बता पाया है। मैं तो यही मानता हूँ कि जो खिला हुआ है वह भी, और जो नहीं खिला है वह भी ईश्वर ही है। जिसका कोई रंग नहीं है जिसका कोई रूप नहीं है, दोनों ही ईश्वर के स्वरूप हैं। मेरा इतना सामर्थ्य कहाँ कि मैं उसका वर्णन कर पाऊँ। वह चंद्र नहीं है, सूर्य नहीं है। रात भी नहीं है और दिवस भी नहीं है, न ही वह धरती है और न आकाश, कर्म भी नहीं और अकर्म भी नहीं है, शुभ-अशुभ वह नहीं है, ऐसे में उसका वर्णन मैं कैसे करूँ? न वह शीत में है और न ही

उष्ण में है। न वायु में है न द्रव में है। कामना और कुटिलता में भी वह नहीं है। न योग में है और न भोग में। जिसमें कोई रोग (दोष) नहीं है। मैं तो यही कहता हूँ कि जो सत्य रूप है वही राम है। वह ऐसा राम है जो निरंजन, निराकार, निर्लिप्त, निर्विकार और निसासी (इच्छाओं से परे) है। ऐसे राम का जब कोई साकार रूप तलाशता है, तो उसे देखकर मुझे हँसी आती है। जहाँ आकाश, धूल, धूप, हवा और पानी नहीं है, जिसे सगुण और निर्गुण नहीं कहा जा सकता। इसलिए तुम चतुराईपूर्ण बात करो। जब तक हम कामनाओं से मुक्त नहीं होते हैं तब तक उस ईश्वर को पाना भी मुश्किल है और एक बार जब वह मिल जाएगा तो इन सारी कामनाओं के पाश से हम मुक्त हो पाएँगे।

विशेष

1. कवि ईश्वर को सर्वोपरि बताते हैं। हम कितने भी बुद्धिमान या जानकार क्यों न हों, किंतु उस परमात्मा से बढ़कर कभी नहीं हो सकते। अत: अहंकार करने से कोई लाभ नहीं।
2. निरलेपी, निराकार, शब्दों से निर्गुण ब्रह्म का बोध होता है और यह पता भी चलता है कि रैदास निर्गुणोपासक थे।
3. संत कवि इस बात पर हमें सचेत करते हैं कि ईश्वर या राम का नाम जपने से हम मायारूपी बंधन से मुक्त हो सकते हैं।
4. विरुद्धार्थक शब्दों जैसे कर्म-अकर्म, धरती-आकाश, शुभ-अशुभ आदि के माध्यम से ईश्वर के अस्तित्व को समझाया गया है।

बोध प्रश्न

- साधक को किन कामनाओं से मुक्त होना चाहिए?

[2]

अब मेरी बूडी रे भाई, तातैं चढे लोक बडाई।
अति अहंकार उर मांही, सत-रज-तम तामे रह्यौं अरुझाई।
करमन बझि पर्यो, नहिं सूझे, स्वामी नांव भुलाई।
हम मानौं गुनि जोग, सुनि जुगता महामूरख रे भाई॥
हम मानौं सूर सकल विधि त्यागी, ममता नहीं मिटाई।
मानो अखिल सुन्न मन सोध्यो, सब चेतनि सुधि पाई॥
ग्यांन ध्यांन सबही हम जानौ, बूझौं कौन सौं जाई।
हम जानौं प्रेम, प्रेम रस जानौं, नौ विधि भगति कराई॥
स्वांग देखि सबही जब डहक्यो आपन पौरि बधाई।
यह तौ स्वांग सांच नहिं जानै लोगनि यह भरमाई॥

स्वयं रूप भेखी जब पहरी, बोलितब सुधि आई।
ऐसी भगति हमारी संतों, प्रभुतो इहै बडाई॥
आपन अनत और नहिं मानत, तातें मूल गंवाई।
भनै रैदास उदास ताहिं ते, अब कछु मो पै कर्यो न जाई॥
आपा खोए भगति होत है, तब रहै अंतरि उरझाई ।

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

शब्दार्थ : बूडी = डूबना, तातैं = उससे, उर = हृदय, माहीं = में, सत-रज-तम = तीन प्रकार के गुण, तामें = उसमें, रह्यौं = रहा, अरुझाई = उलझना, करमन = कर्म, बझि = फँसना, पर्यो = पड़ना, नांव = नाम, जोग = योग, जुगता = योगी, सकल विधि = हर प्रकार से, सोध्यो = खोजना, चेतन सुधि पाई = इंद्रिय जागृत होना, बूझौ = समझना, नौ-विधि = नवधा भक्ति, स्वांग = नाटक, डहक्यो = विलाप करना, पौरि = द्वार/दहलीज, भरमाई = भ्रमित करना, भेखी = देखना, पहरी = प्रहरी (अंतर्मन), इहै = यही, आपन = अपने आप को, अनत = अन्य, मानत = मानना, तातें = स्वयं, गंवाई = गंवाना, भनै = कहना, मो पै = मुझसे, आपा = अहंकार, भगति = भक्ति, अंतरि = अंतर्मन, उरझाई = उलझना/डूबना।

संदर्भ : उपर्युक्त पद के समान।

प्रसंग : निर्गुण धारा के कवि रैदास अपने पदों में समाज के हित से संबंधित विचारों को व्यक्त करते हैं। उनकी रचनाएँ मानवीय भावना से ओत-प्रोत हैं। उन्होंने इस पद में निर्गुण भक्ति का निरूपण करते हुए कहा है कि समस्त कामनाओं को त्यागने पर निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। वे साधक से संसार के मोह से छुटकारा पाने का आग्रह करते हैं।

व्याख्या : रैदास कहते हैं कि अरे भाई, ऐसा लग रहा है कि अब मेरी नाव डूबने वाली है क्योंकि संसार के प्रति मेरा मोह बढ़ता जा रहा है। मन अहंकार से भरा हुआ है। तीन प्रकार के गुण माने जाने वाले सतो गुण, रजो गुण और तमो गुण में हम उलझते जा रहे हैं। कर्म करने में इतने उलझ गए हैं कि हम ईश्वर का नाम लेना भी भूल गए हैं। किसी जोगी की बातों में आकर हमने योग को माना और उसी में उलझ गए, जो बडी मूर्खता थी। इतना ही नहीं। आगे रैदास कहते हैं कि हमने अपने आप को शूरवीर मान लिया था। ऐसा लग रहा है कि हमने सभी कुछ त्याग दिया है, किंतु पता चला कि अभी तक हमारे अंदर की ममता नहीं मिट पाई। ऐसा लग रहा था मानो हम शून्य में ही खोज रहे थे उस ईश्वर को और सारी इंद्रियाँ जागृत हो गईं थीं।

ज्ञान और ध्यान सब हम जानते हैं, यह किसे समझ में आएगा। हम प्रेम जानते हैं। प्रेम से उत्पन्न रसानंद को जानते हैं। नौ प्रकार की भक्ति (नवधा भक्ति) करते हैं। इस नाटक को देख जब विलाप करने लगे तो अपने द्वार पर आए हैं। अर्थात अपने अंतर्मन में झाँकना आरंभ किया है। हम अब समझ गए हैं कि यहाँ जो कुछ भी हम कर रहे हैं वह सब केवल नाटक है। हम भ्रम में थे। जब अपने अंतर्मन में झाँका, तब होश आया। रैदास कहते हैं, हे संतो! ईश्वर से हमारी ऐसी ही भक्ति बडाई देने वाली है। अपने सिवा हमने कभी दूसरों को नहीं माना। मन के इसी अहंकार के कारण हम स्वयं को गँवा देते हैं। इन तमाम बातों से उदास होकर रैदास कहते हैं कि अब मुझसे कुछ नहीं किया जा रहा है। मन के अंदर जो अहंकार समाहित है, पहले उससे मुक्ति पानी है, और तभी सच्ची भक्ति कर सकते हैं। ऐसा करने पर मनुष्य अपने अंतर्मन से जुडकर ईश्वर की तलाश इधर-उधर न करते हुए मन में ही तलाशने का प्रयास कर सकते हैं।

विशेष

1. कवि ईश्वर को सर्वोपरि बताते हैं। डूबने वाली नैया को भी ईश्वर बचा लेते हैं यदि मन में सच्ची श्रद्धा और आस्था हो।
2. भोग-जोग, त्याग, ममता आदि माया के रूप हैं। इनके जाल से मुक्ति पाना आवश्यक है।
3. ईश्वर को बाह्य वस्तुओं में खोजने से अच्छा है उसे अपने अंतर्मन में ढूँढ़ने का प्रयास करें। कबीर भी इसी प्रकार कहते हैं- मोको कहाँ ढूँढ़ै बन्दे, मैं तो तेरे पास मे।/ ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।/ ना तो कोना क्रिया-कर्म में, नहीं योग बैराग में।/खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल-भर की तलास में।/ कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में।
4. कवि का संदेश है कि भक्ति का स्वांग न रचें बल्कि सच्ची भक्ति करें।
5. नवधा भक्ति : श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन

बोध प्रश्न

- नवधा भक्ति किसे कहते हैं?

[3]

अब मैं हार्यो रे भाई।
थकित भयो सब हाल चाल तें, लोक न वेद बडाई॥
थकित भयो गायन अरु नाचन, थाकी सेवा पूजा।
काम-क्रोध तैं देह थकित भई, कहौं कहां लौ दूजा॥
राम जन होऊँ, नहिं भगत कहाऊँ, चरन पखारूँ न देवा।

जोइ-जोइ करौं उलटि मोहिं बांधै, तातैं निकट न देवा॥
पहिले ग्यांन का किया चांदना पाछै दीया बुझाई।
सुन्न सहज मैं दोऊ त्यागै, रामं न कहौ खुदाई॥
दूरि बसै खटकरम सकल अरु, दूरिउ कीण्हे सेऊ।
ग्यांन-ध्यान दूरि दौ कीन्हें दूरिउ छाडे तेऊ।
पांचौ थकित भये हैं जहं-तहं, जहं-तहं थिति पाई।
जा करनि मैं दोरयो फिरतो, सो अब घट में आई॥
पांचो मेरी सखी सहेली, तिन निधि दई दिखाई।
अब मन फूलि भयौ जग महियां, आप में उलटि समाई।
चलत-चलत मेरो मन थाक्यो, मो पै चल्यो न जाई।
साईं सहज मिल्यो, सोई सनमुख, कह रैदास बताई।

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए

शब्दार्थ : हारयो = हार जाना, थकित = थक जाना, गायन = गाना/नाम संकीर्तन करना, नाचना = नृत्य करना, थाकी = थक जाना, भगत = भक्त, भेंवा = सेवा, पहिले = पहले, ग्यांन = ज्ञान, सुन्न = शून्य, दोऊ = दोनों, खटकरम = षट्क्रम, सकल = सभी, अरु = और, दूरिउ = दूर करना, जा कारनि = जिस कारण से, दौरयो- फिरतो = दौडना-फिरना, निधि = संपत्ति, फूलि भयो = मन में संतोष या आनंद होना, उलटि = उल्टा होना, मो पै चल्यो न जाई = मुझसे चला नहीं जाएगा, सनमुख = शून्य समाधि, अंतरमन में।

संदर्भ : उपर्युक्त पद के समान।

प्रसंग : निर्गुण धारा के कवि रैदास अपने पदों में समाज के हित से संबंधित विचारों को व्यक्त करते हैं। उनकी रचनाएँ मानवीय भावना से ओत-प्रोत हैं। उन्होंने अपने इस पद में ईश्वर भक्ति हेतु किए गए प्रयास का वर्णन किया है।

व्याख्या : संत कवि रैदास उदास होकर कहते हैं कि अरे भाई, अब मैं हार गया हूँ। क्योंकि, ईश्वर को पाने के लिए मैं ने जो-जो प्रयास किए हैं, वे सब विफल हो गए हैं। ईश्वर की भक्ति पाने के लिए मैंने क्या-क्या नहीं किया। कितने ही नियम-कानून और प्रथाओं का मैंने पालन किया है। इस मार्ग में अग्रसर होने के लिए संतों द्वारा जो नियम बनाए गए हैं, उन पर चलते-चलते मैं अब

हार गया हूँ। मैं लोक और वेद के चाल-चलन को देखकर थक सा गया हूँ। नवधा भक्ति में उपासना की जो प्रक्रिया बताई गई है जिसमें नाच-गाना शामिल है, मैं भी गाते-नाचते अब थक गया हूँ। ईश्वर की सेवा और पूजा करते थक गया हूँ। काम-क्रोध से भी देह थक गई है। अब और मैं क्या-क्या स्वांग रचूँ। कहाँ तक दूसरों के कहे पर चलता रहूँ। न मैं राम का हो पा रहा हूँ और न ही सच्चा भक्त कहला पा रहा हूँ। मैं न देवताओं के चरण ही प्रक्षालित (धोना) कर पा रहा हूँ। ईश्वर की भक्ति पाने और राम का भक्त कहलाने हेतु मैं जो भी प्रयास करता हूँ उसका उलटा ही प्रभाव पड़ता है। लेकिन वह राम, जिसके द्वार पर कोई भेद-भाव नहीं है, उसने पहले ज्ञान का प्रकाश किया और फिर अज्ञान का दीपक बुझा दिया। शून्य सहज समाधि में हमने राम और खुदा दोनों को ही त्याग दिया है। वैसे भी हम षटकर्म की पहुँच से बाहर थे, अब और भी दूर हो गये हैं। ज्ञान और ध्यान से भी दूर ही थे। पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ थक गई हैं, और कहीं-कहीं एक सहारा मिला है। जिस कारण मैं दौडता-फिरता था, वही अब शरीर (घट) में आ बसा है, जिससे मुझे एक नई निधि मिली है। अब मन एकदम प्रसन्न हो गया है और जग महकने लगा है, और मैं अपने में ही समाने लगा हूँ। चलते-चलते मेरा मन थक गया है। अब मुझसे चला नहीं जा रहा है। रैदास कहते हैं कि ईश्वर की अनुभूति उन्हें आत्मसाक्षात्कार के रूप में सहज रूप ही गई है।

विशेष

1. कवि ईश्वर को सर्वोपरि बताते हैं। उसे पाने के लिए हम अनेक प्रयास करते हैं, लेकिन मन से नहीं करते हैं। रैदास कहते हैं कि ईश्वर दर्शन के लिए मैंने अनेक प्रयास करते-करते थक गए हैं। वे कहते हैं कि इस प्रकार के नाकामयाब प्रयास करने से क्या होगा, अंदर के अहंकार को जब तक नहीं त्यागेंगे, कुछ नहीं होने वाला है।
2. षटकर्म (खटकरम) : नेति : नासिका मार्ग की सफाई, धौति : आहारनाल की सफाई, नौलि : पेट के अंगों को मजबूत करना, बस्ति : बडी आंत की सफाई, कपालभाति : मस्तिष्क के सामने के क्षेत्र की सफाई, त्राटक : तीव्र एकाग्रता विकसित करने वाले एक बिंदु की टकटकी। हठयोग साधना के अंतर्गत आता है जिसमें शरीर की यौगिक शुद्धि की जाती है।
3. पांचौ : यहाँ पाँचों से तात्पर्य है- वेद को प्रमाण मानना, किसी ईश्वर को कर्ता कहना, स्नान (गंगादि) से धर्म चाहना, जाति की बात का अभिमान करना, तथा पाप नष्ट करने के लिए उपवास आदि करना। अर्थात, कबीर की भाँति रैदास भी इसी बात पर बल देते हैं कि ईश्वर योग और कर्मकाण्ड में नहीं बल्कि भक्तों के हृदय में वास करते हैं।

बोध प्रश्न

- षटकर्म से क्या अभिप्राय हैं?

[4]

अब हम खूब वतन घर पाया, ऊंचा खेर सदा मन भाया।
बेगमपुरा सहर का नाऊं, दु:ख अंदेस नहीं तिहिं ठाऊं॥
ना तसबीस, खिराजु न मालू, खौफ न खता न तरसु जवालु।
काइमु दाइमु सदा पातिसाही, दाम न, साम एक सा आही।
आवादानु सदा मसहूर, ऊहा गनी बसहिं मामूर।
तिउं-तिउं सैर करहिं जिउ भावै, हरम महल मोहिं अटकावै।
कह रैदास खलास चमारा, जो उस सहर सों मीत हमारा।

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए

शब्दार्थ : मन भाया = मन को अच्छा लगना/पसंद आना, खेर = सबका ध्यान रखना, कुशल = मंगल की कामना करना, सहर = शहर, नाऊं = नाम, दुख = चिंता/फिकर, तिहिं = वहाँ, तसबीस = सुमिरिनी, माला, जपमाला, खिराजु = व्यापार या मालगुजारी की चिंता करना, मालू = माल, खौफ = भय, खता = गलती, दोष, तरसु = तरसना, जवालु = अवनति, उतार, ह्रास, पातिसाही = पादशाही, रास्ता दिखाना, मार्गदर्शन, अंदेस = संदेह, ठाऊं = ग्राम, गांव, ऊहां = वहाँ, मामूर = माबूद

संदर्भ : उपर्युक्त पद के समान।

प्रसंग : तत्कालीन विपरीत परिस्थितियों से दुखी होकर रैदास एक ऐसे शहर की कल्पना करते हैं जिसका नाम उन्होंने रखा है बेगमपुरा जहाँ पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होगा। जहाँ ब्राह्मण और शूद्र के बीच मनमुटाव नहीं होगा। इस पद के माध्यम से रैदास के उच्च विचार तथा मानवीय मूल्य प्रकट हुए हैं।

व्याख्या : संत रैदास इस पद में कहते हैं कि जिस वतन में मैं रहता हूँ उसका नाम 'बेगमपुरा' है। अर्थात, रैदास ने अपनी आत्मा की अनुभूति को बेगमपुरा की संज्ञा दी है। आगे वे कहते हैं कि यह एक ऐसा वतन है जहाँ कोई दुख नहीं है, कोई चिंता नहीं है, कोई घबराहट नहीं है। वहाँ किसी को कोई पीड़ा नहीं है। वहाँ कोई जायदाद नहीं है और न ही कोई कर लगाता है। वहाँ एक ऐसी सत्ता है जो शाश्वत है। न ही कोई श्रेणी-भेद है और कोई मतभेद। ऐसे एक खुशहाल शहर में हम वास करते हैं जो हमारा मित्र भी है। प्रस्तुत पद में रैदास ने परमात्मा से मिलाप को इंगित किया है। वे ऐसी स्थिति मेंपहुँचे हैं जहाँ कोई पीड़ा या वेदना या चिंता उन्हें बेहाल नहीं कर सकती है।

वहाँ शाश्वत रूपी प्रभु उनके साथ हैं, इसलिए आनंद ही आनंद है। रैदास कहते हैं कि जो उस शहर में रहता है वही हमारा मित्र है।

विशेष

1. कवि ने मानव निर्मित मोह माया रूपी समस्त साधनों से दूर सिर्फ अपने और ईश्वर के बीच के संबंध से प्राप्त होने वाले आनंद की ओर संकेत किया है।
2. कवि ऐसे शहर की कल्पना करते हैं जहाँ मानवीय गुण सर्वोपरि हों और सभी एक समान हों।
3. अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है।
4. संत रैदास दुखी हैं, उनके दुख का कारण शहर यानी राज्य का अमानवीय व शोषणकारी चरित्र है। इसके निवारण हेतु वे बेगमपुरा की कल्पना करते हैं। ऐसी कल्पना का उदय रैदास जैसे जागरूक, जिम्मेदार, संवेदनशील, व विवेकशील नागरिक के जहन में होना स्वाभाविक है। बेगमपुरा की अवधारणा किसी बनी-बनाई व्यवस्था से पलायन नहीं, बल्कि नई व्यवस्था की अवधारणा जैसा है।
5. बेगमपुरा : केवल एक शहर या देश की भौगोलिक सीमाओं की कल्पना मात्र नहीं बल्कि इसका संबंध इस बात से है कि राज्य के अंदर लोगों के जीवन कैसा होगा।
6. संत रैदास एक ऐसे देश की या शहर की कल्पना करते हैं जहाँ सभी को अन्न मिले। इसलिए वे कहते हैं- "ऐसा चाहो राज्य में, जहाँ मिलै सभी को अन्न।/ छोट-बडो सब सम बसै, रैदास रहे प्रसन्न॥
7. रैदास की बेगमपुरा की अवधारणा सामूहिक कल्याण की अवधारणा का ही रूप है। अत: आज भी रैदास के पद अत्यंत प्रासंगिक है।

बोध प्रश्न

- बेगमपुरा किसे कहते हैं?

[5]

अब कछु मरम विचारा हो हरि।
आदि मध्य अवसान, राम बिन, कोई न करै निवारा हो हरि।
जल तैं, पंक तैं अम्रित, जल जलहिं सुध होइ जैसे।
ऐसे करम धरम जग बांध्यो, छूटै तुम बिन कैसे हो हरि।
जप तप विधि निषेध करुनामय पाप पुन्न दोउ माया।
ऐसे मोहि तन मन गति बिमुख, जनम जनम डहकाया हो हरि।
ताड़न, छेदन, त्रासन, खेदन, बहुविधि कर लेइ उपाई।
लोन खड़ी संजोग बिना जस, कनक कलंक न जाई हो हरि।

भनै रैदास कठिन कलि केवल, कहा उपाइ अब कीजै।

बव बूडात भयभीत जगत जन, कर अवलंबन दीजै हो हरि।

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए

शब्दार्थ : मरम = दया, विचार = विचार करना, दया या कृपा करना, आदि मध्य अवसान = बाल्य, युवावस्था और अंतकाल, निवारा = निवारण करना, दुख को हरना या दूर करना, जल तैं पंक = जल में कीचड का होना, पंक तैं अम्रित = कीचड वाले जल में ही अमृत का होना, करुनामय = करुणामय, पुन्न = पुण्य, दोउ = दोनों, मोहि = मुझे, बिमुख = विमुख होना, कर लेई = करना, बहुविधि = अनेक प्रकार के प्रयास, लोन खडी = लावण्यवती सुंदरी (माया) की उपस्थिति, संजोग = संयोग, कनक = सोना, कठिन कलि = कलियुग की कठिन समस्या, उपाइ = उपाय, कीजै = करना, कर अवलंबन = हाथों का सहारा देना

संदर्भ : उपर्युक्त पद के समान।

प्रसंग : रैदास अपने आराध्य निर्गुण राम से मिन्नतें मांगते हैं कि कुछ तो मेरे ऊपर दया करो। तुम्हें पाने के लिए मैंने क्या कुछ नहीं किया है।

व्याख्या : इस पद में संत कवि रैदास कहते हैं कि हे ईश्वर! अब कुछ दया करो। राम बिना जीवन-मरण का निवारण करने वाला कोई नहीं है। जल से कीचड़ और कीचड़ से जल, पानी पानी से ही शुद्ध होता है। ऐसे धर्म और कर्म में इस संसार ने बाँध दिया है, जो तुम्हारे बिना छूट नहीं सकता। हे करुणामय! जप-तप, करणीय-अकरणीय और पाप-पुण्य ये सभी तो माया के रूप हैं। मेरे लिए तुम तन-मन से विमुख रहे, अर्थात तुम्हारी कृपा दृष्टि मेरे ऊपर नहीं बरसी। जन्म-जन्म से तुमने मुझे रुलाया है। ताड़ना, छेदना, त्रास देना, खेदना, आदि विभिन्न प्रकार से उपाय कर लिया। ऐसा लग रहा है जैसे कोई माया रूपी सुंदरी खड़ी है, जिससे संयोग न हुआ हो। स्वर्ण रूपी शरीर से जो विकार हैं, समाप्त नहीं हो रहे हैं। रैदास कहते हैं इस कठिन कलियुग में अब क्या उपाय किया जाय। इस संसार में लोग भयभीत होकर डूब रहे हैं। हे हरि! अपने हाथ का सहारा दीजिए।

विशेष

1. कवि ईश्वर को सर्वोपरि बताते हुए उनसे प्रार्थना करते हैं कि उनकी रक्षा करें। माया-मोह में फँसे इस संसार रूपी सागर से उन्हें पार कराएँ।

2. इस संसार में यह मानव शरीर पाकर इतना समय बीत चुका है, लेकिन फिर भी भक्ति में लीन होने के मार्ग से वंचित मानव को अपने करों से आश्रय देने की प्रार्थना करते हैं।

बोध प्रश्न

- माया के क्या-क्या रूप हैं?

7.3.2 रैदास के पदों में अभिव्यक्त भक्ति एवं मानवीय-स्वर

निर्गुण संत कवियों ने अपनी भक्ति साधना में मानव के चरम कल्याणभाव को प्रमुखता दी है। रैदास भी अपनी रचनाओं में संपूर्ण मानव-जाति के कल्याण भावना को इंगित करते हैं। वे कहते हैं कि संपन्न वही है जिसके पास ईश्वर का नाम है। मानवीय आस्था के स्वर इस वाणी से सशक्त होते हैं। सामाजिक भेद-भाव और ऊंच-नीच को समाप्त कर परस्पर प्रेम, भाईचारे और सौहार्द्र का जो संदेश दिया वह आज भी उद्बोधक और प्रेरणादयक है। संत रविदास ने जो कुछ किया वह समाज की भलाई के लिए किया। उनका दर्शन सीधा-सादा था जिसे अनपढ़ जनता भी आसानी से समझ सकती थी। मानवतावादी स्वर रैदास के अंतर्मन विद्यमान था। उन्होंने अनेक पदों में अपनी शोषित और दलित जाति को याद किया है। उन्होंने कहा है कि उच्च कुल में जन्म लेने से मानव ऊँचा नहीं होता। अच्छे कर्म करने से ही मानव बडा या श्रेष्ठ बनता है। प्रत्येक मानव मात्र की एकता, स्वतंत्रता, भाई चारे आदि के लिए रैदास ने आवाज उठायी। दार्शनिक सिद्धांतों को सरल भाषा में जनसामान्य के सामने रखा। समाज सुधार के लिए सत्य का होना रैदास ने अनिवार्य माना। उनका मत था कि मनुष्य जन्म से ही शूद्र नहीं होता। वे अनेक स्थान पर अपने अप को ओछा या हीन बताते हैं। लेकिन संत कबीर ने "साधना में रविदास संत" कहकर उनकी महानता को प्रमाणित किया है। उनका निश्चित मत था कि अपने बुरे कर्मों से ही आदमी बुरा होता है। जाति से बुरा या नीच नहीं होता। उनके अनुसार जाति कर्म के साथ होना चाहिए न कि वंश-परंपरा से। रैदास का मानवीय स्वर आज के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक लगता है क्योंकि आज के समाज ने अपने लगभग सभी अच्छे गुणों को छोड चुका है। उनका साहित्य मूलत: साधनापरक विचारों से ओत-प्रोत है और समाज को नई दिशा में मोडने में सफल प्रयास का एक माध्यम सिद्ध हो चुका है। रैदास के विचार आदि संतों की परंपरा या बुद्ध का मानववाद से सामान्य होते हुए भी विचारों में अलग है। उनकी मानव प्रेम-भक्ति का मूल आधार अहंकार निवृत्ति ही है।

रैदास के राम नामदेव और कबीर की तरह निर्गुण, निराकार, निश्चल, निर्भय, अनुपम, अगम, अगोचर, निर्विकार एवं अविनाशी है। वह परम सत्य और अनिर्वचनीय है। ऐसे में उनका वर्णन कोई कैसे करे? इतना अवश्य है कि बाहर-भीतर, घट-घट में सर्वत्र व्याप्त है। हम साधारण मानव उसे पहचान नहीं पाते हैं। वह अक्षत है और जीवात्मा के रूप में प्रत्येक प्राणी में समाया हुआ है। वह हमारे अंत:करण में समाया हुआ है। राम के बारे में उन्होंने लिखा है- परचै रांम रमै

जै कोई।/ ***/ राम जन हूँ उंन भगत कहाऊँ।/ **/ भाई रे राम कहाँ मोहि बताओ, सति रांम ताकै निकट न आवो। वे न केवल राम का नाम जापते हैं बल्कि नाम-स्मरण के साथ निष्काम, निश्चल और निर्मम भक्ति पर भी बल देते हैं। नामस्मरण की महत्ता पर उनका एक पद द्रष्टव्य है- नामु तेरो आरती भजनु मुरारे।/ हरि के नाम बिनु झूटःए सगल पसारे।/ नामु तेरो आसनो नामु तेरो उरसा, नामु तेरा केसरो ले छिटका रे।/ नामु तेरा अंभुला नामु तेरो चंदनो, घसि जपे नामु ले तुझहि के चारे।/ नामु तेरा डीवा नामु तेरो बाती नामु तेरो तेल ले माहि पसारे।/ नामु तेरे की जोति लगाई भउओ उजिआरा भवन सगला रे॥/ नामु तेरो तागा नामु फूल माला, भार अठारह सगल जूठा रे।

रैदास की भक्ति प्रेम पर आधारित है। अहंकार निवृत्ति का उसमें संदेश निहित है। उनका मानना और कहना है कि ब्रह्म की प्राप्ति के लिए सभी ओर से ध्यान हटाकर, समूची वृत्तियाँ उस पर केंद्रित कर देनी होती है। उस लक्ष्य को पाने के लिए अपने आप को भूलना पडता है। आपा खोयां भगति होत है, तब रहै अंतरि उरझाई।/ जो जन ऐसा नहीं करता, वह संसार में सब कुछ गँवा देता है।

भक्ति की राह पर अभिमान, मिथ्याभिमान, बडाई आदि को बाधक माना है। उनका विचार है कि जिस आत्मा में ब्रह्म का वास होता है, उसमें अहंकार नहीं होता। राम नाम की प्राप्ति मात्र के लिए सत्संग जरूरी है। काम, मोह, परनारी संग, लोभ, चंचल मन, क्रोध, मद, माया, अहंकार आदि भक्ति के अवरोधक हैं। बल्कि उनकी प्रेम भक्ति में तन्मयता, सरसता, समर्पण, आत्म-निवेदन, आत्म-ग्लानि और एकांतिकता विद्यमान है। इसलिए वे कहते हैं- जो तुम तौरौ रांममैं नहीं तोरौं।/ तुम सौं तोरि कवन सूँ जोरौं/ तीरथ-ब्रत का न करौं अंदेसा, तुम्हारे-चरन कवल का भरोसा।/ जहां जहां जाऊं तहां तुम्हारी पूजा, तुम्ह सा देव अवर नहीं दूजा।/ मैं हर प्रीति सबनि सूं तोरी, सब स्यौ तोरि तुम्हैं स्यूं जोरि।/ सब परहरि मैं तुम्हारी आसा, मन क्रम वचन कहै रैदासा।

कुलमिलाकर यह देखा जा सकता है कि रैदास के पदों में अभिव्यक्ति में कहीं न कहीं कबीर, नामदेव आदि संतों की परंपरा अवश्य दिखाई देती है।

बोध प्रश्न

- भक्ति के अवरोध क्या है?

7.3.3 रैदास की प्रासंगिकता

प्रिय छात्रो! रैदास जिन्हें रविदास भी कहा जाता है, वास्तव में एक आम आदमी की आवाज की अनुगूंज है। उन्होंने आम आदमी के सरोकारों से जुड़ी कविता का लेखन कर सामान्य

जनता में भी ईश्वर के प्रति भक्ति के मार्ग को प्रशस्त किया है। यहाँ तक कि अपने को निम्न जाति का चमार कहने में भी उन्होंने असंकोच नहीं किया है, क्योंकि उन्होंने कर्म को महत्व दिया है। इसलिए अपने एक पद में वे एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जिसका नाम बेगमपुरा है, जहाँ सभी समान हैं। इतने वर्षों पूर्व रैदास ने ऐसे समाज की अवधारणा प्रस्तुत की है, किंतु आज भी समाज में वैसी परिस्थितियाँ व्याप्त हैं जैसे रैदास के समय हुआ करता था। बेगमपुरा की अवधारणा समाज व्यवस्था से पलायन नहीं बल्कि नूतन समाज की स्थापना का आरंभ को दर्शाता है। अर्थात संत कवि रैदास समाज में रहने वाले प्रत्येक जीव की समानता चाहते थे। ऊंच- नीच, जातीय भेदभाव आदि से मुक्त समाज की वे कल्पना करते हैं। आज के हालात रैदास के हालात से ज्यादा अलग नहीं है। आज भी आम आदमी बुरी तरह से त्रस्त है। उसका मूल्य आज भी समाज में नहीं है और न ही आम आदमी की कोई चिंता ही करता है। स्वार्थ ने समाज और लोगों की मानसिकता को घेर रखा है। स्वांत: सुखाय वाले इस समाज में पर-सुखाय की कल्पना कौन करता है। व्यष्टि सुख से बढ़कर समष्टि सुख की कामना या लोकमंगल की कामना रैदास बानी की विशेषता है। रैदास अपनी आजीविका के लिए परंपरागत जातीय पेशे से जीवन की जरूरतों को पूरा कर स्वाभिमान से जीवनयापन करते हैं। उनका चिंतन दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक लगता है जितना उनके काल में रहा होगा। उनका लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना नहीं, बल्कि दुख पैदा करने वाली तत्कालीन परिस्थितियों से निजात पाना है। क्योंकि ये परिस्थितियाँ जीवनयापन और प्रगति के मार्ग में बाधक हैं। कुलमिलाकर यह कहा जा सकता है कि रैदास का चिंतन केवल अपने तक ही सीमित न होकर समस्त मानव-समुदाय के लिए है। आज हमें अधिक-से-अधिक रैदास की रचनाओं को आत्मसात कर अपने जीवन में कम से कम उनके कथनों का अनुपालन करने का प्रयास करें। रैदास के युग में धर्म जाति के नाम पर मुठभेड था, आज के समाज में भी हिंदू-मुसलमान के बीच के मतभेद समाप्त नहीं हुए हैं, बल्कि दिन-ब-दिन बढ़ रहा है। स्त्री के प्रति शोषण, जानवरों के प्रति अत्याचार, ऊंच-नीच का भेदभाव, सामाजिक कुरीतियाँ अदि तमाम दृश्य हमारे समाज में आज भी व्याप्त हैं जिनकी ओर रैदास ने इतने वर्ष पहले ही इशारा कर दिया था। इसलिए आज भी रैदास प्रासंगिक हैं क्योंकि उनकी रचनाएँ समाज को सही दिशा दिखाते हैं।

7.4 पाठ सार

भारत में उत्तर भारत में कबीर, रैदास, नानक और दादूदयाल आदि संत कवियों के माध्यम से एक विराट सांस्कृतिक आंदोलन उठ खडा हुआ था जिसमें धार्मिक रूढियोम, सामाजिक विगलित मान्यताओं, जातिवाद, संप्रदायवाद, आर्थिक विषमता, शोषण आदि अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई गई थी। इन तमाम विपरीत परिस्थितियों से सामान्य

जनता को उभारने का प्रयास किया गया था जिसे भक्तियुग कहा जाता है। दक्षिण में पहले से ही यह लहर चल पड़ी थी। रामानुजाचार्य, बसवेशवर आदि कवियों ने दक्षिण में भक्ति और समानता की लहर की पुष्टि की थी। रैदास, सगुणोपासना का खंडन करते हुए कबीर पंथी बनकर कबीर के मार्ग को अपनाते हैं और कबीर और नानकदेव की तरह समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास करते हैं। कबीर के स्वर में जहाँ आक्रोश दिखता है, रैदास संयम से काम लेते हैं। कबीर की ही भांति उन्होंने अपने पारंपरिक पेशे को स्वीकृत किया था और उसी काम से अपना जीवनयापन करते थे। उन्हें अपने आप को चमार जाति का कहने में कोई दुख नहीं था। बल्कि वे अपने कर्म के प्रति पूरी तरह से समर्पित थे। कर्तव्यनिष्ठा, दिए गए वचन के प्रति वे प्रतिबद्ध थे। उनका उच्च कोटि का विचार आज भी मानव के अंदर उच्च कोटि के विचार उत्पन्न करने में सक्षम है। समाज में सभी प्रकार की भिन्नताओं से मुक्त होकर समानता स्थापित करने के प्रति रैदास चिंतित थे। उन्होंने ऐसे शहर या देश की कल्पना की थी, जिसे उन्होंने बेगमपुरा की संज्ञा दी, जहाँ पर सभी एक साथ मिलजुलकर, भेदभाव से युक्त वातावरण में आनंद की अनुभूति करें। ऐसा शहर जहाँ हर किसी को अन्न मिले, कोई भी भूखा न रहे। रैदास के इतने उच्च विचार थे। उनके पदों को अधिक से अधिक आज के समाज में पढ़ने समझने और उसके अनुपालन करने की आवश्यकता है।

7.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. संत रैदास ने ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप की आराधना पर बल दिया है।
2. उन्होंने योग-मार्ग तथा कर्म-कांड दोनों का खंडन किया है।
3. उन्होंने भक्ति को परम प्रेम का पर्याय माना है।
4. उन्होंने एक ऐसे आध्यात्मिक नगर की कल्पना की है जहाँ सांसारिक भेद-भाव न हों तथा ईश्वर की अनुभूति का आनंद सहज प्राप्य हो।

7.6 शब्द संपदा

1. अभिमान = गर्व, घमंड
2. आचरण = व्यवहार
3. परमार्थ = दूसरों के हित की कामना करना
4. पिपीलिका = चींटी
5. पैतृक = परंपरागत रूप से प्रात
6. प्रचारात्मक साहित्य = ऐसा साहित्य जो केवल प्रचार हेतु लिखा या रचा गया हो
7. बहिष्कृत = ठुकराना, बाहर करना, नजर अंदाज करना, दूर हटाना

8. बानी = वाणी, आवाज, स्वर, पुकार

9. रू-ब-रू = समझना, आत्मसात करना

10.वटवृक्ष = बरगद का पेड़

11.सक्षम = समर्थ

7.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. रैदास के पदों के आधार पर रैदास के विचारों को प्रकट कीजिए।
2. रैदास आज भी क्यों प्रासंगिक है? तर्कसंगत विचार प्रस्तुत कीजिए।
3. रैदास के विचारों से क्या आप सहमत हैं? तर्क के साथ टिप्पणी लिखिए।
4. पाठ में संकलित पहले पद का भावार्थ अपने शब्दों में लिखिए।
5. बेगमपुरा से आप क्या समझते हैं? पाठ के आधार पर लिखिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. रैदास के अनुसार सत्य क्या है?
2. रैदास अपने युग से किस प्रकार प्रभावित हुए थे?
3. रैदास किसे साधना मानते हैं?
4. ईश्वर की प्राप्ति रैदास के अनुसार कैसे संभव है?
5. "अब कछु मरम विचारा..........अवलंबन दीजै हो हरि" पद की व्याख्या कीजिए।
6. अब मैं हार्यो रे भाई पद की व्याख्या कीजिए।
7. अब हम खूब वतन घर पाया- में निहित अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
8. अब मेरी भूडी रे भाई- पद का भावार्थ अपने शब्दों में लिखिए।
9. "अखिल खिले" पद में रैदास क्या संदेश देते हैं?
10. रैदास के बारे में आपके क्या विचार हैं? स्पष्ट कीजिए।
11. रैदास को पढ़ने के बाद आप उनके बारे में क्या सोचते हैं? अपने शब्दों में लिखिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए -

1. रैदास को इस नाम से पुकारा जाता है ( )

(अ) राईदास (आ) रविदास (इ) रोईदास (ई) रामदास

2. रैदास के राम है ( )

(अ) सत्य (आ) साधना (इ) योग (ई) भक्ति

3. अखिल खिले का अर्थ है- ( )

(अ) जो अधखिला है (आ) जो पूरी तरह से खिला है (इ) जो नहीं खिला है (ई) कुछ नहीं

4. भनै का अर्थ है ( )

(अ) कृद्ध होना (आ) कहना (इ) निंदा करना (ई) भक्ति करना

II रिक्त स्थानों की पूर्ति -

1. ....त्यागने से ही भक्ति संभव है।

2. ईश्वर का वास.......................में है।

3. बाह्याडंबर, कर्मकांड आदि का रैदास ने ....किया।

4. ....के दर्शन की कामना करते-करते रैदास थक गए हैं।

5. ....प्रकार के कर्म माने गए हैं, जिन्हें षटकर्म कहा गया है।

III. सुमेल कीजिए -

1. खटकरम	चमडे से जूता बनाना
2. बेगमपुरा	रैदास को गुरु मानना
3. निवारा	शहर
4. चमार	षटकर्म
5. नानकदेव	निवारण करना
6. मीराँबाई	निर्गुणोपासक
	ब्राह्मण

7.8 पठनीय पुस्तकें

1. रैदास बानी, संपादक : शुकदेव सिंह
2. रैदास रचनावली : गोविंद रजनीश
3. संत रविदास की निर्गुण भक्ति : मीरा गौतम
4. संत रैदास : कँवल भारती

इकाई 8 : जायसी : नागमती वियोग खंड

रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 मूल पाठ : जायसी : नागमती वियोग खंड
8.3.1 मूल पाठ का सामान्य परिचय
8.3.2 अध्येय पद और विस्तृत व्याख्या
8.3.4 समीक्षात्मक अध्ययन
8.4 पाठ सार
8.5 पाठ की उपलब्धियाँ
8.6 शब्द संपदा
8.7 परीक्षार्थ प्रश्न
8.8 पठनीय पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! मलिक मोहम्मद जायसी ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। विजयदेवनारायण साही उन्हें आत्म-सजग कवि मानते हैं। क्योंकि उनके कहने की शैली में एक तरह का मिठास होता है। यह मिठास ही जायसी का प्रमुख गुण है। उनकी प्रसिद्ध रचना है 'पद्मावत'। जायसी और 'पद्मावत' एक-दूसरे के पर्याय बन चुके हैं। 'पद्मावत' दोहा और चौपाई छंद में लिखी गई है। इसकी भाषा अवधी है। इसमें नायक रतनसेन और नायिका पद्मिनी की प्रेमकथा के माध्यम से प्रेम की साधना का संदेश दिया गया है। जायसी ने कल्पना और इतिहास का समन्वय करते हुए कथा लिखी है। 'नागमती वियोग खंड' में बारहमासा के वर्णन के साथ उन्होंने पति के वियोग में तड़प रही नागमती के वियोग का अद्भुत चित्रण किया है। इस अध्याय में नागमती वियोग खंड के निर्धारित पदों का अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- मलिक मोहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' के नागमती वियोग खंड का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे।
- षट्ऋतु चित्रण के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- विरह की विभिन्न दशाओं को जान सकेंगे।

8.3 मूल पाठ : जायसी : नागमती वियोग खंड

8.3.1 मूल पाठ का सामान्य परिचय

'नागमती वियोग खंड' जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' नामक महाकाव्य का एक खंड है। भारतीय साहित्य शास्त्र में महकाव्य के हो लक्षण गिनाए जाते हैं। उनमें से एक यह भी है कि

महाकाव्य में मुख्य रूप से शृंगार, वीर, शांत रस में से किसी एक रस की योजना तथा गौण रस के रूप में अन्य रसों की योजना होनी चाहिए। इस दृष्टि से जायसी का 'पद्मावत' स्वाभाविक रूप से शृंगार की प्रधानता लेकर चला है, क्योंकि सूफी भावना के अनुकूल जायसी ने अपने काव्य में प्रेम की नितांत भावनात्मक अभिव्यक्ति रखी है। माना जाता है कि जायसी ने 'पद्मावत' की रचना सन् 1540 में की थी। 'पद्मावत' की भाषा अवधी है। प्रस्तुत रचना को रूपक काव्य भी कहा जाता है, क्योंकि इस काव्य में लौकिक प्रेम कथा के माध्यम से अलौकिक भक्ति भावना को संप्रेषित किया गया है। नीचे आपके ज्ञानवर्द्धन के लिए 'पद्मावत' महाकाव्य के चरित्रों तथा उनके प्रतीकात्मक परिचय को भी प्रस्तुत किया जा रहा है। चित्तौड़ शरीर का प्रतीक, राजा रत्नसेन मन का प्रतीक, सिंहलद्वीप हृदय का प्रतीक, पद्मावती बुद्धि का प्रतीक, राघव चेतन शैतान का प्रतीक, अलाउद्दीन माया का प्रतीक, नागमती संसार का प्रतीक, हीरामन तोता गुरु का प्रतीक।

रतनसेन सिंहलदीप का राजा था। उनकी पत्नी थी नागमती। सुग्गा हीरामन के मुख से पद्मिनी की सुंदरता के बारे में जानकार रतनसेन उसे पाने के लिए निकाल जाता है। पति के वियोग में नागमती तड़प उठती है। नागमती की विरह वेदना एक लौकिक कथा विरह कथा है जिसमें षट्ऋतु की योजना है।

8.3.2 अध्येय पद और विस्तृत व्याख्या

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा॥
धूम, साम, धीरे घन धाए। सेत धजा बग-पाँति देखाए॥
खडग-बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुँद-बान बरसहिं घन घोरा॥
ओनइ घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारु मदन हौं घेरी॥
दादुर मोर कोकिला, पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ॥
पुष्प नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह, मंदिर को छाँवा?
अद्रा लाग, लागि भुइँ लेई। मोहिं बिनु पिउ को आदर देई?
जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्ब॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

शब्दार्थ : गाजा = गरजा, दुंद = दुख, धौरे = श्वेत/सफेद, बीज = बिजली, पुख = पुष्प नक्षत्र, गारो = गौरव।

संदर्भ : यह अंश जायसी कृत 'पद्मावत' के नागमती वियोग खंड' से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद से बारहमासा का आरंभ होता है। बारहमासा की परंपरा में सामान्य रूप से आषाढ़ से ही प्रारंभ किया जाता है।

व्याख्या : आषाढ़ शुरू हो चुका है। बादलों ने गर्जन प्रारंभ कर दिया है। धुंधले और सफेद रंग के बादलों से आकाश भर गया है। चारों ओर सफेद बादलों की पंक्ति को देखकर लग रहा था कि मानो बगुलों की पंक्ति हो, जो इस श्वेत पताका के समान लहरा रही हो। आकाश में चमकती हुई बिजली को देखकर लग रहा था कि जैसे तलवारें चमक रहीं हो। वर्षा की तीव्रता को देख के लग रहा था कि जैसे चारों ओर बाण चल रहे हो। आद्रा नक्षत्र के लगते ही बिजली चमकने लगती है और वर्षा प्रारंभ हो जाती है। ऐसे वातावरण में नागमती को पति का वियोग बहुत अखरता है। वह सोचती है कि पति के बिना इस मौसम में मुझे किसके पास से स्नेह मिलेगा? चारों ओर घिरे बादलों को देख कर लग रहा था कि जैसे कामदेव ने अपने सैनिकों को भेजा है। वह मन ही मन अपने प्रियतम से विनती करने लगती है कि हे प्रिय! अब तुम आकर मुझे कामदेव की सेना से बचा लो। मेंढक, कोयल और पपीहे की आवाज अब उसके हृदय को बेधनेवाली लग रही थी। वह सोच रही थी कि न मालूम अब प्राण जिंदा भी रह सकेंगे या रह नहीं सकेंगे। इस पुण्य नक्षत्र में पति के बिना मेरी रक्षा भला कौन कर सकता है? आज के दिन वे स्त्रियाँ सौभाग्यशालिनी हैं जिनके पति उनके पास है। मेरा पति तो मुझ से बहुत दूर है। इसलिए मेरे सभी सभी सुख नष्ट हो गए हैं।

विशेषता : आषाढ़ मास के घनघोर वर्षा का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। बादलों की तुलना श्वेत पताका और बगुलों की पंक्ति के साथ की गई है।

बोध प्रश्न

- पपीहे की आवाज नागमती को हृदय बेधने वाली क्यों लग रही थी?
- बादलों की तुलना किसके साथ की गई है?

सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं बिरह झुरानी।
लाग पुनर्बसु पीउ न देखा। भै बाउरि कहँ कंत सरेखा।
रकत कै आँसु परे भुइँ टूटी। रेंगि चली जनु बीर बहूटी।।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियर भूमि कुसुंभी तन चोला।
हिय हिंडोल जस डोलै मोरा। बिरह झुलाइ देइ झकझोरा।।
जग जल बुड जहाँ लगि ताकी। मोर नाव खेवक बिनु थाकी।।
परबत समुद, अगम बिच, बीहड़ घन बनढँख।
किमि कै भेंटौं कंत तुम्ह? ना मोहि पाँव न पांख।।

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

शब्दार्थ : सरेखा = चतुर, ताकी = देखना, पुनर्वसु = एक नक्षत्र, बुड़ि = डुबना।

संदर्भ : यह अंश जायसी कृत 'पद्मावत' के नागमती वियोग खंड' से उद्धृत है।

प्रसंग : इस पद्यांश में सावन का चित्रण है।

व्याख्या : आषाढ़ मास से भी अधिक वर्षा सावन में होती है। इस मास में नागमती के विरह का दुख और अधिक बढ़ गया है। आर्द्रा नक्षत्र के लगते ही बिजली चमकने लगती है और वर्षा होनी आरंभ हो जाती है। इस समय धरती में हरियाली फैल जाती है और जलाशय भी भर जाते हैं लेकिन नागमती तो विरह में और अधिक कृश हो गई है। वह कहती है पुनर्वसु नक्षत्र के लग जाने पर भी उसका पति अभी तक घर नहीं आया है। उसके दर्शन न पाने के कारण से मेरी दशा पगली समान हो गई है। वह फिर पति को पुकार कर कहती है हे प्रियतम! अब तो अश्लेषा नक्षत्र भी लग गया है अब तो तुम्हें आ ही जाना चाहिए। उसके आँखों में खून के आँसू थे, वे पृथ्वी पर गिरते हुए ऐसे लग रहे थे मानो वीर बहूटियाँ पृथ्वी पर चल रही हों। सभी सखियाँ अपने-अपने हिंडोलों पर अपने पतियों के साथ झूला झूल रहे हैं। पर नागमती के हृदय में तो विरह की वेदना झूला झूल रही है। सब रास्ते उसके लिए आगम बन गए थे। नागमती का हृदय पागल होकर चारों ओर ऐसे चक्कर काट रहा था जैसे पतंगा दीपक के चारों ओर चक्कर काटता है। वह सोचती है सारा संसार वर्षा में डूब गया है ऐसे में अब नाव बनकर कौन इस शरीर को पार लगाएगा। पति के बिना वह निराश्रित हो गई है। अब वह कहने लगी है कि मेरे और प्रियतम के बीच में बाह्य अंतर हो गया है क्योंकि हम दोनों के मार्ग में अनेक पहाड़, अगम समुद्र और बीहड़ जंगल है। इसलिए हे प्रियतम! मैं तुमसे मिलने में पूर्ण रूप से असमर्थ हूँ। मुझ में इतनी शक्ति भी नहीं कि मैं उड़कर तेरे पास तक पहुँच सकूँ।

विशेषता : अश्लेषा नक्षत्र के कारण से कैसे सावन में घनघोर वर्षा होती है इसका मनमोहक चित्रण कवि ने किया है। नागमती की तुलना पतंगे के साथ भी की गई है। नागमती को खून के आँसू बहाते हुए दिखाया गया है और उन आसुओं की तुलना बीरबहूटी के साथ की गई है।

बोध प्रश्न

- प्रस्तुत पंक्तियों में किस मास की वर्णना की गई है?
- नागमती की आसुओं की तुलना किसके साथ की गई है?
- नागमती ने अपनी तुलना किसके साथ की है?

भा भादों दूभर अति भारी। कैसे भौंर रैनी अंधियारी॥
मंदिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिरि फिरि डसा॥
रहौं अकेलि गहे एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी॥
चमक बीजु, घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा॥
बरसै मघा झकोरि झकोरि। मोर दुइ नैन चुवैं ज़स ओरी॥
धनी सुखै भरे भादौं माहाँ। अबहुँ न आएन्हि सीचेन्हि नाहाँ।
पुरबा लाग भूमि जल पूरी। आक जवास भई तस झुरी॥
थल जल भरे अपूर सब, धरनी गगन मिलि एक।
जनी जोबन अवगाह महँ दे बूडट, पिउ! टेक॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

शब्दार्थ : रैनी = रात, दूभर = कठिन, मंदिल = घर, तरासा = भयभीत, मघा और पूर्व = नक्षत्रों के नाम, गरासा = खाना।

संदर्भ : यह अंश जायसी कृत 'पद्मावत' के नागमती वियोग खंड' से उद्धृत है।

प्रसंग : इस पद्यांश में भादो का चित्रण है।

व्याख्या : अब नागमती कहती है कि यह भादों मास तो मेरे लिए और भी अधिक कठिन हो गया है। अंधेरी रातें काटने का प्रयास मैं लगातार कर रही हूँ लेकिन ये रातें कटती ही नहीं है। मेरा सारा घर प्रिय के अभाव में सूना सा लग रहा है। मेरी शैया मुझे नागिन के समान काट खाएगी ऐसा मुझे लग रहा है। मैं अपनी शैया के एक कोने में पड़ी रहती हूँ। सारी रात जागते रहने के कारण मैं आँखों को खोले रखकर ही प्रियतम की प्रतीक्षा करती रहती हूँ। मैं बिजली की चमक और बादलों के गरज को सुनकर डर भी जाती हूँ। विरह मेरे प्राण को लेने के लिए तत्पर है। मघा नक्षत्र आ जाने के कारण से वर्षा की झड़ी लगातार हो रही है। मेरे नेत्रों से भी लगातार आँसुओं की वर्षा हो रही है। मेरे गालों से बहकर जब धरती पर गिर रहे हैं तब ऐसा लग रहा है कि जैसे मेरे आँसुओं के कारण से ही धरती पर बाढ़ आ गया है। वैसे तो पुरवा नक्षत्र के लगने के बाद से ही सारी पृथ्वी जलमग्न हो जाती है और चारों तरफ हरियाली छाने लगती है लेकिन मैं तो आक और जवास के पेड़ की तरह सूख कर काँटा हो गई हूँ। आकाश और पृथ्वी तो वर्षा के माध्यम से संयोग सुख का आनंद लेने में मग्न है लेकिन नागमती का विरह अभी समाप्त नहीं हुआ है। वह अपने पति को पुकार कर कहती है कि मुझे तुम्हारे आश्रय की आवश्यकता है।

विशेषता : नागमती ने अपनी तुलना आक और जवास के पेड़ के साथ की है। भादों मास का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

बोध प्रश्न

- मघा नक्षत्र आ जाने के कारण से क्या शुरू हो चुका है?

लाग कुवार, नीर जग घटा। अबहूँ आउ, कंत! तन लटा॥
तोहि देखे, पिउ! पलुहै कया । उतरा चितु, बहुरि करु मय॥
चित्रा मित्र मीन कर आवा। पपिहा पीउ पुकारत पावा॥
उआ अगस्त, हरित-घन गाजा। तुरय पलानि चढ़े रन राजा॥
स्वाति-बूँद चातक मुख परे। स्मूद सीप मोती सब भरे॥
सरवर सँवरी हंस चलि आए। सारस कुरलहिं, खंजन देखाए॥
भा परगास, काँस बन फूले। कंत न फिरे, बिदेसहि भूले॥
बिरह-हस्ति तन सालै, घाय करै चित चूर।
वेगि आइ, पिउ! बाजहु गाजहु होइ सदूर॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

शब्दार्थ : लटा = अनुरक्त, पलुहै = पुष्पित, हस्ति = हाथी, अवगास = स्थान, सदूर = सिंह।

संदर्भ : यह अंश जायसी कृत 'पद्मावत' के नागमती वियोग खंड' से उद्धृत है।

प्रसंग : इस पद्यांश में आश्विन मास का अनुपम चित्रण करते हुए नागमती की दशा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या : नागमती अपने विरह का वर्णन करते हुए कहती है कि वर्षा अब बंद हो चुकी है। आश्विन के महीने के प्रारंभ होने के साथ ही साथ अब सरोवरों का पानी उतरने लगा है। लेकिन मेरे पति के सर से अभी तक दूसरी स्त्री के प्रेम का भूत नहीं उतरा। उन्हें अब तो आ जाना चाहिए था परंतु मेरा भाग्य अभी तक मुझे अपने पति का दर्शन नहीं मिल सका है। अब अगस्त्य तारा आसमान में चढ़ गया है, सारे रास्ते साफ हो गए हैं। हे प्रियतम! अब तो आ जाओ। राजा के हाथी गरज-गरज कर रास्तों में घूमने लगे है। राजा घोड़े पर जिन लगाकर रण में प्रवेश करना चाहता है। चित्रा नक्षत्र का सखा चंद्रमा अब मीन राशि में प्रवेश करना चाहता है। कोयल ने भी प्रिय को पुकार-पुकार कर प्राप्त कर लिया है, इसी कारण वह अब बोलती नहीं है। पपीहे के मुख में भी स्वाति नक्षत्र की बूँद पड़ चुकी है। सीपियाँ भी मोतियों से युक्त हो गई हैं। हंस फिर से तालाबों के तट पर आ गए हैं। सारस पक्षियों के जोड़े भी क्रीड़ा करने में मग्न हो गए हैं। वनों में काँस फूलकर लंबी हो गई है। चारों ओर खंजन पक्षी उड़ते हुए दृष्टिगत होने लगे। सारा वातावरण हर्षयुक्त दिखाई पड़ रहा है। ऐसे मोद भरे वातावरण में मेरा पति विदेश से लौट कर नहीं आया। यह विरह का हाथी मेरे शरीर को नोंच-नोंच कर खा रहा है। नागमती अपने पति को पुकार कर कहती है अब तुम शेर के समान गर्जन करते हुए वापस आ जाओ और मुझे इस विरह रूपी हाथी के बंधन से मुक्त कर दो।

विशेषता : आश्विन मास में नागमती की दशा का सजीव चित्रण है। विरह की तुलना हाथी के साथ की गई है। नागमती ने अपने पति को शेर कहकर संबोधित करती है। काँस फूल, खंजन पक्षी, सीपियों का मोतियों से भर जाना आदि प्राकृतिक सौन्दर्य को निखार रहे हैं।

बोध प्रश्न

- विरह की तुलना हाथी से साथ क्यों किया गया है?
- चंद्रमा किस राशि में प्रवेश करना चाहता है?
- नागमती अपने पति को क्या कहकर संबोधित करती है?
- आश्विन मास में प्रकृति किस तरह बदलती है?

कातिक सरद-चंद उजियारी। जग सीतल, हौं बिरहै जारी॥
चौदह करा चाँद परगासा। जनहुँ जराईं सब धरती अकासा॥
तम मन सेज करै अगिदाहू। सब कहँ चंद, खएउ मोहिं राहू॥
चहूँ खंड लागै अंधियारा। जौं घर नाहीं कंत पियारा॥
अबहूँ, निठुर! आउ एहि बारा । परब देवारी होइ संसारा॥
सखि झूमक गावैं अँग मोरी। हौं झुरावँ, बिछुरी मोरि जोरी॥
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा। मो कहँ बिरह, सवति दूख दूजा॥
सखि मानैं तिउहार सब गाइ, देवारी खेलि।
हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

शब्दार्थ : जारी = जलना, परगासू = प्रकाश, अकासू = आकाश, अगिडाहू = आग जलाना, झूमक = एक गीत विशेष, छार = मिट्टी।

संदर्भ : यह अंश जायसी कृत 'पद्मावत' के नागमती वियोग खंड' से उद्धृत है।

प्रसंग : इस पद्यांश में कार्तिक मास का अनुपम चित्रण करते हुए नागमती की दशा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या : मास बदलते-बदलते अब कार्तिक का महीना भी आ गया है। नागमती कहती है कि इस महीने शरदकालीन चंद्रमा संसार में अपने प्रकाश को चारों तरफ फैला रहा है। संसार उसकी शीतलता से लाभ उठाकर सुखी है किन्तु मैं ही केवल विरह के कारण उस सुख से वंचित हूँ। इस चंद्रमा में सम्पूर्ण कलाएँ विद्यमान हैं। नागमती कहती है चंद्रमा को देखकर मुझे तो लगता है कि सारी पृथ्वी और आकाश बुरी तरह से जल रहे हैं। मेरा शरीर, मन, शैया सभी कुछ मेरे लिए अग्नि समान बन गया है। मेरे लिए यह चंद्रमा राहू बन गया है जबकि सबके लिए यह शीतल चंद्रमा ही है। मेरे पति मेरे साथ नहीं है जिस कारण से मेरे चारों ओर अंधकार फैला हुआ है। चारों ओर दिवाली का त्योहार मनाया जा रहा है। सभी सखियाँ अपने शरीर को मोड़-मोड़ गीत गा गाकर नाच रही हैं लेकिन मैं तो वियोगिनी हूँ। जिन स्त्रियों के पति घर में हैं वहाँ ऋषियों की पूजा हो रही है लेकिन मेरे लिए तो विरह ही मेरी सपत्नी बन गया है। सारी सखियाँ त्योहार का आनंद ले रही है और गा- गाकर दीवाली का त्योहार मन रही है। लेकिन मैं अपने पति के बिना इस पर्व में किस प्रकार आनंद ले सकती हूँ? इसलिए विवश होकर मुझे अपने सर पर धूल डालनी पड़ रही है।

विशेषता : कार्तिक मास में विरह की अग्नि दीवाली के त्योहार के बाद भी नागमती को किस प्रकार से जला रही थी इसका मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

बोध प्रश्न

- चंद्रमा को देखकर नागमती को कैसा लग रहा था?
- स्त्रियाँ कौन सा त्योहार मना रही है?
- विरह को नागमती ने क्या माना है?

8.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! जायसी का प्रसिद्ध ग्रंथ है 'पद्मावत'। मूल रूप से 'पद्मावत' एक सूफी प्रेमाख्यानक काव्य है, इसलिए उसमें शृंगार रस की प्रधानता स्वाभाविक है। शृंगार रस के दोनों पक्षों अर्थात संयोग और वियोग को 'पद्मावत' में देखा जा सकता है। शृंगार के अतिरिक्त जिन रसों की ओर कवि की दृष्टि गई है वे हैं वीर, करुण और वात्सल्य। 'पद्मावत' में संयोग शृंगार की अभिव्यंजना पद्मावती और नागमती दोनों रानियों के माध्यम से की गई है। काव्य की नायिका पद्मावती होने के कारण संयोग चित्रण में पद्मावती को ही प्रमुख स्थान मिला है। नागमती और रत्नसेन का संयोग चित्रण तो केवल एक ही स्थान पर देखने को मिलता है लेकिन नागमती का विरह खंड न केवल 'पद्मावत' महाकाव्य वरन् हिंदी साहित्य की अनमोल धरोहर है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी के 'नागमती वियोग वर्णन के संबंध में अपनी सम्मति इस प्रकार से दी है, 'नागमती के वियोग-वर्णन में वेदना का अत्यंत निर्मल और कोमल स्वरूप, हिंदू दाम्पत्य जीवन का अत्यंत मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं तथा व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य-भावना तथा विषय के अनुसार भाषा अत्यंत स्निग्ध, सरल, मृदुल और प्रकृत प्रवाह देखने योग्य है।' षट्ऋतु वर्णन महाकाव्य का एक प्रमुख अंग है। इसीका पालन करते हुए जायसी ने नागमती वियोग खंड में ऋतु वर्णन के माध्यम से नागमती की विरह वेदना को अभिव्यक्ति दी।

कवि ने नागमती के विरह का वर्णन विस्तार से किया है। आषाढ़ मास में बादलों ने गर्जन प्रारंभ कर दिया है। इसी मास में विरह का दुख भी अधिक बढ़ गया है। धुंधले और सफेद रंग के बादलों से आकाश भर गया है। चारों ओर सफेद बादलों की पंक्ति को देखकर लग रहा था कि मानों बगुलों की पंक्ति हो, जो इस श्वेत पताका के समान लहरा रही हो। आकाश में चमकती हुई बिजली को देखकर लग रहा था कि जैसे तलवारें चमक रही हो। वर्षा की तीव्रता को देख के लग रहा था कि जैसे चारों ओर बाण चल रहे हो। आद्रा नक्षत्र के लगते ही बिजली चमकने लगती है और वर्षा प्रारंभ हो जाती है। ऐसे वातावरण में नागमती को पति का वियोग बहुत अखरता है। वह सोचती है कि पति के बिना इस मौसम में मुझे किसके पास से स्नेह मिलेगा? आषाढ़ मास से भी अधिक वर्षा सावन में होती है। इस मास में नागमती के विरह का दुख और अधिक बढ़ गया है। आर्द्रा नक्षत्र के लगते ही बिजली चमकने लगती है और वर्षा होनी आरंभ हो जाती है। इस

समय धरती में हरियाली फैल जाती है और जलाशय भी भर जाते हैं लेकिन नागमती तो विरह में और अधिक कृश हो गई है। वह कहती है पुनर्वसु नक्षत्र के लग जाने पर भी उसका पति अभी तक घर नहीं आया है। नागमती कहती है कि यह भादों मास तो मेरे लिए और भी अधिक कठिन हो गया है। अंधेरी रातें काटने का प्रयास मैं लगातार कर रही हूँ लेकिन ये रातें कटती ही नहीं है। मेरा सारा घर प्रिय के अभाव में सुना सा लग रहा है। मेरी शैया मुझे नागिन के समान काट खाएगी ऐसा मुझे लग रहा है। मैं अपनी शैया के एक कोने में पड़ी रहती हूँ। सारी रात जागते रहने के कारण मैं आँखों को खोले रखकर ही प्रियतम की प्रतीक्षा करती रहती हूँ। नागमती अपने विरह का वर्णन करते हुए कहती है कि वर्षा अब बंद हो चुकी है। आश्विन के महीने के प्रारंभ होने के साथ ही साथ अब सरोवरों का पानी उतरने लगा है। लेकिन मेरे पति के सर से अभी तक दूसरी स्त्री के प्रेम का बहुत नहीं उतरा है। उन्हें अब तो आ जाना चाहिए था परंतु मेरा भाग्य अभी तक मुझे अपने पति का दर्शन नहीं मिल सका है। अब अगस्त्य तारा आसमान में चढ़ गया है, सारे रास्ते साफ हो गए है। हे प्रियतम! अब तो आ जाओ। मास बदलते-बदलते अब कार्तिक का महीना भी आ गया है। नागमती कहती है इस महीने शरदकालीन चंद्रमा संसार में अपने प्रकाश को चारों तरफ फैला रहा है। संसार उसकी शीतलता से लाभ उठाकर सुखी है किन्तु मैं ही केवल विरह के कारण उस सुख से वंचित हूँ। इस चंद्रमा में सम्पूर्ण कलाएँ विद्यमान है। नागमती कहती है चंद्रमा को देखकर मुझे तो लगता है कि सारी पृथ्वी और आकाश बुरी तरह से जल रहे हैं। मेरा शरीर, मन, शैया सभी कुछ मेरे लिए अग्नि समान बन गया है। मेरे लिए यह चंद्रमा राहू बन गया है जबकि सबके लिए यह शीतल चंद्रमा ही है। मेरे पति मेरे साथ नहीं है जिस कारण मेरे चारों ओर अंधकार फैला हुआ है जबकि चारों ओर दीवाली का त्योहार मनाया जा रहा है।

8.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. जायसी ने 'नागमती वियोग खंड' में भारतीय साहित्य और लोक में प्रचलित षटऋतु वर्णन और बारहमासा की परंपरा का सफल निर्वाह किया है।
2. नागमती के विरह का वर्णन करते हुए कवि ने प्रकृति और मनुष्य के भावों का अनेक स्थलों पर बिंब-प्रतिबिंब रूप में चित्रण किया है।
3. कवि ने अनेक स्थलों पर प्रकृति और मानव मनोभाव के विरोध के सहारे भी विरह की विभिन्न दशाओं को उभारा है।
4. नागमती वियोग वर्णन को आलोचकों ने मार्मिकता, प्रभाव, कोमलता, मधुरता और व्यंजकता की दृष्टि से अनुपम माना है।

8.6 शब्द संपदा

1. निराश्रित = आश्रयविहीन
2. प्रभविष्णुता = शक्तिशाली

3. प्रांजलता = स्वच्छ, पवित्र
4. भावाभिव्यंजना = भावनाओं को व्यक्त करना
5. वातावरण = आसपास की स्थिति

8.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. पठित अंशों के आधार पर नागमती के विरह का वर्णन कीजिए।
2. आषाढ़ मास में प्रकृति के बदलते स्वरूप के नागमती की मनोदशा पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन कीजिए।
3. सावन मास में प्रकृति के बदलते स्वरूप के नागमती की मनोदशा पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन कीजिए।
4. बादो मास में प्रकृति के बदलते स्वरूप के नागमती की मनोदशा पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. संदर्भ सहित व्याख्या लिखिए

(अ) लाग कुवार, नीर जग घटा .... बाजहु, गाजहु होइ सुदूर।।

(आ) चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। ..... हम सुख भूला सर्ब।।

(इ) सावन बरसे मेह अति पनि। ..... ना मोहि पाँव न पांख।।

2. कार्तिक मास में शरद चंद्र को देखकर नागमती कैसा अनुभव करती है? संक्षेप में लिखिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. दादुर का अर्थ है .....। ( )
   (अ) मेंढक (आ) मोर (इ) कछुआ (ई) पपीहा
2. जायसी ने किस महीने में 'हिंडोले' के वर्णन किया है? ( )
   (अ) आषाढ़ (आ) श्रवण (इ) बादों (ई) कातिक
3. किस नक्षत्र के लगने से बिजली चमकने लगती है? ( )
   (अ) आद्रा (आ) पुष्य (इ) पुनर्वसु (ई) कृतिका

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. चढ़ा ……. गगन घन गाजा।

2. जिन्ह घर …… सुखी।

3. …….. बूँद चातक मुख परे।

4. लाग कुवार, …….. जग घटा।

III. सुमेल कीजिए -

1. आद्रा	(अ) पक्षी
2. कातिक	(आ) बिजली
3. कोकिला	(इ) नक्षत्र
4. बीजु	(ई) महीना

8.8 पठनीय पुस्तकें

1. जायसी ग्रंथावली : सं. रामचंद्र शुक्ल

खंड 3 : सगुण भक्तिकाव्य और रीतिकाव्य

इकाई 9 : सूरदास, तुलसीदास और बिहारी : एक परिचय

रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 मूल पाठ : सूरदास, तुलसीदास और बिहारी : एक परिचय
9.3.1 सूरदास: जीवन परिचय एवं रचनाएँ
9.3.2 तुलसीदास: जीवन परिचय एवं रचनाएँ
9.3.3 बिहारी: जीवन परिचय एवं रचनाएँ
9.3.4 सूरदास, तुलसीदास और बिहारी का हिंदी साहित्य में स्थान एवं महत्व
9.4 पाठ सार
9.5 पाठ की उपलब्धियाँ
9.6 शब्द संपदा
9.7 परीक्षार्थ प्रश्न
9.8 पठनीय पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का मध्यकाल दो भागों में विभाजित है- पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल। पूर्व मध्यकाल को 'भक्तिकाल' (1350ई.-1650ई.) तथा उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' (1650ई.-1850ई.) के नाम से जाना जाता है। भक्तिकाल में वैष्णव भक्ति की दो धाराएँ प्रवाहित हुईं- निर्गुण और सगुण। इसी के अनुरूप साहित्य का भी प्रवर्तन हुआ। पुनः सगुण भक्तिकाव्य की दो मुख्य धाराएँ प्रकाश में आईं- कृष्ण भक्तिकाव्य और राम भक्तिकाव्य। महाकवि सूरदास और तुलसीदास की रचनाओं से क्रमशः कृष्ण और राम भक्तिधारा को मजबूत और लोकप्रिय आधार प्राप्त हुआ। इन कवियों का व्यक्तित्व भी स्वयं भक्ति से आप्लावित था। सूरदास और तुलसीदास क्रमशः कृष्णोपासक और रामोपासक भक्तकवि हैं। युगीन परिवेश के लिए उनकी वाणी अमृत थी। इनके साहित्य से जनता में जीवन के प्रति अनुराग बढ़ा, आत्मिक बल बढ़ा और उनकी नैराश्य वृत्ति समाप्त हुई। इसी से इनकी वाणी का निर्माल्य जन-जन के कंठों में शोभित हुआ और आज भी यह जीवित है। भक्तिकालीन रचनाओं में निहित भक्ति और प्रेम का समन्वय अपनी उच्चता को प्राप्त करने के बाद जीर्णता की ओर बढ़ा। धीरे-धीरे इस परम प्रेम से भक्ति का गुण खत्म होने लगा। राधा-कृष्ण जैसे दिव्य प्रेम के प्रतीकों पर भी लौकिकता का आक्षेप होने लगा। ये दिव्य प्रतीक अब नश्वर जीवन के लौकिक संबंधों का प्रतीक रह गए। भक्ति से विरत प्रेम अब शृंगार का केंद्र बना। शृंगारिक रचनाएँ रसिकता और शास्त्रीयता की कसौटी पर कस कर रची जाने लगीं। इस नई काव्य प्रवृत्ति के साथ रीतिकाल का आरंभ हुआ। इस काल में तीन प्रमुख काव्यधाराएँ विकसित हुईं- 'रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त'। कवि

'बिहारी' रीतिसिद्ध काव्य के प्रमुख कवि हैं। रीतिसिद्ध काव्यधारा के अंतर्गत वे शृंगार प्रधान काव्य आते हैं जिनमें काव्यशास्त्र के तत्वों को जुटाने के लिए कोई सायास प्रयास नहीं किया जाता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार रीतिकालीन मनोवृत्ति का श्रेष्ठ प्रतिनिधित्व बिहारी के काव्य में मिलता है।

9.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- कृष्ण भक्ति धारा के प्रमुख कवि सूरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- राम भक्ति धारा के प्रमुख तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- प्रमुख रीतिसिद्ध कवि बिहारी के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी साहित्य में इनके महत्व व स्थान का आकलन कर सकेंगे।

9.3 मूल पाठ : सूरदास, तुलसीदास और बिहारी : एक परिचय

9.3.1 सूरदास : जीवन परिचय एवं रचनाएँ

जीवन परिचय : कृष्ण भक्तकवि सूरदास का जन्म संवत 1535 में हुआ था। इस जन्म काल का निर्धारण सूर-निर्णय के लेखकद्वय (द्वारिकादास परीख और प्रभुदयाल मीतल) ने किया है। इससे पहले मिश्रबंधुओं द्वारा निर्दिष्ट अनुमानित जन्म-काल संवत 1540 को ही सभी इतिहासकारों एवं आलोचकों द्वारा सूरदास का जन्म काल स्वीकार किया जाता रहा जो अब अप्रामाणिक सिद्ध होता है। श्री हरबंशलाल शर्मा ने अपनी कृति सूरदास में इनकी जन्म तिथि वैशाख शुक्ल 5 मंगलवार संवत 1535 ही मानी है। वल्लभ सम्प्रदाय की सेवा प्रणाली के इतिहास से सूर सारावली का रचनाकाल संवत 1602 स्पष्ट होता है। उस समय सूरदास की आयु 67 वर्ष की थी। 1602 में से 67 कम कर देने से संवत 1535 रहता है। अतः अंतःसाक्ष्य से भी सूरदास का जन्म संवत 1535 ही सिद्ध होता है। पुष्टि संप्रदाय की मान्यता के अनुसार सूरदास, वल्लभाचार्य से 10 दिन छोटे थे। वल्लभाचार्य का जन्म संवत 1535 में हुआ था। इसलिए भी सूरदास का जन्म संवत 1535 ही निश्चित होता है। द्वारिकादास परीख और प्रभुदयाल मीतल द्वारा निर्धारित जन्म-संवत की प्रामाणिकता गोकुलनाथ की 'निजवार्ता' से सिद्ध होती है। उनके अनुसार "निजवार्ता में लिखा है कि सो सूरदास जी जब श्री आचार्य जी महाप्रभु को प्रागट्य भयौ है, तब इनकौ जन्म भयौ है। सों श्री आचार्य जी सों ये दिन दस छोटे हते।" यह प्रमाण अपने मत को पुष्ट करने के लिए सूर निर्णय के लेखक द्वय ने दिया है। सूरदास के जन्म स्थान के संबंध में भी विवाद है। जन्मस्थान और संबंधित तर्क का विवरण देखें-

- **रुनकता ग्राम-** डॉ. मुंशीराम शर्मा रुनकता गाँव को सूरदास का निवास स्थान मानते हैं। इस तर्क का स्रोत वहां के निवासी हैं। गोपाचल, गौघाट 'दोनों आगरा के पास है और रुनकता भी यहाँ से पास है। अतः संभव है, सूर का निवास स्थान यहीं पर रहा हो। ग्वालियर तथा गोवर्धन पर्वत को भी प्राचीन ग्रंथों में गोपाचल कहा गया है। भारतेंदु की सम्मति में सूर के पूर्वज दिल्ली के समीप सीही ग्राम में रहते होंगे। वहां से चलकर गोपाचल में रहने लगे होंगे।

यह भी संभव है कि परिवार के कुछ व्यक्ति सीही में और कुछ गोपाचल में रहते हों।' (मुंशीराम शर्मा उद्धृत डेजी वालिया द्वारा)

- **सीही ग्राम-** विट्ठलदास और गोकुलनाथ के समकालीन प्राणनाथ ने 'अष्टसखामृत' में 'सीही' गाँव को सूरदास का जन्मस्थान कहा है। यह दिल्ली से चार कोस की दूर है।

सर्वसम्मति से 'सीही' गाँव को ही सूरदास का जन्मस्थान माना जाता है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अनुसार सूर का निवास स्थान गौ घाट है, जो यमुना के तट पर स्थित है। यह स्थान मथुरा और आगरा के बीच पड़ता है। यह स्थान रुनकता के नजदीक है। बाह्य साक्ष्य के अंतर्गत भविष्यपुराण में तीन सूरदास (बिल्वमंगल, मदनमोहन सूरदास, सूरदास) का वर्णन है। इनमें से 'तीसरे सूरदास चंद्रभट्ट के वंश में उत्पन्न हैं। वे कवि हैं तथा भगवान के प्यारे भक्त हैं। उन्होंने कृष्णलीला पर कविता की है। अकबरी दरबार से उनका कोई संबंध नहीं है। सूरसागर इन्हीं सूरदास की रचना है। सूरसागर के रचयिता सूरदास पर 'भक्तमाल' में केवल एक छप्पय लिखा गया है, जिससे उनकी लौकिक जीवनगाथा पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता। छप्पय के आधार पर सूरदास अंधे थे। उन्हें दिव्यदृष्टि प्राप्त थी। उनकी रचना में उक्तिचमत्कार, अनुप्रास, वर्णमैत्री, अर्थगांभीर्य तथा प्रेमाभक्ति का समावेश है। भगवान के जन्म,कर्म, गुण और रूप से संबंधित उनकी रचना को जो पढ़ता है या सुनता है, उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है। सूरदास की कविता मनोमुग्धकारिणी है। तानसेन सूरदास के समकालीन हैं। उन्होंने भी सूर-काव्य की प्रभविष्णुता स्वीकार की थी। उनका निम्नांकित दोहा इस विषय में प्रसिद्ध है-

"किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत शरीर।।"

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने ग्रंथ उत्तरार्द्ध भक्तमाल में सूरदास पर एक छप्पय लिखा है।'(मुंशीराम शर्मा सोम)। इसमें अंकित तथ्य भी पुष्टिमार्गी वार्ता साहित्य के अनुरूप ही हैं। विद्वानों की सम्मति से सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण स्वीकार किया गया। इस संदर्भ में निम्नांकित दोहा देखें -

"श्री वल्लभ प्रभु लाडिले, सीही-सर जलजात।
सारसुती दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात।।" (अष्टसखामृत, प्राणनाथ)

सूरदास ने जिस कल्पना शक्ति से भूमंडल और उससे परे विषयों का सूक्ष्म चित्रण अपने साहित्य में किया है, उसे देखकर उनकी जन्मांधता पर सहज विश्वास नहीं होता है। ऐसा कई मूर्धन्य आलोचकों के साथ हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. श्यामसुंदरदास आदि विद्वानों ने सूरदास को जन्मांध नहीं स्वीकार किया। अपने मत के पक्ष में उन्होंने तर्क भी दिया, वे तर्क इस प्रकार हैं-

- शृंगार तथा रंग-रुपा आदि का जो वर्णन उन्होंने किया है, वैसा कोई जन्मांध नहीं कर सकता। (डॉ. श्यामसुंदरदास)
- इनकी रचनाओं में प्रकृति का और मनुष्य के भावों के उतार-चढ़ाव का जैसा सूक्ष्म चित्रण है, उसे देखकर यह कहने का साहस नहीं होता कि सूरदास ने बिना अपनी आँखों से देखे ...यह सब लिखा है। (आचार्य नंददुलारे वाजपेयी)।

सूरदास की जन्मांधता की अस्वीकार्यता के लिए इन्हें ठोस प्रमाण नहीं माना जा सकता है। सूरदास की अपनी रचनाओं में उन्होंने अपनी जन्मांधता का उल्लेख किया है। उदाहरणस्वरूप सूरसागर के पदों के अंश देखें-

- यह माँगौ बार-बार प्रभु सूर के नयन दोउ रहैं, नर देह पाऊं।
- सूरदास सौं कहा निहारौ, नैननि हूँ की हानि।

सूर साहित्य के शोधकर्ताओं ने सूरदास की जन्मांधता को प्रमाणित करनेवाले कुछ बाह्यसाक्ष्य सामने रखे हैं, जो इस प्रकार हैं-

- जन्मान्धो सूरदासोऽभूत (श्रीनाथ भट्ट कृत संस्कृत मणिमाला)
- बाहर नैन-विहीन सो, भीतर नैन विसाल।
  जिन्हें न जग कछु देखिवो, लखि हरि रूप निहाल।। (प्राणनाथ)
- सो सूरदास को जन्म ही सों नेत्र नाहीं हैं। (हरिरायजी कृत चौरासी वैष्णवन की वार्ता के भावप्रकाश में)

सूरदास जन्म से बाह्य नेत्रहीन थे। इन्हें अंतर्दृष्टि प्राप्त थी। छः वर्ष की अवस्था में ये अपने जन्मस्थान सीही से निकल गए। वहाँ से कुछ कोस दूर एक पीपल के वृक्ष के नीचे अपना डेरा जमाया। एक जमींदार के पूछने पर अपनी अंतर्दृष्टि से देखकर उन्होंने उसकी खोई गायों का पता बता दिया। उस स्थान पर उनके लिए बड़ा घर बनाया गया। इस स्थान पर 18 वर्ष की अवस्था प्राप्त करने के बाद उन्होंने देखा कि वे तो मोहमाया के जाल में पुनः फँस गए। वे वहाँ से मथुरा की ओर प्रस्थान कर गए। यमुना तट के 'गऊ घाट' को अपना निवास स्थान बनाया। महाप्रभु बल्लभाचार्य से इनकी भेंट यहीं हुई। सूरदास के संगीतमय स्वर की प्रसिद्धि से बल्लभाचार्य भी प्रभावित थे। शुद्धाद्वैत मत का प्रचार करने के लिए उन्होंने श्रीनाथजी का छोटा-सा मंदिर गोवर्धनपर्वत पर बनवाया था। इस मंदिर में कीर्तन का प्रबंध करने वाले का दायित्व सूरदास को सौंपा गया। आचार्य और सूरदास की भेंट जब हुई तब उनका वार्तालाप इस प्रकार रहा-

"आचार्य: कुछ भगवदयश वर्णन करो।
सूरदास: (गाने लगे) 'हौं हरि सब पतितन को नायक' एवं प्रभु मैं सब पतितन को नायक।
आचार्य: सूर है कै ऐसौ घिघियात काहे कों है? कछु भगवतलीला वर्णन करि।
सूरदास: महाराज मैं कछु भगवतलीला समुझत नहीं हूँ।
आचार्य: जाऔ, श्री जमुना में स्नान करि कै आऔ।"

जब सूरदास यमुना में स्नान करके आए तब आचार्य ने उन्हें प्रभुका नाम सुनाया, समर्पण करवाया, दशम स्कंध की अनुक्रमणिका सुनाई और पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम सुनाया। यहाँ पुष्टिमार्गीय संप्रदाय में दीक्षित होने के बाद वे महाप्रभु के साथ पहले गोकुल गए और उसके बाद गोवर्धन आए और वहाँ श्रीनाथ जी के कीर्तन का दायित्व इन्हें सौंपा गया। इन्हें 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा जाता है। परासोली में इन्होंने देह त्याग किया। सूरदास ने कृष्णलीला से संबंधित सवा लाख पदों की रचना की है।

रचना यात्रा: भगवदकीर्तन के पदों के गायन से ही सूरदास की रचनायात्रा का आरंभ होता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य होने के पहले से ही वे भगवदविषयक गायन करते थे। उनके

सुमधुर कंठ की प्रशंसा से ही वल्लभाचार्य उनकी ओर खिंचे चले आए। जीव, गुरू के सानिध्य से ही लक्ष्य प्राप्त करता है। आचार्य वल्लभाचार्य से मिलने के उपरांत सूरदास का मन स्थिर हुआ और वे श्रीनाथ जी की सेवा में तल्लीन हो गए। कहा जाता है कि इस सेवा कार्य के समय से आरंभ करके अपने जीवन के अंतिम समय तक में उन्होंने एक लाख पदों की रचना की है। श्री राधाकृष्ण दास और मुंशीराम शर्मा सोम जैसे विद्वानों ने सूर द्वारा सवा लाख पदों के रचे जाने की बात को स्वीकार किया है। हिंदी साहित्य के इतिहासों एवं विविध खोज रिपोर्टों के आधार पर यह माना गया है कि सूरदास की प्रकाशित एवं अप्रकाशित कुल 25 रचनाएँ हैं। वे रचनाएँ इस प्रकार हैं- सूरसागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी, सूर पच्चीसी, सूर साठी, सेवा फल, सूरदास के विनय के पद, भागवत भाषा, दशम स्कंध भाषा, सूरसागर सार, सूर रामायण, बाल लीला, राधारस केलि कौतुक, गोवर्धन लीला, दानलीला, भँवर गीत, नागलीला, ब्याहलो, प्राणप्यारी, दृष्ट्कूट के पद, सूर शतक, हरिवंश टीका, एकादशी महात्म्य, नल दमयंती और राम जन्म। इनमें से अधिकांश रचनाएँ (भागवत भाषा, सूर रामायण, बाल लीला, दान लीला, गोवर्धन लीला, सूरसागर सार, भंवरगीत, ब्याहलो, सूरशतक इत्यादि) सूरसागर में सन्निहित हैं। 'सूर निर्णय' ग्रंथ में केवल सात रचनाओं को ही प्रामाणिक माना गया है- सूरसागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी, सूर पच्चीसी, सूर साठी, सेवा फल और सूरदास के विनय के पद। "सूर पच्चीसी 28 उपदेशात्मक पदों की पूर्ण और स्वतंत्र रचना है। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के अनुसार इसकी रचना सूर और अकबर के भेंट के समय हुई थी। सेवाफल में भगवान की सेवा का माहात्म्य तथा फल वर्णित है। सूर साठी की रचना सूर ने एक बनिए के निमित्त की थी, ऐसा वार्ता साहित्य से सिद्ध होता है। 'सूरदास के विनय आदि के पद' में देव-प्रार्थना, वैराग्य, अर्चना, दिनचर्या आदि से संबंधित पद हैं।" (डेजी वालिया)।

रचनाओं का परिचय: सूरसागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी- सूरदास की ये तीन रचनाएँ ही साहित्यिक क्षेत्र में उनका स्थान सुनिश्चित करती हैं और उनकी प्रसिद्धि का आधार बनती हैं। इन सबका आधार उनकी भक्ति, उनकी अंतर्दृष्टि, श्रीनाथजी से नैकट्य और आचार्य वल्लभ के प्रति असीम निष्ठा है। उनकी दृष्टि में गुरू और श्रीनाथ जी एक समान थे। उन्हें उनका ही भरोसा था।

"भरोसो इन दृढ़ चरनन केरो। श्री बल्लभ मुख चंद छटा बिनु सब जग मांझ अंधेरो।।"

सूरदास की प्रमुख रचनाओं का परिचय निम्नांकित है-

सूरसागर : यह सूरदास की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इस ग्रंथ के दो रूप मिलते हैं - संग्रहात्मक और द्वादश स्कंधात्मक। संग्रहात्मक स्वरूप वाला सूरसागर मूल सूरसागर है। इस मूल सूरसागर का विषय अनुसार परिवर्तित रूप द्वादश स्कंधात्मक सूरसागर है, जिसका उपयोग पठन-पाठन के लिए किया जाता है। यह ग्रंथ श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित कृष्ण लीला के अतिरिक्त उस ग्रंथ के किसी अन्य पक्ष (दार्शनिक, ऐतिहासिक, कथा) पर आधारित नहीं है। अतः यह भागवत के दशम स्कंध की कथा का काव्य रूपांतरण हो सकता है पर इसे भागवत का पूर्ण भाषानुवाद नहीं कहा जा सकता। इसमें सन्निहित पद श्रीनाथजी के कीर्तन के लिए सूरदास द्वारा रचित लीलागान ही हैं जिनमें भक्तितत्व प्रधान है। "श्रीनाथ जी की कीर्तन सेवा में निरत नित्यप्रति नए-नए पदों को

गानेवाले सूर को महाप्रभु बहुधा 'सागर' नाम से संबोधित करते थे। ...सूर को महाप्रभु 'भक्ति का सागर' एवं गोस्वामी विट्ठलनाथ 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहकर पुकारते थे। संभवतः इसी कारण उनके भक्तिपरक पदों का संग्रह सूरसागर नाम से विख्यात हुआ।" (बलराज शर्मा)। नागरी प्रचारिणी सभा के रिपोर्टों के अनुसार उनके लगभग 5000 पद प्राप्त हैं।

सूरसागर में 12 स्कंध हैं। इसके दशम स्कंध का पूर्वार्ध सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें कृष्ण जन्म से लेकर उनके युवावस्था तक की लीलाएँ वर्णित हैं- बाल लीला, गोपीलीला, गोपियों का कृष्ण विरह, उद्धव का ब्रजगमन, भ्रमरगीत, उद्धव का मथुरा लौटना, कृष्ण अक्रूर गृह गमन इत्यादि। इसके उत्तरार्द्ध के 'पदों में कालिय दमन, द्वारका प्रवेश, रुक्मिणी परिणय, प्रद्युम्न जन्म, अनिरुद्ध विवाह, जरासंध वध, शिशुपाल वध, सुदामा दारिद्र भजन, कुरुक्षेत्र में कृष्ण का यशोदा तथा गोपियों से मिलन आदि विषयों का समावेश भागवत के आधार पर ही हुआ है।' (बलराज शर्मा)। वर्णनात्मक और गेय रचना शैली में रचे गए इस ग्रंथ में शृंगार और वात्सल्य भाव का अभूतपूर्व चित्रण देखने को मिलता है। भ्रमरगीत में इनकी काव्यकला का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है।

सूर सारावली : इसे सूरसागर का सूचीपत्र कहा जाता है। सूरसागर के विषयों का इस ग्रंथ में संकेत मिलता है। दोनों ग्रंथों के विषय-क्रम एक जैसे नहीं हैं। कुछ नए विषय भी सूर सारावली में आए हैं जिनका उल्लेख सूरसागर में नहीं किया गया है। यह केवल सूरसागर के विषयों का सूचीपत्र या उसकी भूमिका न होकर एक स्वतंत्र और मौलिक ग्रंथ है। इसका आधार 'पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम' है जो श्रीमद्भागवत का सार है। यही सूरसारावली का भी सारतत्व है- 'समस्त तत्व ब्रह्मांड, देव, माया, काल, प्रकृति, पुरुष, श्रीपति और नारायण उसी एक गोपाल भगवान के अंश रूप हैं, जिसकी कथा भगवान की शाश्वत लीला है और जिसके समक्ष ज्ञान, कर्म, उपासना और योग सब भ्रम रूप हैं।'

इस ग्रंथ का रचनाकाल संवत 1602 है। इसमें दो-दो पंक्तियों के 1107 बंद मिलते हैं। यह एक सैद्धांतिक ग्रंथ है जो दार्शनिकता और तत्वज्ञान से पूर्ण है। इस ग्रंथ में सारी सृष्टि उस ब्रह्म के लिए होली के खेल के रूपक के रूप में प्रस्तुत है। इसमें वर्णित विषय हैं- पुरुषोत्तम, वृंदावन, माखनचोरी, कुंजलता, कालिंदी, सारस हंस, गोवर्धन पर्वत, सृष्टि रचना, ब्रह्मा, शतरूपा, स्वयंभू, वाराहावतार, कपिल, सात लोक, नव खंड, सात द्वीप, चौबीस अवतार, बालरूप राम, राम-सीता की होली, कौरव-पांडव युद्ध का संक्षिप्त वर्णन इत्यादि।

साहित्य लहरी : यह लाक्षणिक ग्रंथ है जो शृंगार और अलंकार प्रधान है। इस ग्रंथ के पदों को दृष्टिकूट पद कहा जाता है। इस ग्रंथ में इन पदों की संख्या 118 है। दृष्टिकूट से एक विशेष प्रवृत्ति का आशय निकलता है जिसमें सीधे कह दी जानेवाली बातों को भी घुमा-फिराकर कहा जाता है। इसी कारण इसे पहेली काव्य ग्रंथ भी कहा जाता है। रचना शैली आलंकारिक है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार साहित्य लहरी दृष्टकूट और चित्रालंकारों का चक्रव्यूह है, इसलिए एक तरह से वह रीति के अंतर्गत अलंकार परंपरा में आता है। इस ग्रंथ में कृष्ण की बाललीला के साथ नायिकाभेद (स्वकीया और परकीया) का विशद चित्रण मिलता है। इस ग्रंथ को रीति परंपरा का ग्रंथ माना जाता है।

बोध प्रश्न

- सूरदास के जन्म स्थान संबंधी विवाद एवं उसके निराकरण पर प्रकाश डालें।
- सूरदास की जन्मांधता के पक्ष या विपक्ष में तर्क सहित उत्तर दें।

9.3.2 तुलसीदास : जीवन परिचय एवं रचनाएँ

जीवन परिचय : गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत 1589 को श्रावण शुक्ल सप्तमी को चित्रकूट के बांदा जिले के राजापुर नामक गाँव में यमुना के तट पर हुआ था। डॉ. ग्रियर्सन भी इसी जन्म संवत को स्वीकार करते हैं। उनकी मृत्यु संवत 1680 श्रावण श्यामा तीज को हुई थी। इसी तिथि को टोडरमल के वंशज तुलसीदास की बरसी मनाते हैं। बाबा बेनीमाधवदास जी कृत गोसाई चरित्र के आधार पर 'तुलसीदास' के जन्म और मृत्यु की तिथि के प्रमाण स्वरूप दो दोहे निम्नांकित हैं -

"पंद्रहसैं चौवन बिसैं, कालिंदी के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरयौ शरीर।।"
"संबत सोरहसै असी, असी गंग के तीर। श्रावण श्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यौ सरीर।।"

शिवसिंह सेंगर ने इस गोसाई चरित का उल्लेख करते हुए अपने शिवसिंह-सरोज में लिखा है, "इस गोसाईचरित्र के लिखनेवाले बाबा बेनीमाधवदास पसका ग्राम निवासी थे जो गोस्वामी जी के साथ बहुत दिनों तक रहे।"(पं. सीताराम चतुर्वेदी)।

कुछ विद्वान् इनका जन्मस्थान सूकर क्षेत्र बताते हैं तो कुछ तारी और कुछ राजापुर। सूकर क्षेत्र को कुछ लोग सोरो कहते हैं तो कुछ इसे गोंडा जिले में सरयू के तट पर स्थित मानते हैं। 'राजापुर' को ही तुलसीदास का जन्मस्थान स्वीकार किया गया है। सरयूपारीण ब्राह्मण 'आत्माराम' इनके पिता हैं एवं इनकी माता का नाम 'हुलसी' है। इनका जन्म अभुक्तमूल नक्षत्र में हुआ। अनिष्ट की आशंका से ग्रस्त माता-पिता ने इस नवजात बालक का त्याग कर दिया। इन्हें एक दासी ने पाला-पोसा। साढ़े पाँच वर्ष की आयु प्राप्त करने के उपरांत इनका पालन-पोषण करनेवाली धाय माँ चल बसी। बालक तुलसीदास का कोई आश्रय न बचा। वह माँग-माँग कर खाने लगा। उनका बचपन कष्टों और अभावों में बीता जिसका वर्णन इनके ग्रंथ कवितावली में मिलता है। इनके बचपन का नाम 'रामबोला' था।

"राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यौ राम।
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।।" (विनयपत्रिका)

बाल्यकाल में गोस्वामी जी जब इस प्रकार मांग-जोंचकर पेट भर रहे थे तभी सूकर खेत (गोंडा जिले में सरयू तट पर) के महात्मा नरहरिदास तीर्थाटन करते हुए चित्रकूट पहुँच गए जहाँ मार्ग में यह अनाथ बालक उन्हें मिल गया।' (सीताराम चतुर्वेदी)। रामकथा श्रवण से ही इनका विद्याध्ययन आरंभ हुआ। सूकर क्षेत्र में तुलसीदास ने रामकथा सुनी, इसका उल्लेख रामचरितमानस में है-

मैं पुनि निज गुरसन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत।। (रामचरितमानस)

वहां से कुछ समय बाद अपने गुरु संग काशी आकर शेष सनातन जी के पास 15 वर्ष तक पंचगंगा घाट पर रहकर इन्होंने वेद-वेदांग का अध्ययन किया। फिर अपनी जन्मभूमि राजपुर

लौट आए। रामकथा का वाचन कर अपना जीवन निर्वाह करने लगे। इनका विवाह रत्नावली से हुआ। एक बार जब इनकी पत्नी बिना पूर्व सूचना के अपने मायके चली गई और पत्नी वियोग से व्यग्र तुलसीदास आनन-फानन में हर विघ्न-बाधा को लाँघते हुए अपने ससुराल पहुँच गए। रत्नावली ने उन्हें फटकारते हुए कहा-

"लाज न आवत आपको दौरे आयहु साथ। धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहों मैं नाथ।।
अस्थि चर्ममय देह मम तामें ऐसी प्रीति। तैसी जो श्रीराम में होत न तव भव भीति ।।"

यह कथन बीजमंत्र बन गया, गुरु दीक्षा घटित हो गई। उन्होंने प्रेम का उदात्तीकरण कर दिया। प्रेम का आलंबन बदल गया! राम के प्रति समर्पण के रूप में परम प्रेम रूपा भक्ति प्रकट हुई! तुलसी का रत्नावली के प्रति उत्कट प्रेम उर्ध्वमुखी होकर राम की उत्कट भक्ति बन गया। और सचराचर जगत के प्रति निर्वैर आत्मीयता और करुणा ने कवि तुलसी को लोकमंगल में न्यस्त कर दिया। तुलसी की भक्ति भावना संस्कृत विद्वानों एवं पोथी पंडितों के लिए अवरोध बन गई। तुलसी ने भक्ति का मार्ग जन-सामान्य के लिए खोल दिया और जन-भाषा में रचित रामचरितमानस सभी के कंठ में व्याप गई - वर्णभेद और जातिभेद से कहीं ऊपर उठकर। तुलसीदास को 'गोस्वामी' नाम से भी नवाजा गया किंतु इन्हें रास न आई। तुलसी-गोसाई भयों दिन भूलि गयो। गोस्वामी के रूप में उन्हें बहुत सम्मान मिला। परंतु उनके विरोधियों की भी कमी नहीं थी। यहाँ तक कि रामचरितमानस को चुराने तक का षडयंत्र किया गया। पर रामभक्ति की शक्ति ने सब कुचक्रों को विफल कर दिया। "तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म का पोषण भले ही किया हो पर संस्कारहीन, कुकर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को लताड़ने में वे किसी से पीछे नहीं रहे। तुलसी का जीवन संघर्ष, विद्रोह और समर्पण भरा है। इस दृष्टि से वह अब भी प्रेरणादायक है ।" (अमृतलाल नागर)। तुलसी ने अपने समर्पण भाव को जीवन के अंतिम समय में भी नहीं छोड़ा। काशी नगर में फैली महामारी के समय घर-घर जाकर इन्होंने अपनी सेवा दी। तुलसी के चरितनायक राम की ही भांति स्वयं तुलसी भी उदात्त जीवनमूल्यों और आदर्शों के अनुकरणीय पुंज हैं। इनकी सहज मानवीय आस्था, लोकनिष्ठा और संघर्षशीलता अनुकरणीय है।

रचना यात्रा: कालक्रम के अनुसार 'रामललानहछू' (संवत 1616) तुलसीदास की प्रथम कृति है। अप्रौढ़ रचना की श्रेणी में इसे विद्वानों ने रखा है। नहछू एक लोकरीति है जो जनेऊ और विवाह के अवसर पर किया जाता है। अगली कृति है 'रामाज्ञा प्रश्न' (संवत 1621), इसके कई नाम हैं- रामायण सगुनौती, सगुनावली, रामशलाका, रघुवर शलाका, सगुनमाला इत्यादि। इस कृति में शकुन विचारने की विधि और ज्योतिष का वर्णन है। 'जानकी मंगल' (संवत1626) और 'पार्वती मंगल' (संवत1643) क्रमशः सीता-राम एवं शिव-पार्वती के विवाह का मंगल गान हैं जिनका अपना साहित्यिक महत्व भी है। गीतावली को 'पदावली रामायण' और विनयपत्रिका को विनयावली या राम गीतावली के नाम से भी जाना जाता है। इनका रचनाकाल संवत 1658 है। गीतावली में सीता-राम के जीवन के मधुर भावों का चित्रण है। इस मधुर भाव की छोटी सी झलक बरवै रामायण में भी देखने को मिलती है। विनयपत्रिका में राम के प्रति तुलसी का आत्मनिवेदन है जिसमें सामुदायिक कल्याण की भावना निहित है। 'कवितावली' (कवित्त

रामायण) और 'हनुमानबाहुक' संवत 1661 से 1680 के मध्य की रचनाएँ हैं। कवितावली में युगीन परिस्थिति की भयावहता का हृदयद्रावक चित्र खींचा गया है जिससे स्वर्णयुग का भ्रम टूटता है। दोहावली और कृष्ण गीतावली भी महत्वपूर्ण कृति है। 'बरवै रामायण' और 'वैराग्य संदीपनी' अत्यंत छोटी पुस्तक हैं। इन्हें डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने अपूर्ण कृति माना है। ये तुलसीदास की अंतिम पुस्तकें हैं। हनुमानबाहुक भी छोटी पुस्तक है पर इसकी महत्ता इस बात से है कि इसकी रचना तुलसीदास ने बाहु पीड़ा शांति हेतु की थी।

तुलसीदास की रचनाओं का परिचय

रामललानहछू : 'रामललानहछू' की भाषा पूर्वी अवधी है। यह लोक शैली में रचित खंडकाव्य है। लोकगीतात्मक तत्वों का सुंदर संयोजन यहाँ मिलता है परंतु प्रबंध दोषों और असफल शब्द चयन से कृति की प्रभावोत्पादकता शिथिल जान पड़ती है। इसे कवि की बाल चेष्टा माना गया है। इस कृति में 20 छंद हैं जिन्हें विवाह के लग्न में अवध की स्त्रियाँ गाती हैं।

वैराग्य संदीपनी : 'वैराग्य संदीपनी' कृति पश्चिमी ब्रजभाषा में रचित है। वैराग्यपरक उक्तियों की यह रचना चौपाई-छंद शैली में रची गई है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त के अनुसार इस ग्रंथ की शैली और विचारधारा तुलसी के अन्य ग्रंथों से अलग है। यह रचना अप्रौढ़ है। इसमें दोहा-चौपाई और सोरठा को मिलकर कुल 63 छंद हैं।

रामाज्ञा प्रश्न : दोहा छंद में रचित 'रामाज्ञा प्रश्न' की भाषा अवधी है। इसे विद्वानों ने रामचरितमानस की प्रौढ़ शैली का आरंभिक रूप माना है। इसमें सात सर्ग हैं। 'प्रत्येक सर्ग में सात सप्तक हैं और प्रत्येक सप्तक में सात दोहे हैं।...कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने प्रह्लादघाट पर रहनेवाले गंगाराम ज्योतिषी के लिए इस ग्रंथ की रचना केवल छः घंटों में की थी।' (डॉ. मुंशीराम शर्मा सोम)

जानकी मंगल : खंडकाव्य 'जानकी मंगल' की भाषा पश्चिमी अवधी है। इसमें मंगल और हरिगीतिका छंदों का प्रयोग हुआ है। कुल मिलाकर 216 छंद हैं। इसमें प्रयुक्त सरल लोकशैली लालित्यपूर्ण है। यह कृति राम और सीता के विवाह पर आधारित है। इसमें फुलवारी प्रसंग नहीं है।

पार्वती मंगल : खंडकाव्य 'पार्वती मंगल' भाषा-शैली और भाव व्यंजना के संदर्भ में यह कृति जानकी मंगल के ही समान है। इसमें हरिगीतिका के साथ सोहर छंद का भी प्रयोग हुआ है। यह कृति जानकी मंगल की तुलना में अधिक प्रौढ़ मानी जाती है। कुल 64 छंदों में शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन है।

बरवै रामायण : बरवै रामायण में 7 कांड हैं। इन सात कांडों में 69 बरवै छंद हैं। यह छोटी रचना है। यह मुक्तक शैली में रचित है और इसकी भाषा पूर्वी अवधी है।

दोहावली : दोहावली पश्चिमी ब्रजभाषा की रचना है। इसमें दोहा और सोरठा छंदों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रवाहमयता के साथ गेयता तो है ही साथ ही लोकजीवन से संबंधित सारगर्भित सूक्तियाँ बहुतायत में हैं। 573 दोहे इसमें संकलित हैं।

गीतावली : यह पश्चिमी ब्रजभाषा में रचित गीत मुक्तक काव्य है। इसकी रचना पद शैली में की गई है। "गीतावली की भाव-योजना रामकथा की घटनात्मक खूंटियों से ही बंधी हुई नहीं है,

वरन मानव हृदय की विराट भूमिका को तुलसी ने आधार रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने प्रतिपाद्य विषय की महत्ता के अनुकूल ही प्रतिपादन शैली को अपनाया है।....ब्रजभाषा को साहित्यिक साँचे में ढालते हुए, उन्होंने संस्कृत की कोमलकांत पदावली को अपनाकर, भाषा को माधुर्य की ओर अग्रसर किया है।" (डॉ. रमेशचंद्र मिश्र)। वात्सल्य, मधुर, करुण, हास्य और क्रोध इत्यादि भावों की व्यंजना हृदयग्राही है।

विनयपत्रिका : यह पश्चिमी ब्रजभाषा में रचित गीत मुक्तक काव्य है। इसकी रचना पद शैली में की गई है। विनयपत्रिका तुलसी का वैयक्तिक आत्मनिवेदन है। निवेदन रूपी आत्मविश्लेषण की इस प्रक्रिया में कवि ने वार्णिक और मात्रिक छंदों के साथ ही सरल और सामासिक शैली का भी व्यवहार किया है। उनका यह प्रयोग संतुलित है। "भक्ति रस का पूर्ण परिपाक जैसा विनयपत्रिका में देखा जाता है वैसा अन्यत्र नहीं है। गोस्वामी जी की रामभक्ति वह पदार्थ है जिससे जीवन में शक्ति, सरसता, प्रफुल्लता, पवित्रता सब कुछ प्राप्त हो सकती है। आलंबन की महत्व भावना से प्रेरित दैन्य के अतिरिक्त भक्ति के जितने अंग हैं, भक्ति के कारण अंतःकरण की जो और शुभवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं सबकी अभिव्यंजना विनयपत्रिका के भीतर पा सकते हैं।"(आचार्य रामचंद्र शुक्ल)।

रामचरितमानस : 'रचि महेश निज मानस राखा।/ पाई सुसमउ शिवा सन भाषा।' सबसे पहले रामकथा को महेश (शिव) ने रचकर अपने मन में रखा था और उचित समय आने पर उसे पार्वती (शिवा) को सुनाया। इसी से तुलसी द्वारा रचित रामकथा का नाम 'रामचरितमानस' पड़ा। कवि की काव्यकला का चरमोत्कर्ष इस ग्रंथ में दिखाई देता है। इस महाकाव्य की भाषा केंद्रीय बैसवाड़ी अवधी है। इसकी शैली सरल, लालित्यपूर्ण, ऋजु, प्रवाहमय, आडंबरहीन और निर्व्याज है। इनके साथ विवरणात्मक, ऐतिहासिक, पौराणिक एवं स्त्रोत शैली का भी प्रयोग इस ग्रंथ में किया गया है। माताप्रसाद गुप्त ने मानस की शैली को सुललित और सुचारू कहा है। उनके अनुसार, "प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर आवश्यक प्रतीत होता है, शब्द छोटे हैं, समास निर्माण का कोई प्रयास परिलक्षित नहीं होता है और ध्वनि संकलन ऐसा है जो श्रोता के कानों को कहीं भी कर्कश नहीं प्रतीत होता है।" चौपाई बंध शैली की रचना है। इसका रचनाकाल 1574ई. से 1576ई. माना जाता है। इस ग्रंथ में सात कांड हैं- बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकांड, सुंदरकांड, लंकाकांड और उत्तरकांड। रामकथा के माध्यम से तुलसी उदात्त जीवन मूल्यों और मर्यादा की स्थापना करते हुए समाज को एक दिशा देते हैं।

कवितावली : कवितावली अगीत मुक्तक काव्य है। इसकी शैली मिश्रित है। इसमें छप्पय पद्धति के अनुसार कवित्त (सवैया) और घनाक्षरी छंदों का प्रयोग किया गया है। यह पूर्वी ब्रजभाषा की रचना है। इसके पदों में पूर्वापर क्रम की अखंडता का अभाव है। यह तुलसीदास द्वारा अलग-अलग समय पर लिखे गए छप्पय और छंदों का संग्रह है। यह सात कांडों में विभक्त है। हनुमानबाहुक इसका अंतिम अंश है। इसे मिलाकर कवितावली में कुल 369 छंद हैं।

हनुमानबाहुक : हनुमानबाहुक अगीत मुक्तक काव्य है। इसकी शैली मिश्रित है। इसमें छप्पय पद्धति के अनुसार कवित्त (सवैया) और घनाक्षरी छंदों का प्रयोग किया गया है। यह कवितावली का अंतिम अंश या परिशिष्ट है। कवितावली के इस अंतिम अंश में केवल 44 छंद हैं।

श्रीकृष्ण गीतावली : 'श्रीकृष्ण गीतावली' गीतिकाव्य है। इसकी भाषा ब्रजभाषा है। कृष्ण के जीवन की विविध घटनाओं पर केंद्रित इसमें कुल 61 पद हैं जो बहुत सरस और मधुर हैं। इसमें बाललीला के 20 पद, रूप सौंदर्य के 3, विरह के 9, उद्धव-गोपिका संवाद के 27और द्रौपदी की करुणामय प्रार्थना के 2 पद हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ और ग्रंथों की रचना तुलसीदास ने की है, वे इस प्रकार हैं- सतसई, कुंडलिया रामायण, छंदावली रामायण, संकटमोचन, रोला रामायण, झूलना, छप्पय रामायण, कवित्त रामायण, कलिधर्माधर्म निरूपण और हनुमान चालीसा। तुलसीदास के प्रामाणिक ग्रंथ 12 ही माने जाते हैं।

बोध प्रश्न

- तुलसीदास का बचपन कैसा था?
- क्या तुलसीदास ने कृष्ण को केंद्र में रखकर भी कोई रचना की है? यदि हाँ तो उसका परिचय दीजिए।

9.3.3 बिहारी : जीवन परिचय एवं रचनाएँ

जीवन परिचय: बिहारी के जन्मस्थान के संबंध में विवाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार इनका जन्मस्थान मथुरा है और कुछ के अनुसार गोविंदपुर है। 'गोविंदपुर' का संबंध कुलपति मिश्र से है जो कि बिहारी के भांजे हैं और 'मथुरा' कवि का ससुराल है। यह माना गया है कि बिहारी का जन्मस्थान ग्वालियर के निकट स्थित बसुवा गोविंदपुर गाँव है। इनके जन्म से संबंधित कुछ दोहों का जिक्र पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया है जिनसे स्पष्ट होता है कि इनका जन्म ग्वालियर में संवत 1652 में हुआ था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनका जन्म संवत 1660 के लगभग मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि जन्म के लगभग सात-आठ वर्ष बाद इनके पिता ग्वालियर से ओड़छा आ गए थे। कवि बिहारी का विवाह मथुरा के ब्राह्मण परिवार की कन्या से हुआ था। विवाहोपरांत वे मथुरा में ही बस गए। निम्नोक्त पंक्तियाँ इन तथ्यों को प्रमाणित करती हैं।

"जनम ग्वालियर जानियै, खंड बुंदेले बाल। तरुनाई आई सुघर, मथुरा बसी ससुराल।।"

एक अन्य दोहा है जिसे जन्मतिथि के प्रमाण स्वरूप माना जाता है। जगन्नाथ दास रत्नाकर ने अपने लेख में इसका जिक्र किया जो नागरी प्रचारिणी पत्रिका (भाग 8, अंक 2) में प्रकाशित है। ज्योतिष गणना के अनुसार यहाँ दिन और तिथि में समानता नहीं मिलती है फिर भी इसे उदाहरण स्वरूप स्वीकार गया है।

"संवत जग सर रस सहित, भूमि रीति जिन लीन्ह।
कातिक सुदी बुध अष्टमी, जन्म हमहि बिधि दीन्ह।।"

बिहारी के पिता का नाम केशवराय था। कुलपति मिश्र ने 'संग्राम-सार' के आरंभ में एक दोहा लिखा है जिसमें अपने नाना का उल्लेख करते हुए उन्होंने 'केशवराय' नाम को रखा है। कुलपति मिश्र बिहारी की बहन के बेटे हैं।

"कविवर मातामह सुमिरि केसव केसवराइ। कहों कथा भारत्थ की, भाषा-छंद बनाइ।।"

ओड़छा में कवि केशवदास के संपर्क में रहकर इन्होंने काव्य ग्रंथों का अध्ययन किया। ओड़छा के समीप ही गुढौग्राम इनका निवास स्थान था। इन्होंने प्राकृत और संस्कृत भाषाओँ के साथ काव्यग्रंथों का भी अध्ययन किया। इनके पिता, गुढौग्राम निवासी नरहरिदास को अपना गुरु मानकर, उनके शिष्य बने थे। संवत 1664 में जब कवि केशवदास ने ओड़छा छोड़ा तब ये पिता-पुत्र वहां से वृंदावन आ गए। यहाँ उन्होंने अध्ययन के साथ संगीत साधना भी की। लगभग संवत 1675 में शाहजहाँ वृंदावन आया। उसने गुरु नरहरिदास का दर्शन किया तथा उनके मुख से कवि बिहारी की प्रतिभा की प्रशंसा सुनी। वे प्रभावित हुए तथा बिहारी को आगरा चलने के लिए कहा। बिहारी ने आग्रह स्वीकार किया। आगरा आने के बाद उन्होंने उर्दू और फ़ारसी का अध्ययन भी किया। यहीं उनकी मुलाकात अब्दुर्रहीम खानखाना से हुई। अपनी इज्जत आफजाई से लबरेज बिहारी के दोहों को सुनकर खानखाना साहब ने अपनी प्रसन्नता जताते हुए उन्हें पुरस्कृत किया। बिहारी की काव्य प्रतिभा के कायल हिंदुस्तान के कई राजे-महाराजे उन्हें ससम्मान वार्षिक वृत्ति से नवाज़ा करते थे। संवत 1678 में बेगम नूरजहाँ की कूटनीति के तहत बादशाह जहाँगीर और शहजादे शाहजहाँ के संबंधों में दरार आने लगी। इससे शहजादा की स्थिति कमजोर हुई और इसका असर उनके कृपापात्रों पर भी पड़ा। कवि बिहारी की आर्थिक स्थिति भी बिगड़ी। वे कई राजे-महाराजे पर आश्रित थे इसलिए असर ज्यादा नहीं हुआ। जोधपुर, बूंदी, आगरा, आमेर इत्यादि राज्यों से उन्हें वार्षिक वृत्ति मिल जाया करती थी। संवत 1691-92 के आसपास वे इसी सिलसिले में आमेर पधारे। वहां काफी प्रयास के बाद भी राजा से उनकी मुलाकात न हो सकी। राजा कर्तव्यच्युत होकर नई रानी के संग रास-रंग में व्यस्त रहना चाहते थे। यह स्थिति असंतोषजनक थी। महारानी अनंतकुमारी (चौहानी रानी) राजा की राज-काज के प्रति उदासीनता से अत्यंत दुखी थी। स्थिति की नजाकत को भाँपकर बिहारी ने एक दोहा बनाया और बहुत परिश्रम से उसे राजा तक किसी तरह पहुँचाया। दोहा निम्नलिखित है-

“नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल।
अली! कली हीं सौ बँध्यो, आगैं कौन हवाल।।”

इस दोहे ने राजा की सुध लौटाई। उसने प्रसन्न मन से बिहारी को पुरस्कार दिया। इस खबर को सुनकर चौहानी रानी भी बड़ी आनंदित हुईं और उन्होंने ‘काली पहाड़ी’ नामक एक ग्राम बिहारी को दे दिया। रानी के पुत्र के जन्मोत्सव पर कवि ने कुछ दोहे रचे। राजकुमार का विद्यारंभ संस्कार भी रानी ने कवि से ही कराया। उनके विद्याध्ययन के लिए इन्होंने अपने दोहों और अन्य कवियों के उपयुक्त दोहों का एक संग्रह बना दिया। राजा जयसिंह के शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के विषय पर भी इन्होंने दोहे रचे। इस प्रकार बिहारी को आमेर राज्य का आश्रय पूर्णरूपेण प्राप्त हो गया था। निःसंतान बिहारी अपने भतीजे निरंजन को ही अपना पुत्र मानते थे। 1663ई. में उन्होंने देह त्यागा।

रचना यात्रा: ‘बिहारी सतसई’ बिहारी की एकमात्र रचना है। सतसई मुक्तक काव्य परंपरा की श्रेणी में आती है। ‘बिहारी रत्नाकर’ बिहारी सतसई पर लिखी गई रत्नाकरी टीका है जिसे सबसे अधिक विश्वसनीय टीका माना जाता है। इस टीका के टीकाकार का नाम है ‘जगन्नाथ दास रत्नाकर’। इससे पहले भी बिहारी सतसई पर कई टीकाएँ लिखी गई। इनमें से कुछ हैं- कृष्णकवि

की कवित्तों वाली टीका, हरिप्रकाश टीका, लल्लूलालजी कृत लालचंद्रिका टीका, शृंगार सप्तशती (परमानंदजी कृत संस्कृत टीका), सरदार कवि की हस्तलिखित टीका इत्यादि। इन टीकाओं में दोहों का क्रम एक-सा नहीं है।

रचनाओं का परिचय: बिहारी की एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' प्राप्त होती है। माना जाता है कि यह कृति 1662ई. में पूर्ण हुई। इसमें 713 दोहे हैं। दोहों की यह संख्या मानसिंह एवं रत्नकुँवरि द्वारा लिखी गई दो टीकाओं के आधार पर निर्धारित की गई है। इस पुस्तक के बारे में जयपुर में यह प्रसिद्ध है कि इसे 'बिहारी ने कुँवर रामसिंह के पढ़ने के निमित्त लिखवा दिया था, जिनको वे स्वयं पढ़ाते भी थे। इनमें 500 दोहे तो आदि में उन्होंने अपने रक्खे थे, और फिर थोड़ी-थोड़ी कविता अन्य कवियों की संग्रह कर दी थी।' बिहारी ने अपने दोहों का कोई क्रम स्वयं निर्धारित नहीं किया था। कोविद कवि ने पहले पहल संवत 1772 में सतसई के दोहों का क्रम निश्चित किया था और उसके अंत में एक दोहा लिखा था-

किए सात सौ दोहरा, सुकवि बिहारिदास।
बिनहिं अनुक्रम ये भए, महि-मंडल सुप्रकाश।।

इससे स्पष्ट है कि बिहारी ने अपने दोहों का कोई क्रम निश्चित नहीं किया। उनके मुक्तक पूर्ण मुक्त हैं। सतसई के दोहों का क्रम उनका रचनाक्रम है। इसमें प्रत्येक 10-10 या 20-20 दोहों के बाद एक दोहा भक्ति या नीति से संबंधित दिया गया है। डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार "'बिहारी सतसई' गाथासप्तशती, आर्या सप्तशती, अमरुकशतक आदि ग्रंथों की प्रेरणा से निर्मित एक विविध रत्नमाला है; जिसकी आभा के सामने आज भी कोई मुक्तक काव्य ठहर नहीं पाता। मुक्तक-परंपरा में बिहारी का स्थान शीर्ष पर है। 'सतसई' में बिहारी ने अलंकार, रस, भाव, नायिकाभेद, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, गुण आदि का ध्यान रखकर सुंदर दोहे रचे हैं। ...डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार यूरोप में 'बिहारी सतसई' के समकक्ष कोई रचना नहीं है।"

उनका यह ग्रंथ सफलता से पूर्ण हो इसके लिए कवि बिहारी ने ग्रंथ के आरंभ में ही राधा नागरि से भव-बाधा हरने की प्रार्थना करते हैं। मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ। जा तन की झाईं परै स्यामु हरित-दुति होइ।।

शृंगार के संचारी भाव का चित्रण:

सघन कुंज, छाया सुखद, शीतल मंद समीर। मन है जात अजौ वहै, वा जमुना के तीर।।

रूप वर्णन का चित्रण:

जुवति जोन्ह मैं मिली गई, नैंक न होति लखाई। सौन्धें कैं डोरें लगी अली चली संग जाई।।

अर्थात : सखी कहती है देखो यह युवती अपने शरीर की गोराई के कारण चाँदनी के प्रकाश में मिल गई है। यह जरा भी दिखाई नहीं देती है। इसलिए इसको देखकर इसके साथ नहीं चल सकते। यदि इसके साथ चलना है तो हे सखी इसके शरीर के सुगंध के सहारे ही चलना होगा।

विरह का चित्रण :

होमति सुखु, करि कामना तुमहिं मिलन की, लाल।
ज्वालामुखी सी जरति लखि लगनि अगिनि की ज्वाल।।

अर्थात : पुर्वनुरागिनी नायिका की सखी या दूती नायक से विरह निवेदन करती हुई कहती है कि हे लाल, वह अनुराग रूपी अग्नि की ज्वालामुखी सी ज्वाला को प्रज्ज्वलित देखकर, तुमसे मिलने की कामना करके, अपने सुख को उसमें होमती है।

भक्ति और नीति का चित्रण :

जम-करी-मुँह तरहरि पर्यो, इहिं धरहरि चित लाउ।
विषय तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुण गाऊं।।

अर्थात: कवि बिहारी अपने मन में कहते हैं कि तू यम रूपी हाथी के मुंह के नीचे पड़ा हुआ है। इस निश्चय पर चित्त लगा और अब भी विषय तृष्णा को छोड़कर नरहरि के गुणों का गान कर।

नीति का चित्रण :

दीरघ साँस न लेहि दुःख, सुख सांई हिं न भूली। दई दई क्यों करतु है दई दई सु कबूलि।।

अर्थात : तू इस विपत्ति में हा दैव-हा दैव क्यों कर रहा है। जो दैव ने दिया है तुम उसको सहन करो। दुःख में लंबी साँसें मत लो और सुख में स्वामी को मत भूलो।

कृष्ण को उलाहना :

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागि जगत-गुरु , जग-नाइक जग बाइ।।

अर्थात: हे श्याम मैं बहुत समय से दीनता भरी आवाज से तुम्हें पुकार रहा हूँ। पर तुम सहाय नहीं होते हो। लगता है तुमको भी जगद्गुरु! जगन्नायक! जगत की हवा लग गई है। यानी निर्दय संसार निवासियों का प्रभाव भी तुम पर पड़ गया है। जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए था। क्योंकि गुरु तथा नायक का प्रभाव सामान्य जन पर पड़ना चाहिए था। जबकि यहाँ उल्टा हुआ। उनका प्रभाव जगन्नायक पर पड़ गया।

बोध प्रश्न

- बिहारी सतसई की रचना का आधार क्या है?
- इस ग्रंथ पर कौन-कौन सी टीका लिखी गई? सबसे अधिक विश्वसनीय किस टीका को माना जाता है?

9.3.4 सूरदास, तुलसीदास और बिहारी का हिंदी साहित्य में स्थान एवं महत्व

हिंदी कविता की धारा को प्रवाहमान बनाए रखने में सूरदास, तुलसीदास और बिहारी का स्थान अन्यतम है। सूरदास के पद ब्रजभाषा में रचे गए हैं। इनसे पहले इस भाषा में ऐसा साहित्य उपलब्ध नहीं था और ना ही ब्रजभाषा का स्वरूप इतना सुघड़ और उन्नत था। सर्वश्रेष्ठ कीर्तनकार सूरदास अपने सहयोगियों के साथ 'पुष्टिमार्गीय सेवा-विधि में भी पूर्ण सहयोग देते थे।... अष्टयाम की सेवा- मंगलाचरण, शृंगार, ग्वाल, राजयोग, उत्थापन, भोग, संध्या-आरती और शयन को इस संप्रदाय में बड़े समारोह से स्वीकार किया गया है। अष्टछाप की स्थापना 1565ई. में हुई।' डॉ. विजयेंद्र स्नातक के अनुसार 'सूर की ब्रजभाषा में चित्रात्मकता, आलंकारिकता, भावात्मकता, सजीवता, प्रतीकात्मकता तथा बिंबात्मकता पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। ब्रजभाषा को ग्रामीण जनपद से हटाकर उन्होंने नगर और ग्राम के संधिस्थल पर ला बिठाया था। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग करने पर भी उनकी मूल प्रवृत्ति ब्रजभाषा को सुंदर

और सुगम बनाए रखने की ओर ही थी। ब्रजभाषा की ठेठ माधुरी यदि संस्कृत और अरबी-फारसी के शब्दों के साथ सजीव शैली में जीवित रही है, तो वह सूर की भाषा में ही है। अवधी और पूरबी हिंदी के भी शब्द उनकी भाषा में हैं। कतिपय विदेशी शब्द भी यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाते हैं। भाषा की सजीवता के लिए मुहावरों और लोकोक्तियों का पुट उनकी भाषा का सौंदर्य है। भ्रमरगीत के पदों में तो अनेक लोकोक्तियाँ मणिकांचन संयोग की तरह अनुस्यूत हैं।' सूर की संगीतात्मक अभिव्यंजना से जहाँ मधुर भाव व्यंजित हुए हैं वहीं भाषा भी प्रवाहमान बनी रही है। सूरदास के काव्य में वात्सल्य और प्रेम दोनों की सघनता है।

सूर की भांति तुलसी ने भी पारिवारिकता को प्रधानता दी है। पारिवारिक चित्रण में वे सूर से आगे बढते हुए इसमें सामंजस्य बिठाने हेतु संघर्ष का चित्रण करते हैं। परिवार की आंतरिक स्थिति की मधुरतम व्यंजना सूर के काव्य में हुई है। तुलसी ने आंतरिक व्यवस्था के साथ बाह्य जीवन के संघर्षों को भी उभारा है। तुलसी का काव्य संतुलन और सामंजस्य का काव्य है। वे विपरीतता का समन्वय करने में सिद्धहस्त हैं, उदाहरण- विविध मतों और संप्रदायों का समन्वय, ज्ञान-भक्ति और कर्म का समन्वय, सगुण-निर्गुण, ऐश्वर्य-वैराग्य, काव्य-मोक्ष शास्त्र तथा पारिवारिक-सांस्कृतिक-सामजिक समन्वय इत्यादि। जायसी और सूर की क्रमशः ठेठ अवधी और ठेठ ब्रज से भिन्न सार्वदेशिक साहित्यिक भाषा है। ब्रज और अवधी भाषा पर समान अधिकार रखने वाले तुलसी की काव्यशैली के संदर्भ में डॉ. नगेंद्र का मत है कि, "भाव वैविध्य के अनुरूप शैली-वैविध्य भी गोस्वामी जी की विशेषता है। अपने समय में प्रचलित वीरगाथा की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीति पद्धति, गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया-पद्धति, नीतिकाव्यों की सूक्तिपद्धति, प्रेमाख्यानों की दोहा-चौपाई की प्रबंध पद्धति आदि सभी काव्य-शैलियों का सफल प्रयोग उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। प्रबंध-सौष्ठव, चरित्र-चित्रण, प्रकृति-वर्णन, अलंकार-विधान, भाषा और छंदप्रयोग की दृष्टि से भी वे अद्वितीय कलाकार हैं। उक्ति-वैचित्र्य उनकी प्रमुख विशेषता है।"

उत्तर मध्यकाल के कवि 'बिहारी' दरबारी परंपरा के कवि हैं। शास्त्रीयता इनकी कविताओं में सहज समाविष्ट है। इसीलिए इन्हें रीतिसिद्ध कहा जाता है। विद्वानों के अनुसार ये युवावृत्ति एवं संयोग शृंगार के चित्रण में सिद्धहस्त हैं। इनकी कविताओं में सौंदर्य और प्रेम क्रीड़ा की मनोरम झांकी उपलब्ध है। 'बिहारी सतसई' में शृंगार के साथ भक्ति और नीति के दोहे भी न्यूनाधिक मात्र में है। इस कृति में ब्रजभाषा के प्रौढ़ स्वरूप का दर्शन होता है। शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक और आडंबरहीन है। दोहों की संगीतमय अभिव्यक्ति एवं इन अभिव्यक्तियों में निर्दिष्ट शारीरिक चेष्टाएँ इन्हें नृत्योपयोगी बताते हैं। लय और गति संपन्न 'उनकी भाषा प्रांजल, प्रौढ़, मधुर और सरस है। निम्नलिखित उदाहरण इसके प्रमाण हैं:

अंग-अंग नग जगमगति, दीप सिखा-सी देह। दीया बुझाए हूं रहै, बड़ो उजेरो गेह।।
रस सिंगार मंजन किये, कंजन भंजन दैन। अंजन रंजन हूं बिना, खंजन गंजन नैन।।

उपर्युक्त दोहों से स्पष्ट है कि भाव, अनुभूति और चेतना को बिहारी किस प्रकार मार्मिक शब्दों और प्रभावशाली बिंबों में प्रकट करने की क्षमता रखते हैं।' (डॉ. भगीरथ मिश्र)।ब्रजभाषा पर उनके असाधारण अधिकार और उनकी वाग्वैदग्धता जिसका निर्वाह बिहारी सतसई में आदि

से अंत तक उन्होंने किया है; उनकी इस एकमात्र कृति को हिंदी साहित्य गौरव बनाती है। सूरदास, तुलसीदास और बिहारी ने उस युग में आपसी व्यवहार की भाषा का संस्कार कर उसका साहित्यिक प्रयोग किया। सूरदास ने ब्रजभाषा का शिष्ट-सामान्य रूप काव्यभाषा के लिए स्थिर किया। अवधी का साहित्यिक प्रयोग पहले ईश्वरदास की 'सत्यवती कथा' में किया गया और उसके बाद प्रेममार्गी शाखा के मुसलमान कवियों की कहानियों में यह भाषा देखने को मिली। तुलसीदास ने ब्रज और अवधी- दोनों ही भाषाओं को अपनी काव्य प्रतिभा से समुन्नत किया। हिंदी काव्य-क्षेत्र में उनका प्रादुर्भाव एक चमत्कार माना जाता है।

बोध प्रश्न

- हिंदी साहित्य की समृद्धि में सूरदास का अवदान क्या है?
- तुलसीदास के काव्य की भाषिक विशिष्टता को रेखांकित करें।
- बिहारी सतसई की सफल पूर्णता के लिए कवि ने किससे निवेदन किया?

9.4 पाठ सार

हिंदी साहित्य के पूर्व मध्यकाल का युगीन परिवेश आक्रमणकारियों के हमलों से आतंकित था। लंबे समय से सत्तासीनों के पैरों तले आम जनता दबी-कुचली जा रही थी। इसका विस्तृत अध्ययन देश के मध्यकालीन इतिहास से संबंधित पुस्तकों में किया जा सकता है। भक्ति के सूत्र से आचार्यों ने इस आम जनता के भीतर शक्ति का मंत्र फूंका। इष्ट देव के रूप में एक रक्षक मिला। इस रक्षक के साथ मध्यकालीन भक्त कवियों ने आत्मीय प्रगाढ़ता रची। सूरदास दास्य भक्ति भाव में तन्मय थे। आचार्य वल्लभ के साथ गउ घाट पर हुई भेंट से उनकी भक्ति का स्वरूप सख्य और मधुर भाव में परिवर्तित हो गया। इनके माधुर्य और शृंगार प्रधान काव्य की व्यापकता इसी से आंकी जा सकती है कि बंगाल में जब भी कोई वैष्णव कवि मधुर भावों की शृंगारिक रचना को देखता है तो उस रचना को सहसा ब्रजभाषा या ब्रज बूलि मान लेता है। दिव्य पात्रों की लौकिक लीला का वर्णन मानक ब्रजभाषा में ही संभव है। राधा और कृष्ण की प्रेम लीला के सौंदर्य का ठोस चित्रण सूरदास ने किया है। इस चित्रण में उन्होंने तटस्थता बरती है। 'सूर साहित्य' पुस्तक में उल्लेख है कि अतिप्राकृत में प्राकृत सौंदर्य, सीमाहीन में ससीम माधुर्य और अंतहीन में शांत भाव देखना ही इस कवि की साधना है।' इस विचित्र और अनुपम मनोभाव के साथ ही ब्रजभाषा के साहित्य की सृष्टि हुई है। 'सूरसागर' की रचना का आधार यही मनोभाव है। सूरदास मोहन-राधा के रास के साक्षी हैं, उनकी लीलाओं के द्रष्टा मात्र हैं और कवि के रूप में उन्हें इन लीलाओं का तटस्थ सूत्रधार भी कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त साहित्यलहरी और सूरसारावली भी इनकी कृतियाँ है। इन्होंने ब्रजभाषा का साहित्यिक रूप निश्चित किया।

रामोपासक कवि तुलसीदास की भक्ति दास्य भाव की थी। इनके छोटे-बड़े प्रामाणिक माने गए 12 ग्रंथ हैं। इनमें 'रामचरितमानस' ही इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। सात कांडों में श्रीराम के जीवन की सारी कथा कहते हुए कवि मानवीय संबंधों में प्रेम और सामजिक जीवन में मर्यादा तथा व्यवस्था की स्थापना करते हैं। इनका बचपन अभावों में बीता। गुरुकृपा से बचपन में ही राम नाम का सान्निध्य इन्होंने पा लिया। बिहारी का समय हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में पड़ता है। इन्होंने प्रेम और शृंगार से परिपूर्ण मात्र एक रचना रची जिसका नाम है-

बिहारी सतसई। इसमें कुल 713 दोहे हैं। इस ग्रंथ पर कई टीकाएँ मिलती हैं पर सबसे अधिक प्रामाणिक टीका बिहारी रत्नाकर है। बिहारी के शृंगारी दोहों में नख-शिख वर्णन, नायिका भेद और षटऋतु वर्णन आ जाता है। उन्होंने कोई लक्षण ग्रंथ अलग से नहीं लिखा है। इनकी सतसई पाठकों पर कोई मार्मिक प्रभाव नहीं छोड़ती पर इसमें वाक्य विन्यास और काव्यकला की निपुणता प्रभावी है। आचार्य शुक्ल के अनुसार बिहारी ने शब्दों के रूपों का प्रयोग एक निश्चित प्रणाली पर किया है। हिंदी साहित्य में सूरदास कृष्ण भक्तकवियों के और तुलसीदास राम भक्तकवियों के सिरमौर तथा बिहारी रीतिकालीन मनोवृत्ति के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं।

9.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. सूरदास के दीक्षागुरु वल्लभाचार्य शुद्धाद्वैतवाद दर्शन के प्रतिष्ठापक थे। श्रीनाथजी की सेवा के लिए इन्होंने प्रेम और माधुर्य से संपन्न रागानुगा भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। भक्त शिरोमणि सूरदास इनके शिष्य बनकर रोज नए प्रेमरस से पूर्ण भक्तिमय पदों को रचते और गाते। उनकी ये रचनाएँ हिंदी साहित्य की कीर्ति को बढ़ा रही हैं।
2. सूरदास ने शुद्धाद्वैत दर्शन के सिद्धांतों को पद के रूप में जन-जन से जोड़ा। इनके पदों की काव्यात्मक और संगीतात्मक अभिव्यक्ति ने लोक-जीवन को आकृष्ट किया।
3. रामोपासक कवि तुलसीदास की भक्ति दास्य भाव की है। 'रामचरितमानस' इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसमें राम को मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है और उन्हें परात्पर ब्रह्म का अवतार दर्शाया गया है।
4. तुलसीदास ने अवधी भाषा की प्रवृत्ति को आत्मसात करके तत्सम शब्दों का भी अवधीकरण किया है। इनका ब्रजभाषा पर भी समान अधिकार था।
5. बिहारी रीतिकालीन काव्यभाषा के प्रतिनिधि स्रष्टा हैं। इन्होंने शृंगार के साथ नीति और भक्ति के दोहे भी रचे हैं।

9.6 शब्द संपदा

1. अंतःसाक्ष्य = रचयिता की कृति से प्राप्त साक्ष्य
2. अष्टछाप = सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास एवं नंददास की मंडली जो श्रीनाथ जी की सेवा में समर्पित थी।
3. द्वैताद्वैत = इस सिद्धांत के प्रतिष्ठापक निम्बार्काचार्य हैं। इसके अनुसार भक्ति का अर्थ शुद्धचित्त और निःस्वार्थ भाव से ईश्वर के प्रति प्रेम संचरण
4. पुष्टिमार्ग = भक्तिमार्ग जिसमें भक्त को भगवान की कृपा पर भरोसा होता है।
5. बाह्य साक्ष्य = रचयिता की कृति के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से प्राप्त साक्ष्य।
6. रीति = काव्यशास्त्र की विशिष्ट पद्धति का निर्वाह करते हुए रचना करना।
7. शुद्धाद्वैतवाद = दार्शनिक सिद्धांत जिसमें आत्मा और पदार्थ दोनों ब्रह्म की वास्तविक अभिव्यक्ति हैं। इसके प्रतिष्ठापक वल्लभाचार्य हैं।

9.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. गोस्वामी तुलसीदास का जीवन परिचय दीजिए।
2. तुलसीदास की प्रमुख रचनाओं का परिचय दीजिए।
3. भक्त कवि सूरदास से आचार्य वल्लभाचार्य के प्रथम भेंट की चर्चा कीजिए। इस भेंट से सूरदास के जीवन में क्या परिवर्तन हुआ?
4. 'सूरदास, तुलसीदास और बिहारी' - इन कवियों के साहित्यिक अवदान के आधार पर हिंदी साहित्य में इनका स्थान सुनिश्चित कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. कवि बिहारी का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. भक्तकवि सूरदास के ग्रंथों का परिचय दीजिए।
3. सूरदास का जीवन परिचय दीजिए।
4. बिहारी की रचनाओं पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. सूरसागर में कितने स्कंध हैं? ( )

   (अ) 10 (आ) 9 (इ) 12 (ई) 1
2. 'भ्रमरगीतसार' सूरसागर के किस स्कंध में है? ( )

   (अ) 9 (आ) 8 (इ) 10 (ई) 11
3. सूरदास, तुलसीदास और बिहारी के प्रामाणिक ग्रंथों की संख्या क्रमशः ...है। ( )

   (अ) 3, 12, 1 (आ) 1, 3, 12 (इ) 25, 35, 1 (ई) 14, 10, 1

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. पुष्टिमार्ग का जहाज ....को ....ने कहा।
2. ....को पहले ....का और बाद में आमेर के राजा .... का राज्याश्रय प्राप्त था।
3. ....कृष्ण गीतावली के रचयिता हैं।
4. केशवदास ....के गुरु हैं।

III सुमेल कीजिए

1. बिहारी रत्नाकर	(अ) कवितावली
2. अगीत मुक्तक काव्य	(आ) दृष्टिकूट पद
3. प्रबंध काव्य	(इ) बिहारी सतसई
4. साहित्य लहरी	(ई) लोकशैली
5. रामललानहछू	(उ) रामचरितमानस

9.8 पठनीय पुस्तकें

1. बिहारी की वाग्विभूती : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
2. बिहारी रत्नाकर : जगन्नाथ दास रत्नाकर
3. गोस्वामी तुलसीदास : सीताराम चतुर्वेदी
4. मध्यकालीन काव्य धाराएँ एवं प्रतिनिधि कवि : बलराज शर्मा
5. गोस्वामी तुलसीदास : रामचंद्र शुक्ल
6. सूर साहित्य : हजारी प्रसाद द्विवेदी

इकाई 10 : सूरदास : भ्रमरगीत सार

रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 मूल पाठ : सूरदास : भ्रमरगीत सार
10.3.1 कहियो नन्द कठोर भए
10.3.2 आयो घोष बड़ो व्योपारी
10.3.3 लरिकाई को प्रेम, कहौ अलि, कैसे करिकै छूटत?
10.3.4 अँखियाँ हरि-दरसन की भूखी
10.3.5 निर्गुन कौन देस को बासी?
10.4 पाठ सार
10.5 पाठ की उपलब्धियाँ
10.6 शब्द संपदा
10.7 परीक्षार्थ प्रश्न
10.8 पठनीय पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

भ्रमर गीत प्रसंग श्री कृष्ण की भक्ति से जुड़ा है। यह प्रसंग 'श्रीमदभागवत' का है। इस पुस्तक के दशम स्कन्ध में यह वर्णन केवल संकेत रूप में आता है। बहुत से भक्त कवियों ने इस प्रसंग से प्रेरणा लेकर अनेक पदों की रचना की। सूरदास जी द्वारा रचित 'सूरसागर' के 12 स्कंधों में कृष्ण लीला की जो कथा है, उसमें से दसवें स्कन्ध में 'भ्रमर गीत' है। 'भ्रमर' का अर्थ है -भौंरा। श्रीकृष्ण को मथुरा में गोकुल और गोप-गोपियों की याद आती है। वे अपने मित्र उद्धव को ब्रज भूमि जाकर उन्हें संदेश देने को कहते हैं। ब्रह्म ज्ञान के अभिमानी उद्धव का संदेश और उपदेश पाकर गोपियां उन्हें बहुत बेबाकी से उत्तर देती हैं। वे सीधे जवाब नहीं देतीं, बल्कि फूलों पर मंडराने वाले भ्रमर को संबोधित करके अपने दिल का सारा हाल बता देती हैं ।

'सूरसागर' के प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त है, पर दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग 'कृष्ण की बाल-लीला' और 'भ्रमरगीत-प्रसंग' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसके विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है, सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है। आचार्य शुक्ल ने लगभग 400 पदों को सूरसागर के भ्रमरगीत से छांटकर उनको 'भ्रमरगीत सार' के रूप में संग्रह किया था।

आपको हिंदी साहित्य की 'भ्रमर गीत' परंपरा और दर्जनों 'उद्धव शतक' ग्रन्थों में से इसी एक में दिये गए केवल पाँच पदों की सप्रसंग व्याख्या यहाँ अध्ययन करनी है। ये सब पद सूरदास द्वारा रचित हैं और इनकी क्रम संख्या (2, 23, 34, 42, 64) इतिहासकार और समीक्षक आचार्य

रामचन्द्र शुक्ल की संपादित पुस्तक के आधार पर है। ये पद भी आपको दिए जा रहे हैं। आप इस बात का ध्यान रखते हुए इन पदों को पढ़ेंगे कि ये आज की हिंदी में नहीं बल्कि हिंदी के पुराने रूपों में से एक ब्रज भाषा में हैं । आप यह तो जानते ही हैं कि सूरदास सगुण भक्ति मार्गी कवि हैं। अब आप भक्त शिरोमणि सूर के सगुणोपासना निरूपण के उद्देश्य से लिखे गए इन पाँच पदों की व्याख्या का पाठ करें जिससे आप भी उनके हृदय की अनुभूति को महसूस कर सकेंगे।

महाकवि सूरदास के भ्रमरगीत प्रसंग के संबंध में आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, 'सूर सागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश 'भ्रमर गीत' है जिसमें गोपियों की वचनवक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। ऐसा सुंदर उपालंभ-काव्य और कहीं नहीं मिलता।' इतना ही नहीं, आचार्य शुक्ल तो सूर के परवर्ती इस संबंध की सभी उक्तियों को उनकी जूठन बता देते हैं, "यह रचना (भ्रमर गीत) इतनी प्रेमतम और काव्यांगपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की झूठी-सी जान पड़ती हैं।" वस्तुतः सूर का 'भ्रमरगीत' उनके सारे 'सूरसागर' में भी अनूठा और सर्वाधिक मार्मिक है। इन पदों के आधार पर ऐसी कई उक्तियों को परखना भी अच्छा रहेगा ।

10.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- सूरदास रचित 'भ्रमर गीत' के निर्धारित पदों की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकेंगे।
- सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति के द्वंद को गोपियों और उद्धव के तर्क के द्वारा समझ सकेंगे।
- गोपियों की वचनवक्रता और कृष्ण के प्रति भक्ति का ध्यान रखते हुए पदों का पाठ कर सकेंगे।
- इन पदों के अध्ययन के द्वारा इस प्रसंग की खुद तार्किक समीक्षा कर सकेंगे।
- सूरदास के कवित्व को रेखांकित कर सकेंगे।

10.3 मूल पाठ : सूरदास : भ्रमरगीत सार

कृष्ण का संदेश लेकर जाने से पहले उद्धव को कृष्ण कुछ समझाते हैं।

10.3.1 कहियो नन्द कठोर भए

श्री कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोकुलवासी उनके वियोग से दुखी हो गए। नन्द, यशोदा, ग्वाल और गोपियाँ सभी उनके वियोग में व्याकुल थे। गोपियाँ कृष्ण से प्रेम करती थीं, इसलिए उनकी वेदना अधिक थी। उधर कृष्ण को भी मथुरा में गोपियों की याद आती थी। गोपियों के प्रेम का भी उन पर प्रभाव था। कृष्ण के एक मित्र थे। उनका नाम उद्धव था। वे प्रेम मार्ग को तुच्छ समझते थे और ज्ञानमार्ग के सिद्धांतों का बड़े गर्व और घमंड से प्रचार करते थे। श्री कृष्ण ने उनके घमंड को चूर करने के लिए और गोपियों को प्रसन्न करने के लिए उन्हें गोकुल भेजा। उद्धव का काम था कृष्ण के संदेश को पहुंचाना। अब आप एक एक पद को पढ़िए।

कहियो नन्द कठोर भए
हम दोउ बीरौ डारि पर-घरे मानो थाती सौंपि गए।

तनक तनक तै पालि बड़े किए बहुतै सुख दिखराए।
गोचारन को चलत हमारे पाछे कोसक धाए।
ये बसुदेव देवकी हमसों क़हत आपने जाए।
बहुरि बिधाता जसुमतिजू के हमहिं न गोद खिलाए।
कौन काज यह राज, नगर को सब सुख सों सुख पाए?
सूरदास ब्रज समाधान कर आजु काल्हि हम आए।

शब्दार्थ : बीर = भाई, बीरें = भाइयों को, पर-घरै = दूसरे के घर, मथुरा में, थाती = धरोहर, कोसक = कोस तक की दूरी, समाधान =तसल्ली।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में कृष्ण उद्धव को समझाते हुए कह रहे हैं कि उन्हें गोकुल में जाकर क्या क्या करना है और वे उन्हें यह अच्छी तरह समझाते हैं कि वे नन्द जी से जाकर कुछ बातें स्पष्ट करके खुलकर कह दें।

व्याख्या : श्री कृष्ण जी अपने मित्र उद्धव से कहते हैं कि वे नन्द जी से जाकर कहें कि वे कठोर हो गए हैं। कठोरता का कारण यह है कि वे हम दोनों भाइयों को (श्री कृष्ण और बलराम को) मथुरा में इस तरह छोड़कर चले गए जैसे कोई अपनी धरोहर को वापिस देकर निश्चिंत होकर बैठ जाता है। बचपन में उन्होंने हमें बहुत सुख दिये। हमारा पालन पोषण तभी से किया जब हम छोटे थे। उन्होंने हमें इतना बड़ा किया। गोकुल में रहते हुए उनका इतना अधिक स्नेह था कि जब हम गौओं को चराने जाया करते थे तो एक-एक कोस तक हमारे साथ ही चले आया करते थे। अब मथुरा में आने पर उनका वह स्नेह नहीं रहा, ऐसा लगता है। वसुदेव और देवकी यहाँ पर हमें अपना पुत्र बतलाते हैं और साथ ही यह भी कहते हैं कि हमें यशोदा ने जरूर गोद खिलाया है। पर यहाँ कोई हमें उनका पुत्र नहीं समझता। फिर यह शानोशौकत और यह राज-पाट किस काम का है? किसी काम का नहीं है। हमने यहाँ जो सुख और आराम प्राप्त किया वह वास्तविक सुख नहीं है। सूरदास जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा कि तुम ब्रजवासियों की तसल्ली इस तरह से कह कर कर देना कि हम आजकल में ही आने वाले हैं। अर्थात गोकुल को शीघ्र आने वाले हैं।

विशेष : 'मानो थाती सौंपि गये' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

बोध प्रश्न

- श्री कृष्ण की नन्द बाबा से शिकायत क्या है?
- क्या यह शिकायत वाजिब है?

10.3.2 आयो घोष बड़ो व्योपारी

कृष्ण का संदेश लेकर उद्धव गोपियों के पास तक तो जा पहुँचते हैं किन्तु उनकी बातों का कोई प्रभाव गोपियों पर नहीं पड़ता। बल्कि उनका हृदय जैसे उमड़ पड़ता है। वे अपने मन के भावों को हास्य, व्यंग्य, वक्रोक्ति, अन्योक्ति, उपहास, परिहास, उपालंभ आदि अनेक तरहों से खुलकर प्रकट करती हैं। इन्हीं तत्वों के मेल को 'वाक्-वैदग्ध्य' कहते हैं। इसी को अँग्रेजी में 'विट' कहते हैं। इसे आप मौके पर चोका लगाना कह सकते हैं। भोली भाली गोपियों से सूरदास जी ने

न जाने कितनी बातें कहलवा दीं जो उनकी इसी विदग्धता का प्रमाण है। वचन-चातुरी का प्रमाण निम्नलिखित पद भी है, देखें -

निम्नलिखित पद संख्या 23 का अब पाठ करें। इसमें गोपियों की बेबाकी और साफ़गोई देखते ही बनती है।

आयो घोष बड़ो व्योपारी।
लादि खेप गुन ज्ञान-जोग की ब्रज में आय उतारी।
फाटक दै कर हाटक मांगत भौरै निपट सु धारी।
धुर ही तें खोटो खायो है लये फिरत सिर भारी।
इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी?
अपनो दूध छाडि को पीवै खार कूप को पानी।
ऊधो जाहु सबार यहाँ तें बेगि गहरु जनि लावौ।
मुँहमांग्यौ पैहो सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ।

शब्दार्थ : घोष = ग्वालों का गाँव, खेप = माल का बोझ, फाटक = अनाज फटकने से निकाला हुआ अन्न, फटकन, धारी = समझकर, धुर = मूल, आरंभ, डहकावै = सौदे में धोखा खाना, ठगाए गए, सबार = सवेरे, गहरु = विलंब, देर।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में गोकुल की गोपियों को निर्गुण ब्रह्म के उपदेश में थोड़ी भी रुचि नहीं इसीलिए वे उद्धव को कई तरह से फटकारती हैं। यह पद गोपिकाओं के द्वारा उद्धव की फटकार ही है।

व्याख्या : गोपियाँ उद्धव को लक्ष्य करके उलहाना देती हैं। वे उद्धव को ज्ञान-योग रूपी सस्ते माल का बेचने वाला व्यापारी कहकर आपस में बातें करती हैं। हमारे इस ग्वालों के गाँव में एक बड़ा व्यापारी आया है। वह बेचने के लिए ज्ञान और योग का भरी बोझ लाया है। पर यह व्यापारी है बहुत चालाक। वह अपने सस्ते सौदे को बहुत अधिक दाम में बेचकर हमें बेवकूफ बनाना चाहता है। उसके पास केवल फटकन ही है पर वह उसे सोने के मूल्य में देना चाहता है। कहने का अर्थ है कि उद्धव के ज्ञान-योग की बातें गोपियों की नज़र में बेकार हैं। वह इस निर्गुण ज्ञान के बदले सगुण कृष्ण को भूलने को कहता है, जो उसकी भूल है। गोपियाँ उद्धव को कहती है कि इस व्यापारी ने ऐसे सामान को लेकर शुरू से ही नुकसान उठाया है। कोई खरीदार उसे कभी न मिल पाया है, और यहाँ इसके मिलने के कोई आसार नहीं हैं। वह बेकार ही अपने इस ज्ञान का बोझा सिर पर उठाए फिरता है। इस नासमझ व्यापारी को कौन समझाये कि ब्रज में सब समझदार हैं, कोई मूर्ख न तो है और न बनेगा। ये गोपिकाएँ कह देती हैं कि वे इस विचारधारा की खरीदार नहीं हैं। मुफ्त में भी वे इसे न लेंगी। भला ऐसा कौन होगा जो गाय के शुद्ध दूध को छोड़कर खारे कुए का पानी पिएगा (यहाँ श्री कृष्ण जी मधुर दुग्ध हैं और निर्गुण ब्रह्म की चर्चा खारे कुए का बेस्वाद पानी)।

हे उद्धव! तुम यहाँ से जल्दी से जल्दी रवाना हो जाओ। देर न करो। सूरदास जी कहते हैं कि गोपिकाएँ उद्धव से अपने मन की बात कह देती हैं कि यदि उद्धव साहूकार (श्रीकृष्ण) को लाकर उनका दर्शन करा दें तो वे उन्हें मुँह माँगा ईनाम देंगी।

बोध प्रश्न

- गोपियाँ उद्धव को क्या कहकर उलाहना देतीं हैं?
- यदि इस पद में उद्धव 'घोष' हैं तो कृष्ण कौन हैं?

10.3.3 लरिकाई को प्रेम, कहौ अलि, कैसे करिकै छूटत?

आचार्य शुक्ल ने कहा था कि गोपियों को किस बात को कहने के न जाने कितने टेढ़े सीधे ढंग उन्हें मालूम थे। उद्धव जब गोपियों से बार-बार निर्गुण ब्रह्म के ध्यान के द्वारा विषय-वासना से वैराग्य का उपदेश देते हैं तो वे कहती हैं कि हम भोली भाली स्त्रियाँ के साथ टेढ़े पेश आ रहें हैं। लगता है यही इनका स्वभाव है। गोपियों ने इन टेढ़े सवालों का सीधा जवाब न देकर कुछ इस प्रकार देते हैं कि पढ़ने वाला आज भी रस और आनंद से भर जाता है। बचपन का प्यार है गोपियों का श्री कृष्ण से। फिर कोई ऐसे प्यार को कैसे भूल सकता है। सीधे उद्धव को न संबोधित करके गोपियाँ अलि अर्थात भँवरे (भ्रमर) को संबोधित करते हुए यह प्रश्न करती हैं। अब आप इस पद का पाठ देखें।

लरिकाई को प्रेम, कहौ अलि, कैसे करिकै छूटत?
कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित अब अंतरगति यौं लूटत॥
चंचल चाल मनोहर चितवनि, वह मुसुकानि मंद धुनि गावत।
नटवर भेस नंदनंदन को वह बिनोद गृह बन तें आवत।
चरन कमल की सपथ करति हौं यह संदेश मोहिं बिष सं लागत।
सूरदास मोहि निमिष न बिसरत मोहन मूरति सोवत जागत॥

शब्दार्थ : लरकाई = बचपन, अंतरगति = मन की चाल, चितवति= देखती, निमिष = कुछ समय के लिए ही।

प्रसंग : कृष्ण और गोपियों का साथ लड़कपन से रहा है। यह संबंध पुराना है और इसे भूलना संभव नहीं, यह इस पद में एक गोपी सीधे उद्धव से न कहकर अलि के माध्यम से कहती है।

व्याख्या : गोपियों के साथ श्री कृष्ण का साहचर्य बाल्यावस्था से रहा है। साहचर्य प्रेम को भूलना और भुलाना संभव नहीं। एक गोपी इसी का उल्लेख करते हुए उद्धव के सामने अपना पक्ष रखते हुए कहती है कि हे उद्धव! आप ही बतलाइए कि जिस श्री कृष्ण के साथ हमारा बचपन का संबंध है वह कैसे कर छूट सकता है। मैं ब्रज के नाथ श्री कृष्ण के चरितों का वर्णन कहाँ तक करूँ। मेरा मन उनकी बाँकी छवि ने लूट लिया था। उनकी चाल चंचलता से भरी थी। मन की चितवन को हरने वाली थी। उस समय जब वे धीरे-धीरे मुस्कराते थे और अपने घर से बाहर आकर कोई मीठा गीत गाते थे तो वह दृश्य बहुत सुंदर लगता था। जिस समय गायों को सारे दिन जंगल में चराकर वे शाम के वक्त अपने घर वापस आते थे तो उनका वेश अनोखा होता था। वे नटवर का भेस धारण किए रहते थे और उन्हें देखकर मन बेकाबू हो जाता था। उस समय के उनके व्यवहार अब भी याद आते हैं। उनकी हँसी ठिठोली की याद अब भी मन को खुश कर देती है। हे उद्धव! मैं श्री कृष्ण के कमल के समान कोमल चरणों की कसम खाकर कहती हूँ कि आपका यह निर्गुण ब्रह्म का उपदेश और संदेश मुझे जहर के समान कष्टदायक प्रतीत हो रहा है। सूरदास जी कहते हैं

कि एक गोपी यह कहने लगी कि मैं श्रीकृष्ण की मोहनी मूरत को सोते-जागते किस समय भी एक लम्हे के लिए भी नहीं भुला पाती हूँ।

विशेष :

1. लरकाई के प्रेम की चर्चा करके यहाँ कवि पाठक के मन को भी छू लेते हैं।
2. इस पद में स्मृति संचारी भाव बहुत अच्छी तरह से प्रस्तुत किया गया है।
3. शपथ खाकर अपनी-अपनी बात का विश्वास दिलाने में स्त्रीजनोपयुक्त स्वभाव का वर्णन है।

बोध प्रश्न

- प्रेम को 'लरकाई' का कहने से क्या विशेष बात हो गई है?
- उद्धव का संदेश जहर के समान है तो अमृत के समान क्या होगा?

10.3.4 अँखियाँ हरि-दरसन की भूखी

यह पद श्री कृष्ण के साकार स्वरूप के प्रति गोपियों के प्रेम को पेश करता है और बहुत प्रसिद्ध पदों में से एक है। गोपियाँ उद्धव को खुले शब्दों में बता देती हैं कि वे किसी भी तरह कृष्ण के लिए अपने प्रेम को नहीं छोड़ सकती। कोई भी चाहे कितने ही तर्क दे वे नहीं मान सकतीं। उनकी आँखें तो बस कृष्ण के दर्शन की भूखी हैं। आप इस पद को पढ़कर उनके तर्क को खुद ही देखें।

अँखियाँ हरि-दरसन की भूखी।
कैसे रहें रूपरस राची ये बतियाँ सुनि रूखी।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहीं झूखी।
अब इन जोग-संदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी।
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर सिकत हठि नाव चलाओ ये सरिता हैं सूखी।

शब्दार्थ : अवधि = समय, झूखी=संतप्त हुई, बारक=एक बार, पतूखी=पत्ते का दोना, सिकत= सिकता में, रेत में, सूर ..... सूखी = व्यर्थ बालू में नाव चलाते हो, ये सूखी नदियां हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में कवि सूरदास ने श्री कृष्ण के प्रेम लिए तड़पती हुई आँखों का बहुत मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है। सूरदास के नेत्रों पर अनेक पद लिखें हैं और यह पद उनमें से एक है, श्रेष्ठ पदों में इसकी गिनती होती है। निर्गुण ब्रह्म के उपदेश का निराकरण करने के लिए उदाहरण देकर समझाने का यह प्रयत्न बहुत सुंदर बन पड़ा है।

व्याख्या : हे उद्धव! हमारी आँखें श्री कृष्ण के दर्शनों की भूखी हैं। हमारी सबसे बड़ी इच्छा यह है कि किसी न किसी तरह से हमें श्री कृष्ण के मनोहर स्वरूप के दर्शन हो जाएँ। हमारे ये नेत्र उनके रूप सौंदर्य के लिए हमेशा प्यासे रहे हैं। ये आँखें हमेशा उनके दर्शन से अपनी प्यास बुझाती हैं। ये नेत्र कभी उन्हें देखे बिना चैन नहीं पाते। उनके बिना कैसे रह सकते हैं? गोपियाँ फिर पूछती हैं कि श्री कृष्ण के आने का वक्त कब होगा। उनका इंतज़ार करते करते उनकी आँखें थक गई हैं। आँखें टकटकी लगाकर उनका रास्ता देखती रहती हैं। पर उनकी आँखें उस वक्त उतनी नहीं थकी थीं जब वे श्री कृष्ण की राह देख रही थीं जितनी अब उद्धव की न समझ आने वाली योग-वेदान्त

की बातों से थक गई हैं। ये बातें उन्हें बेचैन कर रहीं हैं। उनके मन की बेचैनी तो क्या दूर करेंगी। हमें कृष्ण का श्री मुख फिर से दिखलाओ। वह मुख जब वे पत्तों के दोने बनाकर गाय का ताजा ताजा दूध पीते थे। वह छवि हम फिर से देखना चाहती हैं। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहने लगीं कि आप हठ पूर्वक ज़बरदस्ती रेत में नाव चला रहे हो। ये नदियां बिलकुल सूखी हैं। बेजान हैं। कहने का तात्पर्य है कि जिस प्रकार रेत में कश्ती चलना नामुमकिन है, वैसे ही गोपियों को निर्गुण ब्रह्म की उपासना का उपदेश करना और उसका उन पर थोड़ा सा भी असर होना मुमकिन नहीं है।

विशेष

1. निर्गुण ब्रह्म के उपदेश का निराकरण लौकिक व्यवहार के उदाहरण द्वारा प्रभावशाली बन गया है।
2. 'पय पियत पतूखी' में अनुप्रास अलंकार है। अंतिम पंक्ति में भी अनुप्रास ही है।

बोध प्रश्न

- 'रेत में कश्ती चलना' का ज़िक्र यहाँ किस लिए किया गया है?
- उद्धव की बातों का जादू गोपियों पर क्यों नहीं चल पाता?

10.3.5 निर्गुन कौन देस को बासी?

गोपियाँ सारे तर्कों का एक ही जवाब देती हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस संदर्भ में कहा था, इस सादगी के सामने बड़े बड़े तर्क-चूड़ामणि मौन हो जाते हैं। निम्नलिखित पद में वे जैसे पूछती हैं कि तुम हो किस खेत की मूली। ऐसे उदाहरण सूर सागर में भरे पड़े हैं। आप यह बस एक ही देखिए।

निर्गुन कौन देस को बासी?
मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी॥
को है जनक, भेस है कैसो केहि रस में अभिलासी॥
पावैगो पुनि कियो आफ्नो जो रे! कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वे रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी॥

शब्दार्थ : सौंह = शपथ, कसम, कौन नारि = उसकी स्त्री कौन है?, भेस =वेश, गाँसी = गाँसी या कपट की बात, चुभनेवाली बात।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में गोपिकाएँ बड़ी बेबाकी से बात करते हुए उद्धव से पूछती हैं कि वे जो ये निर्गुण निर्गुण की बातें कर रहें हैं वे किस मुल्क के बाशिंदे हैं। वे पूरी शिद्धत के साथ पूछती हैं, मज़ाक में नहीं क्योंकि वे उनके प्रस्ताव का उचित या सही जवाब देना चाहती हैं।

व्याख्या : कृष्ण की आराधिका गोपियाँ उद्धव से निर्गुण ब्रह्म के बारे में पूछती हैं। साकार को समझना और उसकी पूजा करना तो उनके लिए आसान है और उनकी बुद्धि को समझ में आता है। पर जिसे न कभी देखा और न जिसके बारे में कुछ पता हो उसका ध्यान करना और उसका भजन करना व्यर्थ है, बेकार है। यह उन ब्रजवासियों का विचार है। इसलिए वे सब मिलकर उद्धव से पूछना चाहती हैं कि वे जो ये 'निर्गुण' की उपासना करने का राग अलाप रहे हैं उसका

कुछ पता ठिकाना भी है? वे बीच में मधुकर को ले आती हैं जिससे माहौल खुशनुमा रहे। पर पूछ वे उद्धव से ही रहीं हैं कि ये निर्गुण ब्रह्म वास्तव में किस देश का वासी है? किस देश का रहने वाला है ये नामालूम? जैसे वे श्री कृष्ण को जानती हैं, उन्हें पहचानती हैं, वैसे ही क्या वे उद्धव के द्वारा प्रस्तावित ब्रह्म को भी देख सकती हैं या नहीं।

वे उद्धव से कहती हैं कि उद्धव उनकी बात को गंभीरता से लें। वे हँसी नहीं कर रहीं। हम मज़ाक में ये सवाल नहीं कर रहे। वे जानना चाहती हैं कि उसका कौन पिता है। कौन उसकी माता है? उसकी स्त्री का नाम क्या है? कौन उसके सखा या मित्र हैं? और कौन उसके दास–दासी हैं? उसका रूप रंग और पहनावा कैसा है? इसका खान पान क्या है? उसको कौन सा रस पसंद है? वे यह सब कुछ विस्तार से जानना चाहती हैं क्योंकि तभी वे किसी नतीजे पर पहुँच सकेंगी। यदि यह ब्रह्म उन्हें पसंद आएगा तभी तो वे उसके प्रति आकर्षित होंगी। वास्तव में वे सब श्री कृष्ण के प्रेम-रस में अनुरक्त हैं। वे कह तो रहीं हैं कि गंभीर हैं पर परोक्ष रूप से वे उद्धव की और उनके प्रस्ताव की भी हँसी उड़ा रहीं हैं।

वे कहती हैं कि वे तो श्री कृष्ण के प्रेम में पगी हैं। इसलिए वे अपने सवालों का सही-सही जवाब चाहती हैं। यदि उद्धव ने इन प्रश्नों का उत्तर गलत दिया या कुछ झूठ बोला तो उसका बहुत बुरा अंजाम होगा। गोपियों का इतना कहना था कि उद्धव कुछ भी जवाब न दे सके। उनके दिमाग ने काम करना बंद कर दिया। वे कुछ कहना चाहते थे पर बुद्धि काम ही नहीं कर रही थी। सूरदास जी कहते हैं कि गोपिकाओं के तर्कों और प्रश्नों ने उद्धव को निरुत्तर कर दिया था। उत्तर भी वे कैसे देते जिस ब्रह्म को उपनिषद नेति-नेति कहकर समझाता है उस निराकार को समझना और फिर प्रेम रस में पगी इन गोपियों को समझाना टेढ़ी खीर था। उन्होंने चुप रहने में ही अपनी भलाई समझी।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में गोपिकाओं/गोपियों का व्यंग्य भाव द्रष्टव्य है।
2. व्यंग्य काव्य के रूप में ही भ्रमर गीत की रचना की गई है जिसकी पुष्टि यह पद भी करता है। साकार कृष्ण को ध्यान में रखते हुए गोपिकाएँ उद्धव से उनके द्वारा प्रस्तावित निराकार के बारे में इस प्रकार के मासूम से लगने वाले गंभीर सवाल करती हैं और उन्हें अंत में परेशान ही कर देती हैं।
3. ब्रज भाषा में तालव्य 'श' नहीं होता इसलिए सर्वत्र दंत्य 'स' का प्रयोग होता है।

बोध प्रश्न

- गोपियाँ इतने सवाल क्यों कर रहीं हैं?
- उद्धव क्यों इन सवालों का पसंदीदा जवाब नहीं दे पाते?

10.4 पाठ सार

भ्रमरगीत में सूरदास ने उन पदों को समाहित किया है जिनमें मथुरा से कृष्ण द्वारा उद्धव को ब्रज संदेश लेकर भेजते हैं। उद्धव योग और ब्रह्म के ज्ञाता हैं। उनका प्रेम से दूर-दूर का कोई सम्बन्ध नहीं है। जब गोपियाँ व्याकुल होकर उद्धव से कृष्ण के बारे में बात करती हैं और उनके

बारे में जानने को उत्सुक होती हैं तो वे निराकार ब्रह्म और योग की बातें करने लगते हैं तो खीजी हुई गोपियाँ उन्हें 'काले भँवरे' की उपमा देती हैं। इन्हीं पदों का समूह भ्रमरगीत या 'उद्धव-संदेश' कहलाता है।

उपर्युक्त पाँच पदों की सप्रसंग व्याख्या से स्पष्ट है कि सूर का 'भ्रमरगीत' भाव और कला दोनों की दृष्टि से उत्कृष्ट है। इस अंश में भी कवि की कल्पना, वचन चातुरी, अलंकरण, भाषा सौंदर्य, आदि का सफल प्रयोग हुआ है। भ्रमर गीत हिन्दी साहित्य में अत्यंत मर्मस्पर्शी वियोग - वर्णन की दृष्टि से अनुपम है। जीवन के सहज स्वाभाविक प्रसंगों में घटित होने वाले क्रिया कलापों से सम्बद्ध कर सूर ने गोपियों के वियोग को उत्कृष्ट काव्यमयी वाणी दी है। यही नहीं, भ्रमर गीत के इन पदों में सूर की भक्ति पद्यति, शास्त्र-ज्ञान, निर्गुण खंडन, प्रेम की महत्ता की स्वीकृति, आदि की भी रसात्मक प्रस्तुति हुई है। भ्रमर गीत के इन चुनिन्दा पदों का दार्शनिक पक्ष-निर्गुण का खंडन और सगुण का मंडन या प्रतिपादन - भी यहाँ उदाहरण देकर व्यंग्य के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि कोई भी आसानी से समझ सकता है।

यहाँ सूर सागर के भ्रमरगीत प्रसंग से पाँच पद लिए गए हैं। कृष्ण ने मथुरा जाने के बाद खुद न लौटकर उद्धव के जरिये गोपियों को संदेश भेजा था। उद्धव ने निर्गुण ब्रह्म और योग का उपदेश देकर गोपियों की विरह वेदना को शांत करने का असफल प्रयास किया। गोपियाँ ज्ञान मार्ग के बजाय प्रेम मार्ग को पसंद करती थीं। इस कारण उन्हें उद्धव का संदेश उन्हें बेकार लगा। तभी एक भौरा वहाँ आ पहुंचा। यहीं से भ्रमर गीत की शुरुआत होती है। गोपियों के उस भ्रमर के बहाने उद्धव को खरी खोटी भी सुनाई और अपने दिल का दर्द भी बयान किया। पहले पद में नन्द की कठोरता और इन पदों के आधार पर कह सकते हैं कि सूर दास जी के द्वारा वर्णित गोपियाँ हठयोगिनी, शास्त्रों को साधन मात्र मानने वाली, योग और प्रेम की तुलना करने वाली, एकमात्र कृष्ण की उपासिका, तर्कशील और वाकचातुर्य की धनी, अनुभवी, उपालंभी, उपहास का सहारा लेने वाली और बौद्धिकता से पूर्ण हैं। उनके जैसा चरित्र दुर्लभ है।

10.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. भ्रमर-गीत प्रसंग हिंदी के प्रमुख कवियों के लिए मनचीता प्रसंग रहा है और इसकी अपनी परंपरा रही है।
2. सूरदास ने अनेक पदों के लेखन से इसका प्रारम्भ किया और दूसरे कवियों को रास्ता दिखाया।
3. यहाँ कृष्ण के मित्र उद्धव उनके कहने पर गोकुल जाकर गोपिकाओं को साकार को छोड़कर निराकार की उपासना करने को कहते हैं।
4. उद्धव के बहुत समझाने पर भी कृष्ण के प्रेम में डूबी गोपिकाएँ उनकी बात मानने से इनकार करती हैं।
5. गोपिकाएँ उद्धव का अपमान नहीं करना चाहतीं इसलिए 'भ्रमर' का बहाना लेकर अपनी बात कहती हैं।

6. सूरदास के ये पद अपने आप में विलक्षण हैं क्योंकि गोपिकाओं का कृष्ण के प्रति प्रेम इनमें भरा पड़ा है।
7. इन पदों में कवि की काव्य कुशलता देखते ही बनती है।

10.6 शब्द सम्पदा

1. धरोहर = अमानत, ख्याति
2. निराकरण = दूर करना, अलग करना, हटाना
3. निर्गुण = जो ईश्वर का मूर्त या साकार रूप है, उसे सगुण रूप कहते हैं और जो अमूर्त या निराकार रूप है, उसे निर्गुण (रूप) कहते हैं
4. परवर्ती = आगे आने वाले (पूर्ववर्ती का विलोम)
5. ब्रह्म = एक मात्र नित्य चेतन सत्ता जो जगत् का कारण है। सत्, चित्, आनंद स्वरूप तत्व जिसके अतिरिक्त और जो कुछ प्रतीत होता है, सब असत्य और मिथ्या है।
6. योग-वेदान्त = सामान्य भाव में योग का अर्थ है जुड़ना। यानी दो तत्वों का मिलन योग कहलाता है। भक्ति का भाव भी यही है। 'वेदान्त' का शाब्दिक अर्थ है - 'वेदों का अंत' (अथवा सार)।
7. वाक् = वैदग्ध्य-विदग्ध या पूर्ण पंडित होने का भाव, पांडित्य, विद्वत्ता, दक्षतापूर्ण अपनी बात रखना
8. सगुण = भक्ति परंपरा को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है- निर्गुण और सगुण। गुण से युक्त। जिसमें गुण हों वह सगुण है। सत्व, रज, तम तीनों गुणों से युक्त परमात्मा का वह रूप जिसमें वह अवतार धारण करके प्राणियों या मनुष्यों का सा आचरण और व्यवहार करता है, वह सगुण है।
9. स्कन्ध = अध्याय

10.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को गोपियों ने किस प्रकार व्यक्त किया है?
2. पठित पदों के आधार पर सगुण और निर्गुण की व्याख्या कीजिए।
3. पठित पदों के आधार पर गोपियों की चतुराई और उनकी बुद्धिमानी के कुछ उदाहरण दीजिए।
4. 'भ्रमर गीत' प्रसंग का नामकरण कैसे हुआ। उदाहरण सहित बताइए।

5. संकलित पदों को ध्यान में रखते हुए कवि सूरदास के भ्रमर गीत की मुख्य विशेषताएँ बताइए।
6. सप्रसंग व्याख्या कीजिए - (सभी पदों की व्याख्या अलग-अलग अपेक्षित है)

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. भ्रमरगीत का प्रतिपाद्य अपने शब्दों में लिखिए।
2. उद्धव से गोपियों ने ऐसे कौन से प्रश्न किए कि वे कुछ उत्तर न दे सके? कोई चार प्रश्न लिखकर उनके तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।
3. सूरदास के भ्रमर गीत पदों में वर्णित प्रेम के स्वरूप का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
4. गोपियों के पास ऐसी कौन सी शक्ति या शक्तियाँ थीं जिसके कारण उद्धव जैसे ज्ञानी को मात खानी पड़ी?
5. कवि के रूप में सूरदास की काव्य- प्रतिभा का 'भ्रमर गीत' के आधार पर विवेचन कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. हिंदी साहित्य में 'भ्रमर गीत' प्रसंग का पहला उल्लेखनीय प्रयोग किसने किया था? (   )
   (अ) रामचन्द्र शुक्ल (आ) सूरदास (इ) उद्धव दास ई) आचार्य शुक्ल
2. 'सूरसागर' के पदों की रचना में सूरदास के लिए आधार ग्रंथ कौनसा रहा? (   )
   (अ) भ्रमर गीत सार (आ) गोपी-उद्धव संवाद (इ) श्रीमदभागवत (ई) श्री कृष्ण चरित
3. उद्धव को किस बात का गुमान था? (   )
   (अ) कृष्ण के प्रति अपनी मित्रता का (आ) अपने ज्ञान का
   (इ) अपनी भक्ति का (ई) इन सबका
4. 'भ्रमर गीत' में गोपिकाओं के किस गुण का परिचय मिलता है? (   )
   (अ) कृष्ण के प्रति प्रेम का (आ) उनकी चतुराई का
   (इ) उद्धव के प्रति दीनभाव का (ई) इन सबका
5. 'लरिकाई को प्रेम' या 'लड़कपन का प्यार' से क्या तात्पर्य है? (   )
   (अ) बचपन का नामालूम प्रेम (आ) बचपन का पुराना प्रेम
   (इ) अटूट प्रेम (ई) बेहूदा प्रेम

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. भ्रमर गीत प्रसंग .... पुस्तक का है।
2. सूर सागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश .... है।
3. उद्धव को अपनी ....का घमंड था।
4. 'भ्रमर गीत' परंपरा में भ्रमर .... का प्रतीक है।
5. सूर सागर की भाषा .... है।
6. निर्गुण का खंडन और ....का मंडन भ्रमर- गीत का लक्ष्य है।
7. भ्रमर गीत प्रसंग का एक दूसरा नाम ....भी है।

III. सुमेल कीजिए -

1. सूरदास	(अ) निर्गुण ब्रह्म के उपदेशक
2. आचार्य राम चन्द्र शुक्ल	(आ) सगुण ब्रह्म के उपासक
3. उद्धव	(इ) सगुण भक्ति मार्गी
4. कृष्ण	(ई) संपादक और आलोचक

10.8 पठनीय पुस्तकें

1. सूरदास कृत भ्रमरगीतसार : संपादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. सूरदास और उनका भ्रमरगीत : श्रीनिवास शर्मा
3. हिंदी साहित्य में भ्रमर गीत परंपरा : सरला शुक्ल

इकाई 11 : तुलसीदास : सुंदरकांड

रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 मूल पाठ : तुलसीदास : सुंदरकांड
11.3.1 जामवंत के वचन सुहाए ...
11.3.2 जात पवनसुत देवन्ह देखा...
11.3.3 निसिचरि एक सिंधु महूँ रहई....
11.3.4 तहाँ जाई देखी बन सोभा...
11.3.5 कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना ...
11.3.6 बन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं ...
11.3.7 करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुं दिसि रच्छहीं ...
11.3.8 पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह विचार ...
11.3.9 प्रबिसि नगर कीजे सब काजा...
11.4 पाठ सार
11.5 पाठ की उपलब्धियाँ
11.6 शब्द संपदा
11.7 परीक्षार्थ प्रश्न
11.8 पठनीय पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

श्रीरामचरित मानस का स्थान हिंदी-साहित्य में ही नहीं, संसार के साहित्य में निराला है। इसके जैसा या ऐसा ही सर्वांग सुंदर, उत्तम काव्य के लक्षणों से जीवन को अत्यंत सरल और रोचक शब्दों में व्यक्त करने वाला कोई दूसरा ग्रंथ हिंदी भाषा में ही नहीं, शायद संसार की किसी भाषा में नहीं लिखा गया। यह ग्रंथ अवधी भाषा में लिखा गया जो हिंदी की पुरानी बोलियों में से एक है। इस महाकाव्य में सात कांड या खंड हैं। इसके पांचवे कांड 'सुंदरकांड' से आप आरंभ से दोहा पाँच तक का अंश पढ़ने जा रहें हैं। सुंदरकांड में हनुमान के लंका जाकर सीता की सुध लाने का रोचक प्रसंग है। अपने पिता दशरथ की आज्ञा पालन करते हुए राम अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ वन गए। वहाँ लंका के राजा रावण ने छल से सीता का हरण कर लिया। सुग्रीव आदि की सहायता से राम ने सीता की खोज खबर पता करने के लिए वानरों की एक टुकड़ी को इधर उधर भेजा। इस टुकड़ी में हनुमान और जामवंत जैसे वीर और बुद्धिमान योद्धा भी थे। जामवंत से हनुमान यह पूछते हैं कि उन्हें क्यों नहीं समुद्र पार कर लंका भेजा जा रहा। इस पर जामवंत ने पहले तो उन्हें कहा कि वे सबके नेता हैं और नेता को भेजकर क्यों खतरा उठाया जाए। फिर यह सोचा गया कि हनुमान जी लंका जाकर केवल सीता

की खबर लेकर आ जाएँ। फिर राम खुद जाकर सीता माता को ले आएँगे । लगे हाथ राम जी वानरों की सेना के सहयोग से राक्षसों का संहार भी कर देंगे।

11.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- तुलसीदास रचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'सुंदरकांड' के एक अंश का अध्ययन करेंगे।
- 'रामचरितमानस' की भाषा के माधुर्य को समझ सकेंगे।
- निर्धारित अंशों की संदर्भ-प्रसंग सहित व्याख्या कर सकेंगे।
- कुछ काव्य रूपों जैसे दोहा, चौपाई, छंद के उदाहरणों के पाठ द्वारा इनकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- 'सुंदरकांड' के प्रतिपाद्य से अवगत हो सकेंगे।

11.3 मूल पाठ : तुलसीदास : सुंदरकांड

11.3.1 जामवंत के वचन सुहाए ...

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥
जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरषि हिय धरि रघुनाथा॥
सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेऊ ता ऊपर॥
बार बार रघुबीर संभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी॥
जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तै मैनाक होहि श्रमहारी॥
दोहा : हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रणाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ गोस्वामी तुलसीदास द्वारा विरचित 'रामचरितमानस' महाकाव्य के पांचवे कांड 'सुंदरकांड' के आरंभ की हैं। जामवंत ने हनुमान के बल और बुद्धि का विचार करके उन्हें लंका जाकर सीता का पता लगाने की अनुमति दे दी। इस पर हनुमान ने बहुत खुशी दिखाई।

व्याख्या : जामवंत के सुंदर वचनों को सुनकर हनुमान जी के मन में बहुत प्रसन्नता हुई। अपनी खुशी को व्यक्त करते हुए हनुमान जी ने कहा, "तुम सब लोग दुख सहकर, कंद-मूल-फल खाकर तब तक मेरी राह देखना जब तक मैं सीता जी को देखकर लौट न आऊँ। यह काम सफल जरूर

होगा क्योंकि मेरे मन में अभी से खुशी महसूस हो रही है।” यह कहकर और सबको प्रणाम करके तथा हृदय में राम जी का ध्यान धरते हुए वे खुशी खुशी चले। समुद्र के किनारे एक सुंदर पर्वत था। हनुमान जी खेल खेल में ही अर्थात बड़ी आसानी से उसके ऊपर जा चढ़े। हनुमान बलवान तो थे ही, अब उनके मन में रघुवीर राम जी के नाम का सहारा भी था। इसलिए वे बड़ी तेज़ी के साथ उस पर उछाल मार कर चढ़ गए। उनके प्रहार से बड़ा कमाल हुआ। जिस पर्वत पर हनुमान जी पैर रखकर चले (जिस पर वे उछले), वह तुरंत ही पाताल में धँस गया। हनुमान जी की चाल राम जी के अमोघ बाण जितनी तेज़ थी। समुद्र ने हनुमान को राम का दूत जानते हुए उनकी इस वेगवती चाल को देखते ही मैनाक पर्वत से कहा कि हे मैनाक! तुम ऐसे महावीर की थकान दूर करने के लिए अपने ऊपर विश्राम करने के लिए उन्हें स्थान दो। हनुमान जी ने समुद्र की ऐसी भावना और पर्वत की ऐसी इच्छा को समझते हुए यह कहते हुए पर्वत को केवल छुआ भर, विश्राम नहीं किया, “भाई पर्वतराज! श्रीराम चंद्र जी का काम पूरा किए बिना मुझे विश्राम कहाँ?”

बोध प्रश्न

- हनुमान जी की प्रसन्नता का कारण क्या है?
- हनुमान जी राह में विश्राम क्यों नहीं करना चाहते?

11.3.2 जात पवनसुत देवन्ह देखा...

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानै कहूँ बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहि बाता॥
आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहरा। सुनत बचन कह पवन कुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥
तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहूँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥
जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥
बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मांगा बिदा ताहि सिरु नावा॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥
दोहा : राम काज सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान ॥ 2॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

संदर्भ : गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित ‘रामचरितमानस’ के सुंदरकांड मे हनुमान जी जब लंका के लिए प्रस्थान कर जाते हैं तो उनके मार्ग में कई मुश्किलें आती हैं। किसी को वे बल से

और किसी को बुद्धि से वे इन मुसीबतों से पार पाते हैं। यहाँ वह प्रसंग है जब हनुमान की भेंट सुरसा से होती है।

व्याख्या : देवताओं ने पवनपुत्र हनुमान को लंका की ओर जाते हुए देखा। उनकी विशेष बल-बुद्धि को जानने और उनकी योग्यता की परीक्षा लेने के लिए देवताओं ने सुरसा को भेजा। सुरसा सर्पों की माता थीं। उसने हनुमान के सामने आकर अपनी तरफ से बात शुरू की, "आज देवताओं ने मुझे भोजन दिया है। मैं तुम्हें खाकर अपनी भूख मिटाऊंगी।" इतना सुनते ही पवनपुत्र हनुमान ने बड़ी तहज़ीब से सुरसा से कहा, "श्री राम जी का काम करके जब मैं फिर वापस आऊँगा तब मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगा। सीता की खबर राम को देकर जब मैं अपना काम खत्म कर लूँगा तब मैं तुम्हारे मुख में प्रवेश करूंगा। यह मैं सच कहता हूँ, अभी मुझे मत रोको, जाने दो।"

हनुमान ने इस प्रकार से सुरसा को बहुत समझाया। उनकी खुशामद की। विनती की। पर वह न मानी। जब किसी भी उपाय से हनुमान को सुरसा ने आगे न बढ़ने दिया तो हनुमान ने कहा, 'तो ठीक है, यही आप मुझे अभी खाना चाहती हैं तो आप मुझे खा ही लें।' सुरसा ने हनुमान को खाने के लिए अपना मुँह खोला। उसने योजन भर (चार कोस) मुँह फैलाया। तब हनुमान ने अपने शरीर को उससे दूना विस्तार कर लिया। वह अपना मुख खोलती गई, हनुमान अपने बदन को बढ़ते चले गए। उसने सोलह योजन तक मुख खोल कर बढ़ाया तो हनुमान ने अपना शरीर बत्तीस का कर लिया। जैसे-जैसे सुरसा अपने मुख का विस्तार करती, हनुमान अपने रूप को दुगना विस्तार कर देते। अंत में सुरसा ने अपना मुख सौ योजन का कर लिया। हनुमान जी ने तभी अपने शरीर को दुगना फैलाने के बजाय बहुत ही छोटा कर लिया। और वे उसके फैले हुए मुख में प्रवेश करके तुरंत झट से बाहर आ गए। सिर नीचा करके हनुमान जी हाथ जोड़कर खड़े हो गए। और विदा मांगने लगे।

सुरसा हनुमान की इस बुद्धिमानी को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। उसने हनुमान जी को आशीर्वाद देते हुए कहा, "मैंने तुम्हारे बुद्धि बल का भेद जान लिया अर्थात मैं अब जान गई कि तुम जिस कार्य के लिए जा रहे हो उसके काबिल हो। मुझे देवताओं ने तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए भेजा था। अब मेरा यह आशीर्वाद है कि तुम राम जी का सब कार्य सफलता पूर्वक करो। तुम बल और बुद्धि के भंडार हो।"

ऐसा कहकर प्रसन्नता पूर्वक आशीर्वाद देते हुए सुरसा वहाँ से चली गई और हनुमान जी भी प्रसन्न होकर आगे बढ़ गए। उनके पास न तो विश्राम का समय था और न किसी से बातचीत का।

बोध प्रश्न

- सुरसा कौन थी और वह क्यों आई थी?
- हनुमान जी ने सुरसा को कैसे प्रसन्न किया?

11.3.3 निसिचरि एक सिंधु महूँ रहई,,,

निसिचरि एक सिंधु महूँ रहई। करि माया नभु के खग गहई॥
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह के परिछाहीं॥
गहई छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई ॥

सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहि चीन्हा॥
ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

संदर्भ : गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' के सुंदरकांड से लिए गया यह मनोरम प्रसंग उस समय का है जब हनुमान सीता की खोज में लंका में प्रवेश करने वाले हैं।
व्याख्या : सुरसा से आशीर्वाद लेकर हनुमान आगे बढ़े ही थे कि एक दूसरी परेशानी ने उन्हें घेर लिया। समुद्र में एक राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को पकड़ लेती थी। आसमान में जो भी जीव-जंतु उड़ा करते थे, यह राक्षसी पानी में उनकी परछाई देखकर उस परछाई को पकड़ लेती थी। परछाई को वह जैसे ही पकड़ती थी, वैसे ही वे आसमान में उड़ने के बजाय पानी में आ गिरते थे। इस तरह वह उन्हें खाकर मज़े से रहती थी। उसने वही छल और चालाकी हनुमान से भी की। आसमान में उड़ते हुए हनुमान को भी उसने मार कर खाने की सोची। पर हनुमान ने उसकी चालाकी पकड़ ली। उसके कपट को पहचान लिया और उसे मार कर वे समुद्र पार जा पहुंचे।
बोध प्रश्न
- राक्षसी किस प्रकार से जीव-जंतु को अपना आहार बनाती थी?
- इन घटनाओं से हनुमान जी के किस गुण का पता चलता है?

11.3.4 तहाँ जाई देखी बन सोभा...

तहाँ जाई देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥
नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए॥
उमा न कछु कपि के अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥
अति उतंग जलनिधि चहु पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

संदर्भ : गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' के सुंदरकांड से लिए गया यह मनोरम प्रसंग उस समय का है जब हनुमान सीता की खोज में लंका में प्रवेश कर चुके हैं और वहाँ की सुंदरता को देखकर हैरान हो रहे हैं।
व्याख्या : उस निशाचरी राक्षसी को मारकर हनुमान अपने बल से समुद्र पार जा पहुंचे। वहाँ जाकर उन्होंने लंका की प्राकृतिक सुंदरता को देखा। उस वन प्रदेश को देखकर वे दंग रह गए।

चारो ओर फूल खिले थे और उन फूलों पर मधु अर्थात फूलों के रस के लोभी भँवरे मंडरा रहे थे। अनेक प्रकार के वृक्ष, पेड़-पौधे और लता आदि फैले हुए थे। हनुमान ने जब अनेक पशु पक्षियों को वहाँ दौड़ते-कूदते देखा तो वे बड़े खुश हुए। खुशी के मारे वे झट से उछाल मार कर एक विशाल पर्वत पर निडरता से चढ़ गए। उत्साह और उल्लास के कारण उनका डर जाता रहा था।

शिव जी इस प्रकरण को अपनी पत्नी उमा को सुनाते हुए कहते हैं कि उनके इस उत्साह और निडरता में वानर जाति के हनुमान की कोई विशेष बड़ाई नहीं है। यह तो प्रभु राम का प्रताप है जो काल अर्थात मृत्यु को भी खा जाता है। पर्वत पर चढ़कर उन्होंने लंका देखी। किले की मानिंद पुख्ता और मजबूत दूर दूर फैली लंका की विशेषता का शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। उसे देखकर कोई भी हैरान रह जाएगा। यह विशाल किला बहुत ऊँचा है। उसके चारो ओर समुद्र है। और लंका के इस किले के सोने के परकोटे (चहारदीवारी) की रोशनी दूर दूर तक फैली है।

बोध प्रश्न

- हनुमान जी की खुशी का कारण क्या था?
- लंका की शोभा का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

11.2.5 कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना ...

छंद - कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरुथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

संदर्भ : गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' के सुंदरकांड से लिए गया यह मनोरम प्रसंग उस समय का है जब हनुमान सीता की खोज में लंका में प्रवेश कर चुके हैं और वहाँ की सुंदरता को देखकर हैरान हो रहे हैं। यहाँ कवि तुलसीदास लंका नगरी, उसके किले और सम्पूर्ण शहर की सुंदरता का बखान कर रहें हैं।

व्याख्या : हनुमान जी के लंका में प्रवेश करने पर उस नगरी की सुंदरता देख वे चकित रह गए। विचित्र मणियों से जुड़ा हुआ सोने का परकोटा है। उसके अंदर बहुत-से सुंदर-सुंदर घर हैं। चौराहे, बाज़ार, सुंदर मार्ग और गलियाँ हैं। सारा शहर बहुत तरह से सजा हुआ है। हाथी, घोड़े, खच्चरों के समूह तथा पैदल और रथों के समूहों को कौन गिन सकता है? वे इतनी अधिक तादाद में हैं। अनेक रूपों के राक्षसों के दल हैं। उनकी वेगवती सेना का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

बोध प्रश्न

- लंका की सुंदरता का वर्णन इस छंद के आधार पर कीजिए।

11.3.6 बन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं ...

बन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुं माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

संदर्भ : गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' के सुंदरकांड से लिए गया यह मनोरम प्रसंग उस समय का है जब हनुमान सीता की खोज में लंका में प्रवेश कर चुके हैं और वहाँ की सुंदरता को देखकर हैरान हो रहे हैं। यहाँ कवि तुलसीदास लंका नगरी, उसके किले और सम्पूर्ण शहर की सुंदरता का बखान कर रहें हैं।

व्याख्या : कवि तुलसी लंका की सुंदरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि बन, बाग, उपवन (बगीचे), फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ और बावड़ियाँ सभी बहुत सुशोभित हैं। मनुष्य, नाग, देवताओं और गन्धर्वों की कन्याएँ अपने सौंदर्य से मुनियों के भी मनों को मोहित कर रहीं हैं। कहीं पर्वत के समान विशाल शरीर वाले बड़े ही बलवान पहलवान अखाड़ों में कुश्ती करते समय गरज रहें हैं और कहीं वे आपस में भिड़कर एक दूसरे को ललकार रहें हैं।

बोध प्रश्न

- इस छंद के आधार पर लंका की सुंदरता का वर्णन कीजिए।

11.3.7 करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुं दिसि रच्छहीं ...

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुं दिसि रच्छहीं ।
कहुं महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं ॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही ।
रघुवीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही ॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

संदर्भ : गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' के सुंदरकांड से लिए गया यह मनोरम प्रसंग उस समय का है जब हनुमान सीता की खोज में लंका में प्रवेश कर चुके हैं और वहाँ की सुंदरता को देखकर हैरान हो रहे हैं। यहाँ कवि तुलसीदास लंका नगरी। उसके किले और

सम्पूर्ण शहर की सुंदरता का बखान कर रहें हैं। विशेषतः यहाँ कवि लंका नगरी की भव्यता। वहाँ के यौद्धाओं की विशेषताओं का वर्णन कुछ विस्तार से इसलिए कर रहें हैं क्योंकि वे श्री राम के द्वारा वीरगति को प्राप्त करेंगे।

व्याख्या : तुलसीदास जी कहते हैं कि भयंकर शरीरवाले करोड़ो योद्धा कोशिश करके (बड़ी सावधानी से) नगर की चारो दिशाओं में सब ओर से रखवाली करते हैं। कहीं दुष्ट राक्षस भैसों, मनुष्यों,गायों, गदहों और बकरों को खा रहें हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि वे इनकी यह थोड़ी सी कथा यहाँ इसलिए कह रहें हैं क्योंकि ये सब निश्चय ही राम के बाण रूपी तीर्थ में शरीर को त्याग कर परम गति को प्राप्त करेंगे ।

बोध प्रश्न

- इस छंद के आधार पर लंका के योद्धाओं का वर्णन कीजिए

11.3.8 पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह विचार ...

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह विचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार॥
मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनी ठनमनी॥
पुनि संभारि उठि सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मुनि चीन्हा॥
बिकल होसि तै कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउं नयन राम कर दूता॥
तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

संदर्भ : गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' के सुंदरकांड से लिया गया यह मनोरम प्रसंग उस समय का है जब हनुमान सीता की खोज में लंका की सीमा में प्रवेश कर चुके हैं और वहाँ की सुंदरता को देखकर हैरान हो रहे हैं। नगर के रक्षकों और राक्षसों को देखकर हनुमान अति लघु रूप धारण करते हैं। यहाँ उनका सामना एक राक्षसी से होता है।

व्याख्या : नगर के अनगिनत रखवालों को देखकर हनुमान ने अपने मन में विचार किया कि उनसे बचने के लिए उन्हें बहुत छोटा सा हो जाना चाहिए जिससे कोई उन्हें आसानी से देख न सके। और नगर के भीतर उन्हें दिन के समय नहीं बल्कि रात के समय प्रवेश करना चाहिए। यह

विचार करके हनुमान ने मच्छर के समान छोटा सा रूप धारण किया। नर रूप धारण करके लीला दिखाने वाले राम को याद करते हुए वे लंका की ओर चले। पर जैसे ही वे दरवाजे को पार करके अंदर जाने को हुए, उन्हें किसी ने जोर से पुकारा। वह लंकिनी नामक राक्षसी थी। उसने ललकारा, “तू कौन है और मेरा निरादर करके बिना मुझसे पूछे कहाँ चला जा रहा है?” गुस्से में भरकर लंकिनी बोलती चली गई, “हे मूर्ख! तूने मेरा भेद नहीं जाना। तू मेरी ताकत से वाकिफ नहीं। यहाँ जितने भी चोर हैं, वे सब मेरा आहार हैं। मैं किसी को अंदर जाने नहीं दूँगी।” और अधिक बोलने का मौका न देकर हनुमान ने उस लंकिनी के मुँह पर ज़ोर से मुक्का दे मारा। एक ही घूंसे में वह बेहाल हो गई। खून की उलटी करती हुई जमीन पर लुढ़क गई।

किसी तरह अपने को संभालते हुए वह फिर से उठ कर बैठी। डर के मारे हाथ जोड़कर माफी मांगने लगी, गुजारिश करने लगी, “अब मेरी अक्ल ठिकाने आ गई है। मुझे याद आ रहा है कि रावण को जब ब्रह्मा जी ने वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने राक्षसों के विनाश की यह पहचान भी बता दी थी। जब तू किसी बंदर के मारने से व्याकुल हो जाएगी, तब तू राक्षसों का संहार हुए जान लेना।” इतना कहकर लंकिनी ने हाथ फिर से जोड़ लिए और बोली, “हे तात! आज मेरे बहुत पुण्य हैं जो मैं राम के दूत आपको अपनी आँखों से देख पा रही हूँ। स्वर्ग और मोक्ष के सब सुखों को तराजू के एक पलड़े में रक्खा जाए, तो भी वे सब मिलकर (दूसरे पलड़े पर रक्खे हुए) उस सुख के बराबर नहीं हो सकते, जो लव (क्षण) मात्र के सत्संग में होता है।

बोध प्रश्न

- लंका नगरी में प्रवेश से पहले हनुमान ने दो काम कौनसे किए?

11.2.9 प्रबिसि नगर कीजे सब काजा...

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपाल सिंधु अनल सितलाई॥
गरुड सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि छिटवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हमुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अनगित जोधा॥
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥
सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महूँ न दीखि बैदेही॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरी मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥
दोहा - रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसि का बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ॥

निर्देश : 1. इस काव्यांश का सस्वर वाचन कीजिए।
2. इस काव्यांश का मौन वाचन कीजिए।

संदर्भ : यह प्रसंग गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' के 'सुंदरकांड' के आरंभ का है। हनुमान सीता की खोज में लंका जा पहुंचे हैं। लंका में वे प्रवेश के पश्चात वे जब इधर उधर घूम रहें हैं तब उन्हें एक घर ऐसा दिखाई देता है जो किसी राक्षस का नहीं लगता।

व्याख्या : अयोध्या के राजा राम को हृदय में रखकर अर्थात उनका नाम स्मरण करते हुए हनुमान जी लंका नगरी में प्रवेश करते हैं। यहाँ रामचरितमानस के रचयिता तुलसीदास कथा में अपनी टिप्पणी जोड़ते हैं। 'अयोध्यापुरी के राजा राम जी को हृदय में रक्खे हुए नगर में प्रवेश करके सब काम कीजिए। जो ऐसा करता है उसके लिए विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गाय के खुर के बराबर छोटा हो जाता है, अग्नि में शीतलता आ जाती है। और हे गरुड जी! सुमेरु जैसा विशाल पर्वत उसके लिए धूल के समान छोटा कण हो जाता है जिसको राम जी एक बार कृपा पूर्वक देख लेते हैं।"

तब हनुमान जी बहुत ही छोटा रूप धारण करते हुए भगवान का नाम लेकर नगर में प्रवेश कर जाते हैं। उन्होंने एक एक मंदिर अर्थात महल की खोज की। जहाँ तहाँ अनेक योद्धाओं को देखा। फिर वे रावण के महल की ओर भी गए। वह महल बहुत अनोखा था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ हनुमान ने रावण को सोते हुए देखा। पर उस महल में सीता जी कहीं दिखाई नहीं दीं।

वे निराश तो हुए पर सीता की खोज में लगे रहे। घूमते घूमते उन्हें एक सुंदर भवन दिखाई दिया। उस महल में एक विशेषता दूर से ही दिखाई देती थी। उसमें भगवान का एक मंदिर अलग से बना हुआ था। यह अनोखी बात थी। यह महल श्री राम जी के आयुध (धनुष-बाण) के चिन्हों से अंकित था। उसकी सुंदरता का वर्णन नहीं किया ज सकता। वहाँ नवीन-नवीन तुलसी के वृक्ष समूहों को देखकर कपिराज हनुमान खुशी से फूले न समाए। निशाचरों के इस नगर में एक **सज्जन** का मकान देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए।

बोध प्रश्न

- लंका में सीता की खोज करते हुए हनुमान जी किस अनोखे महल में पहुंचे? वहाँ क्या अजीब नज़ारा था?

11.4 पाठ सार

भक्तिकाल के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' में सात कांड या खंड हैं। यह ग्रंथ अवधी-भाषा में लिखा गया है और इसमें दोहा और चौपाई छंदों का प्रयोग अधिकता से किया गया है। इसमें अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र राम और उनके भाइयों की कथा है। राम अपने पिता के कहने से अपनी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण के साथ 14 वर्ष के लिए वन-गमन करते हैं। सीता को रावण चुरा कर लंका ले जाता है। राम सुग्रीव की सहायता से हनुमान को सीता की खोज में रवाना करते हैं। इस महाकाव्य के 'सुंदरकांड' में उस प्रसंग का वर्णन है जब हनुमान लंका में जाकर सीता का पता-ठिकाना मालूम करते हैं। उन्हें रास्ते में अनेक कठिनाइयाँ होती हैं। उनके बल की परीक्षा करने के लिए देवता गण सुरसा को भेजते हैं। हनुमान सब परीक्षाओं और बाधाओं को पार कर लंका जा पहुँचते हैं। वे

पल भर के लिए भी कहीं विश्राम नहीं करते। लंका की शोभा भी उन्हें नहीं लुभा पाती। वे बलशाली राक्षसों से भी नहीं डरते। पर उन्हें कहीं सीता दिखाई नहीं देतीं। हाँ, उन्हें एक ऐसा महल अवश्य दिखाई देता है जो किसी वैष्णव का लगता है। हनुमान उस निवास स्थान की ओर आकर्षित होते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि इस सज्जन के द्वारा उन्हें सीता के बारे में कुछ न कुछ जानकारी जरूर मिल जाएगी।

11.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' के सात कांडों में से एक 'सुंदरकांड' है।
2. इस कांड में हनुमान के लंका नगरी में जाकर सीता की खोज करने का प्रसंग मुख्य है।
3. जामवंत के कहने पर हनुमान लंका में प्रवेश करते हैं पर मार्ग में कई बाधाएँ आती हैं।
4. हनुमान उन सब बाधाओं पर विजय प्राप्त करके आगे बढ़ते हैं।
5. इस इकाई में दोहा और चौपाई छंद के साथ साथ ही कवि ने दूसरे छंदों का प्रयोग भी किया है।
6. महाकाव्य के इस अंश में वीर रस की प्रधानता है।
7. काव्य-कला और भक्ति की दृष्टि से भी यह प्रसंग मानस के श्रेष्ठ प्रसंगों में से एक है।

11.6 शब्द संपदा

1. अमोघ = अचूक, अव्यर्थ
2. प्रहार = आक्रमण, चोट, आघात, वार
3. मानस = मन, हृदय
4. योजन = दूरी मापने का एक पैमाना, जोड़ना, मिलाना
5. रोचक = मनोरंजक और प्रिय

11.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. सुंदरकांड के प्रारम्भिक अंश के आधार पर हनुमान की लंका यात्रा के मार्ग की बाधाओं का वर्णन कीजिए। यह भी उल्लेख कीजिए कि इन बाधाओं को कैसे दूर किया गया?
2. हनुमान को 'बल बुद्धिनिधान' कहना कहाँ तक उचित है? उदाहरण देकर सिद्ध कीजिए।
3. लंका नगरी की शोभा को जैसा हनुमान ने पहले पहल देखकर बखान किया, उसका वर्णन अपने शब्दों में करें।
4. सुंदरकांड की दोहा 1 से 5 तक की कथा को अपने शब्दों में इस प्रकार लिखिए कि हनुमान के पराक्रम का बयान भी हो जाए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. लंका में प्रवेश करने से पूर्व हनुमान ने क्या क्या सावधानियाँ बरतीं?
2. लंकिनी हनुमान की मार खाकर भी खुश क्यों हुई?
3. सुरसा ने हनुमान की परीक्षा क्यों और किस प्रकार से ली?
4. लंका नगरी में अंततः क्या पाकर हनुमान खुशी से फूले न समाए? कारणों का वर्णन कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. रामचरित मानस में कितने कांड हैं और सुंदरकांड उनमें से कौनसा है? (   )

   (अ) सात, पांचवा   (आ) आठ, सातवां   (इ) छह, तीसरा   (ई) सात, दूसरा

2. हनुमान को लंका न भेजने के पीछे पहले जामवंत का क्या तर्क था?   (   )

   (अ) हनुमान को अपनी बुद्धि का गुरूर था

   (आ) जामवंत खुद जाना चाहते थे

   (इ) हनुमान को नेता होने के कारण भेजना ठीक न था

   (ई) हनुमान बहुत गुस्से वाले थे

3. रावण के महल में सीता कहाँ सोई हुई थी?   (   )

   (अ) रावण की पत्नी के साथ

   (आ) परकोटे में

   (इ) कहीं नहीं

   (ई) अंधेरे महल में

4. सुरसा को किसने और क्यों भेजा था?   (   )

   (अ) राम ने, हनुमान के बल की परीक्षा लेने की खातिर

   (आ) देवताओं ने, हनुमान के बुद्धि बल की परीक्षा के लिए

   (इ) रावण ने, हनुमान को लंका में प्रवेश से रोकने के वास्ते

   (ई) इनमें से किसी ने नहीं

5. ‘रामायुध’ से क्या अभिप्राय है?   (   )

(अ) राम का स्मृति चिह्न

(आ) धनुष बाण

(इ) राम के वीर योद्धा

(ई) ये सब ही

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. सुरसा .... की माता थी।
2. .... लंका के प्रवेशद्वार पर तैनात राक्षसी थी।
3. लंकिनी के अनुसार सबसे बड़ा सुख .... में है।
4. हनुमान ने लंका प्रवेश करते समय .... का नाम स्मरण किया।
5. हनुमान ने लंका में जाकर .... घर को पहले देखा।
6. सुंदरकांड की मुख्य कथा .... पर आधारित है।

III. सुमेल कीजिए -

1. जामवंत	(अ) पर्वत
2. हनुमान	(आ) देवताओं की माता
3. लंकिनी	(इ) पवनपुत्र
4. सुरसा	(ई) वीर
5. सुमेरु	(उ) राक्षसी

11.8 पठनीय पुस्तकें

1. रामचरित मानस : गोस्वामी तुलसीदास

इकाई 12 : बिहारी के दोहे

रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 मूल पाठ : बिहारी के दोहे
12.3.1 अध्येय दोहों का सामान्य परिचय
12.3.2 अध्येय दोहे
12.3.3 अध्येय दोहों की विस्तृत व्याख्या
12.3.4 समीक्षात्मक अध्ययन
12.4 पाठ सार
12.5 पाठ की उपलब्धियाँ
12.6 शब्द संपदा
12.7 परीक्षार्थ प्रश्न
12.8 पठनीय पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! हिंदी साहित्य में बिहारी को रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। बिहारी रीति-सिद्ध काव्य के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी प्रसिद्धि का आधार उनकी एकमात्र रचना 'सतसई' है। इसकी लोकप्रियता इस बात से पता चलता है कि हिंदी में 'रामचरितमानस' के बाद सबसे अधिक टीकाएँ इसी ग्रंथ की लिखी गई हैं। इस इकाई में आप बिहारी सतसई के चयनित दस दोहों का अध्ययन करेंगे।

12.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बिहारी के दोहों का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- बिहारी के दोहों की सप्रसंग व्याख्या कर सकेंगे।
- बिहारी के दोहों में निहित सौंदर्य पक्ष को जान सकेंगे।
- बिहारी के दोहों के भाव पक्ष पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- बिहारी के दोहों की काव्यगत विशेषताओं को पहचान सकेंगे।

12.3 मूल पाठ : बिहारी के दोहे

12.3.1 अध्येय दोहों का सामान्य परिचय

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में ऐसा कोई विरला ही व्यक्ति होगा, जो बिहारी और उनकी सतसई से परिचित न हो, या उनके दोहों का अध्ययन किया न हो। कहने का अर्थ है कि किसी न किसी रूप में हर व्यक्ति बिहारी के दोहों से अवश्य परिचित होते हैं। बिहारी के संबंध में एक

उक्ति प्रचलित है के वे गागर में सागर भर देते हैं। अर्थात कम शब्दों में बहुत कुछ कह देते हैं। बिहारी सतसई की अनेक टीका-टिप्पणियाँ मिल जाती हैं। जगन्नाथदास रत्नाकर, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भगवानदिन आदि की टीकाएँ प्रसिद्ध हैं।

बिहारी ने अपने व्यापक जीवनानुभवों को दोहों के रूप में प्रस्तुत किया है। ये दोहे श्रेष्ठ काव्य गुणों से युक्त हैं। अर्थ की दृष्टि से ये दोहे विलक्षण हैं। इनके संबंध में निम्नलिखित किंवदंती प्रचलित है -

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लखौं घाव करैं गंभीर॥

छात्रो! निर्धारित दोहों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है - पहला दोहा मंगलाचरण है। इसमें कवि ने राधा-नागरि से सांसारिक दुखों को दूर करने की प्रार्थना की है। दूसरे दोहे से लेकर पाँचवे दोहे तक में नायक नवयौवना नायिका के मुग्ध रूप का वर्णन करता है। दूसरे दोहे में नायक नवयौवना नायिका के शरीर और उत्साह में वृद्धि को देखकर, रीझकर उसकी प्रशंसा करते हैं। यौवन के कारण नायिका के चित्त उमंग से भर जाता है। चतुराई भी आ जाती है। आँखें भी विशाल हो जाती हैं। इनकी प्रतिस्पर्धा के बारे में तीसरे दोहे में बताया गया है। चौथे दोहे में नवयौवना नायिका की आँखों की पुतलियों का वर्णन है। छठे दोहे में नायक नायिका से मिलने के लिए उत्सुक दिखाई देता है। सातवें और आठवें दोहे में नायिका की अंतरंग सखी उसके शरीर का वर्णन करती है। नौवें दोहे में नायिका की सखी उसे अपने मन में अनुराग छिपाए रखने की सलाह देती है। दसवें दोहे में नायिका अपनी सखी से अपनी मनोदशा व्यक्त करती है।

12.3.2 अध्येय दोहे

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परैं स्यामु हरित दुति होइ॥1॥
अपने अँग के जानि कै जोबन-नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन, नितंब कौ बड़ौ इजाफा कीन॥2॥
अर तैं टरत न वर-परे, दई मरक मनु मैन।
होड़ा-होड़ी बढ़ि चले, चित चतुराई नैन॥3॥
औरै-ओप कनीनिकनु गनी घनी-सिरताज॥
मनीं धनी के नेह की बनीं छनीं पट लाज॥4॥
सनि-कज्जल चख-झख-लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेसु सबु देहु॥5॥
सालति है नटसाल सी, क्यौं हूँ निकसित नाँहि।
मनमथ-नेजा-नोक सी, खुभी-खुभी जिय माँहि॥6॥
जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंक न होति लखाइ।
सौंधे कैं डोरैं लगी अली, चली सँग जाइ॥7॥
हौं रीझी, लखि रीझिहौ, छबिहिं छबीले लाल।
सोनजूही सी ह्वोति दुति, मिलत मालती माल॥8॥

बहके, सब जिय की कहत, ठौरु कुठौरु लखैं न।
छिन ओरै, छिन और से, ये छबि छाके नैन॥9॥
फिरि फिरि चितु उत हीं रहतु, टुटी लाज की लाव।
अंग-अंग-छवि-झर मैं भयौ भौंर की नाव॥10॥

> निर्देश : 1. उक्त दोहों का सस्वर वाचन कीजिए।
> 2. उक्त दोहों का मौन वाचन कीजिए।

12.3.3 अध्येय दोहों की विस्तृत व्याख्या

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परैं स्यामु हरित दुति होइ॥1॥

शब्दार्थ : भव-बाधा = सांसारिक दुख। हरौ = हरण करो, दूर करो। नागरि = नगरों में रहने वाली, सुसंस्कृत। झाईं= छाया, आभा। स्यामु = श्रीकृष्ण। हरित दुति = हरे रंग वाला।
संदर्भ : यह बिहारी कृत 'सतसई' का पहला दोहा है।
प्रसंग : यह वस्तुतः मंगलाचरण है। किसी भी कार्य को सुचारू रूप से शुरू करने के लिए मंगलाचरण किया जाता है। बिहारी भी राधा-नागरि से प्रार्थना करते हैं कि उनकी सारी दुखों को वे दूर कर दें और बिना कोई विघ्न के कार्य पूरा हो जाए।
व्याख्या : बिहारी राधा जी से सांसारिक दुखों को दूर करने की प्रार्थना करते हैं। इस दोहे का मूल अर्थ यह है कि जिसके शरीर की झाईं (आभा) पड़ने से श्याम (काला) हरित-दुति (चमक) वाला हो जाता है, वह राधा-नागरि है। हे सुसंस्कृत राधा-नागारी! तुम मेरी भव बाधा (सांसारिक दुख) हरो।

इस दोहे के तीन अर्थ निकाले जाते हैं जो इस प्रकार हैं -

पहला अर्थ : हे राधा-नागारी! तुम्हारी तन की गौरवर्ण (पीला) की परछाई पड़ने से श्याम (नीला) वर्ण वाले श्रीकृष्ण हरे रंग की दुति वाले हो जाते हैं। यह सर्वविधित है कि पीला और नीला का मिश्रण होता है तो हरे रंग में बदल जाता है (पीला + नीला = हरा)। मेरी सांसारिक दुखों को दूर करो।
दूसरा अर्थ : हे राधा-नागरि! तुम्हारे तन की झाँकी पड़ने से अर्थात झलक आँखों में पड़ने से श्रीकृष्ण हरे भरे (प्रसन्न वदन) हो जाते हैं। मेरी दुखों को दूर करो।
तीसरा अर्थ : हे राधा-नागरि! तुम्हारे तन अर्थात रूप का ध्यान भक्त के हृदय में आने से काला रंग (कल्मष, पातक, दरिद्रता आदि) धूमिल हो जाते हैं। वे अपने प्रभाव को त्याग देते हैं। अतः आप से प्रार्थना है कि मेरे सांसारिक दुखों को दूर करें।
काव्य सौंदर्य :

1. बिहारी राधा-वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे। अतः राधिका जी से भव-बाधा दूर करने की प्रार्थना करना स्वाभाविक है।

2. इस दोहे के तीन अर्थ ध्वनित होते हैं। श्लेष अलंकार।

3. 'झाँई' शब्द के तीन अर्थ हैं - (i) तन पर पड़ने से, (ii) दृष्टि में पड़ने से और (iii) हृदय में पड़ने से। इसी प्रकार 'हरित दुति' के भी तीन अर्थ हैं - (i) हरे रंग, (ii) हरा-भरा अर्थात प्रसन्न वदन और (iii) हृतद्युति अर्थात तेजहीन, प्रभा शून्य। 'श्याम' के भी तीन अर्थ हैं - (i) श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण, (ii) श्रीकृष्ण और (iii) काले रंग वाला पदार्थ। काला रंग काव्य में दुर्गुणों का प्रतीक है। जैसे कल्मष, पाप, दुख, दरिद्रता, पातक आदि।

बोध प्रश्न

- उपर्युक्त दोहे में प्रयुक्त झाईं का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
- राधा जी परछाई पड़ने से श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण हरे कैसे हो सकते हैं?

अपने अँग के जानि कै जोबन-नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन, नितंब कौ बड़ौ इजाफा कीन॥2॥

शब्दार्थ : अँग = अंग, भाग, हिस्सा। जोबन = यौवन। नृपति = राजा। प्रवीन = दक्ष, कुशल, समझदार। इजाफा = वृद्धि।

संदर्भ : यह दोहा बिहारी कृत 'सतसई' से उद्धृत है।

प्रसंग : नायक नवयौवना नायिका के शरीर और उत्साह में वृद्धि को देखकर, रीझकर उसकी प्रशंसा करते हुए मन में कहते हैं।

व्याख्या : यौवन अर्थात युवावस्था आने पर शरीर के अंगों में वृद्धि होती है। अर्थात उनका विकास होता है। यौवन रूपी प्रवीण (दान, दंड आदि में निपुण) राजा ने अपने अंग का अर्थात अपने दल का समझकर स्तन, मन, नयन और नितंब का बड़ा इजाफा कर दिया है।

काव्य सौंदर्य :

1. इस दोहें में 'अपने अंग के' का अर्थ है राजा के प्रधान, मंत्री, सेनापति तथा सेना आदि। राजा के अंग अर्थात उनके सहायक। अंग का अर्थात यहाँ सहायक अथवा पक्ष का होता है।
2. जब कोई बादशाह अपने किसी सहायक को, कर्मचारी को शुभचिंतक समझकर अथवा उसके किसी अच्छी काम से प्रसन्न होकर उसकी जागीर अथवा वेतन में वृद्धि कर देता है, तो यह वृद्धि इजाफा कहलाता है।
3. युवावस्था का वर्णन।
4. रूपक अलंकार।

अर तैं टरत न बर-परे, दई मरक मनु मैन।
होड़ाहोड़ी बढ़ि चले, चित चतुराई नैन॥3॥

शब्दार्थ : अर तैं = हठ से। टरत = डिगते हैं। बर-परे = बल पकड़ता है। दई = दिया हो। मरक = बढ़ावा। मनु = मानो। मैन = कामदेव। होड़ाहोड़ी = बाजी या शर्त लगाकर, प्रतिस्पर्धा।

संदर्भ : यह दोहा बिहारी कृत 'सतसई' से उद्धृत है।

प्रसंग : नायिका के चित्त की चतुराई और उसकी आँखें शर्त लगाकर बढ़ चली हैं-

व्याख्या : यौवन के कारण नायिका के चित्त उमंग से भर जाता है। चतुराई भी आ जाती है। आँखें भी विशाल हो जाती हैं। ऐसा लगता है कि तीनों ही प्रतिस्पर्धा की भावना से बढ़ रहे हैं। इसे देखकर ऐसा लगता है कि मानो कामदेव ने भी इन्हें प्रोत्साहन दिया हुआ है।

काव्य सौंदर्य :

1. संपूर्ण दोहे में मानवीकरण अलंकार।
2. मरक मनु मैन तथा चित्त चतुराई नैन में अनुप्रास अलंकार।
3. नारी मनोविज्ञान का परिचय।
4. यौवन के आगमन के साथ ही स्त्री के व्यवहार में अंतर आ जाता है। उसका मन यौवन के उद्दाम आवेग से भर जाता है।
5. नायिका के इस सौंदर्य वर्णन की वक्ता दूती भी हो सकती है जो नायक के समक्ष नायिका के लावण्या का वर्णन करे।

बोध प्रश्न

- यौवन के आगमन के साथ स्त्री के व्यवहार में किस तरह के बदलाव को देखा जा सकता है?

औरै-ओप कनीनिकनु गनी घनी-सिरताज॥
मनीं धनी के नेह की बनीं छनीं पट लाज॥4॥

शब्दार्थ : औरै-ओप = कुछ और ही ओप (प्रभु) वाली। कनीनिकनु = आँखों की पुतलियों के कारण। गनी= गिनी गई, मानी गई। घनी-सिरताज = यहाँ 'घनी' का अर्थ है अनेक सपत्नी। सिरताज फारसी शब्द सरताज का रूपांतर, शिरोमणि, श्रेष्ठ। अतः घनी-सिरताज का अर्थ है अनेक सपत्नियों में श्रेष्ठ या सर्वाधिक प्रमुख। मनीं = मणियाँ। धनी = प्रभु, स्वामी, पति। नेह = स्नेह। छनीं = छिपी हुई। पट = वस्त्र।

संदर्भ : यह दोहा बिहारी कृत 'सतसई' से उद्धृत है।

प्रसंग : इस दोहे में नवयौवना नायिका की आँखों की पुतलियों का वर्णन है। नायिका की सखी नायिका की पुतलियों की शोभा और लज्जा का वर्णन कर रही है।

व्याख्या : नायिका की सखी कह रही है - हे सखी! अब यौवन के आगमन के कारण तेरी आँखों की पुतलियों में निराली चमक है। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि तुम अपनी सपत्नियों में सर्वाधिक प्रमुख हो गई हैं। अर्थात प्रियतम के अधिक निकट हो गई हैं। तेरी आँखों की ये पुतलियाँ लज्जा रूपी वस्त्र में छिपी हुई हैं। इसी कारण नायक के स्नेह को ये आकर्षित करने के लिए मणियों की तरह शोभा पा रही हैं।

छिपे रहने पर भी मणियों का विशेष प्रभाव होता है और खुल जाने पर उनका प्रभाव कम हो जाता है। इसी प्रकार लज्जा से आच्छादित आँखों में भी आकर्षण शक्ति विशेष होती है। इसीलिए कवि ने आँखों की पुतलियों को मणि बना कर लज्जा रूपी पट/ वस्त्र से ढाँप रखा है।

काव्य सौंदर्य :

1. यौवन के आगमन के साथ नायिका की पुतलियों में लज्जा मिश्रित कांति का आना स्वाभाविक है।
2. नारी मनोविज्ञान।

3. समस्त पद 'कनीनिकनु' का विशेषण है। 'कनीनिका' आँख की पुतली को कहते हैं। 'कनीनिकनु' कनीनिका शब्द के संबंधकारक का बहुवचन रूप है।
4. मनीं धनी के नेह की = पति के स्नेह को आकर्षित करने वाली मणियाँ।
5. संपूर्ण दोहे में भेदकातिशयोक्ति है।
6. छेकानुप्रास और रूपक अलंकार।

बोध प्रश्न

- 'कनीनिकनु' शब्द का क्या अर्थ है?
- 'मनीं धनी के नेह की' का क्या अर्थ है?

सनि-कज्जल चख-झख-लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेसु सबु देहु॥5॥

शब्दार्थ : सनि = शनि (शनेश्वर नामक ग्रह)। इस गृह का रंग काला माना जाता है और वस्तुतः इस तारे का रंग देखने में श्याम प्रतीत होता है। कज्जल = काजल। चख = चक्षु, आँख। झख = झष, मछली। लगन = लग्न। सुदिन = अच्छा दिन, अनुकूल परिस्थिति। सनेहु = स्नेह, प्रेम। नृपति= राजा। भोगवै = भोग करें। सुदेसु = सुंदर देश।

संदर्भ : यह दोहा बिहारी कृत 'सतसई' से उद्धृत है।

प्रसंग : किसी सुअवसर पर नायिका के काजल कलित आँखों से देखने से नायक के हृदय में स्नेह उत्पन्न हुआ। उस स्नेह ने उसके सर्वांगों पर अधिकार जमा लिया। बड़ी चतुराई से इस दशा का वर्णन नायिका की सखी करती है और उसे नायक से मिलाना चाहती है। इस दोहे में नायक के स्नेह की अवस्था का वर्णन है।

व्याख्या : नायिका की आँखों में लगा काजल मानो शनि ग्रह है। नायिका की आँखें मानो मीन राशि हैं। जब शनि ग्रह मीन राशि में प्रवेश करता है, तो ज्योतिषशास्त्र के अनुसार शुभ माना जाता है। जब नायक की आँखें काजल कलित नायिका की आँखों से मिलते हैं तो शुभ मुहूर्त में उनके हृदय में स्नेह/ प्रेम उत्पन्न होता है। और क्यों न स्नेह रूपी बालक देह रूपी सुदेश पाकर राजा बन कर भोग करे। अर्थात उस पर क्यों न पूर्ण अधिकार जमाए।

काव्य सौंदर्य :

1. ज्योतिष शास्त्र से संबंधित ज्ञान का परिचय।
2. 'सुदिन सनेहु' और 'सुदेसु सबु' में छेकानुप्रास अलंकार।
3. 'लगन' शब्द में श्लेषार्थ है। एक अर्थ है 'लग्न' (राशि) और दूसरा है लगना अथवा मिलना।
4. संपूर्ण दोहे में सांगरूपक अलंकार है।

बोध प्रश्न

- इस दोहे में निहित श्लेषार्थ का उदाहरण दीजिए।

सालति है नटसाल सी, क्यौं हूँ निकसित नाँहि।
मनमथ-नेजा-नोक सी, खुभी-खुभी जिय माँहि॥6॥

शब्दार्थ : सालति है = चुभकर पीड़ा देती है। नटसाल = काँटे अथवा बाण की नोक का वह भाग जो टूटकर शरीर के भीतर ही रह जाता है। निकसित नाँहि = निकलती नहीं। मनमथ = मन को मथने वाला, कामदेव। नेजा = कटार। खुभी = लौंग के आकार का एक प्रकार के कान का आभूषण। खुभी = चुभी हुई, धँसी हुई।

संदर्भ : यह दोहा बिहारी कृत 'सतसई' से उद्‌धृत है।

प्रसंग : नायक ने जब नायिका को कानों में 'खुभी' पहने हुए देखा तो उसके प्रति उसका आकर्षण और बढ़ गया -

व्याख्या : नायिका अपने कानों में 'खुभी' अर्थात लौंग के आकार के एक प्रकार का आभूषण पहनी हुई है। जिस तरह काँटे अथवा बाण की नोक टूटकर शरीर के भीतर चुभ जाता है, वह अत्यंत पीड़ादायक होता है, उसी प्रकार नायिका के कानों का आभूषण नायक के मन में इस तरह चुभ गया है कि वह मनमथ के भाले की नोक के समान उसे चुभ रही है। नायिका के प्रति उसका आकर्षण बढ़ता जा रहा है।

काव्य सौंदर्य :

1. उपमा अलंकार।
2. एक 'खुभी' का अर्थ है कान का आभूषण और दूसरा अर्थ है धँसी हुई। अतः 'खुभी-खुभी' में यमक अलंकार है।
3. शृंगार रस।

बोध प्रश्न

- 'खुभी-खुभी' में यमक अलंकार क्यों है?

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंक न होति लखाइ।
सौंधे कैं डोरैं लगी अली, चली सँग जाइ॥7॥

शब्दार्थ : जुवति = युवती। जोन्ह = ज्योत्सना, चाँदनी। लखाइ = लक्षित। सौंधे = सुगंध। डोरैं = डोरे में। अली = सखी, भ्रमर।

संदर्भ : यह दोहा बिहारी कृत 'सतसई' से उद्‌धृत है।

प्रसंग : नायिका चाँदनी रात में नायक से मिलने के लिए जा रही है। इस दोहे में उसका वर्णन अंकित है। शुक्लाभिसारिका नायिका की अंतरंग सखी उसके शरीर के गौरवर्ण तथा सुगंध का वर्णन करते हुए कहती है -

व्याख्या : देखो यह युवती अपनी गौर वर्ण के कारण चाँदनी में कैसी मिल गई है। किंचित मात्र भी लक्षित नहीं होती। अतः उसको दृष्टि द्वारा लक्षित करके उसके साथ चलना असंभव है। पर अली (सखी) उसके शरीर की सुगंध के डेरे से लगी हुई चली जा रही है।

काव्य सौंदर्य :

1. नायिका का रंग चाँदनी से तुल्य होने के करण वह दिखाई ही नहीं पड़ती थी। गंध से अनुमान होता था कि वह कहाँ हैं।
2. जिस प्रकार दीपक की किरणें तार की भाँति चारों ओर फैलती हैं, उसी प्रकार सुगंधित तार वायु के बहाव की ओर प्रसारित होते हैं। इन्हीं तारों को डोरे कहते हैं।

बोध प्रश्न

- इस दोहे में यह क्यों कहा गया है कि नायिका को सुगंध के माध्यम से पहचाना जाता है?

हौं रीझी, लखि रीझिहौ, छबिहिं छबीले लाल।
सोनजुही सी ह्वोति दुति-मिलत मालती माल॥8॥

शब्दार्थ : हौं रीझी = मैं मुग्ध हो गई हूँ। लखि = देखि। छबीले = समझने वाले। दुति-मिलत = आभा से मिलते ही।

संदर्भ : यह दोहा बिहारी कृत 'सतसई' से उद्धृत है।

प्रसंग : सखी नायक से नायिका के सुनहरी आभा की प्रशंसा करके नायक के हृदय में उसको देखने की उत्कंठा उत्पन्न करना चाहती है।

व्याख्या : हे छबीले नायक! मैं तो उसे देखकर मुग्ध हो गई हूँ। जब तुम उसे देखोगे, तो तुम भी मुग्ध हो जाओगे। उसका गौर वर्ण ऐसा अद्‍भुत है कि जब वह मालती की माला पहनती है, तो उसके शरीर की आभा अर्थात कांति से मिलकर वह माला सोनजुही सी सुनहरी हो जाती है।

काव्य सौंदर्य :

1. शृंगार रस।
2. नायिका के अपूर्व सौंदर्य का चित्रण।
3. जब एक स्त्री के सौंदर्य पर दूसरी स्त्री मुग्ध हो सकती है तो नायक की मनःस्थिति का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।
4. 'सोनजुही सी' उपमा अलंकार।
5. 'छबिहिं छबीले' छेकानुप्रास अलंकार।

बोध प्रश्न

- उपर्युक्त दोहे में नायिका की सुंदरता की तुलना किससे की गई है?

बहके, सब जिय की कहत, ठौरु कुठौरु लखैं न।
छिन ओरै, छिन और से, ये छबि छाके नैन॥9॥

शब्दार्थ : बहके = अपने वश से बाहर। जिय = मन। ठौर = स्थान। कुठौर = अनुचित स्थान। छबि छाके = सौंदर्य के नशे में मस्त।

संदर्भ : यह दोहा बिहारी कृत 'सतसई' से उद्धृत है।

प्रसंग : नायिका के मन में नायक के लिए अत्यधिक अनुराग है। उसकी सखी उसे समझाती है कि अपने इस प्रेम-प्रसंग को गुप्त ही रखना उचित है। अन्यथा समाज में वह हँसी-मजाक का पात्र बन जाएगी। नायिका इस रहस्य को छिपाए रखने में अपने आपको असमर्थ पाती है। प्रस्तुत दोहे में नायिका अपनी सखी के समक्ष इसी असमर्थता का वर्णन कर रही है -

व्याख्या : हे सखी! मैं क्या करूँ? इस प्रेम-भाव को अपने तक रखना मेरे वश की बात नहीं है। मेरी ये आँखें क्षण में कुछ तथा दूसरे ही क्षण में कुछ और प्रकार की हो जाती हैं। मेरी ये आँखें अवसर और अनवसर नहीं देखतीं और हृदय की सारी बात कह देती हैं। मदिरा पीकर नशे में उन्मत्त हो जाने के बाद मनुष्य की विवेक-शक्ति जाती रहती है और वह उचित-अनुचित की चिंता किए बिना ही व्यवहार करता है। नायिका की भी स्थिति कुछ ऐसी ही है। जब से उसकी

आँखों ने नायक के सौंदर्य की मदिरा का पान किया है, उनकी विवेक-शक्ति जाती रही और वे आँखें उचित-अनुचित परिस्थिति के बारे में सोचे बिना ही उसके हृदय की सारी बातें कह देती हैं।

काव्य सौंदर्य :

1. 'छबि छाके' में छेकानुप्रास अलंकार।

बोध प्रश्न

- कवि ने यह क्यों कहा कि नायिका अवसर-अनवसर का ध्यान नहीं रखती?

फिरि फिरि चितु उत हीं रहतु, टुटी लाज की लाव।
अंग-अंग-छबि-झौंर मैं भयौ भौंर की नाव॥10॥

शब्दार्थ : फिरि फिरि = बार-बार। चितु = चित्त। लाव = रस्सी। छबि = छवि। झौंर = मंडल, घेरा। भौंर = भंवर।

संदर्भ : यह दोहा बिहारी कृत 'सतसई' से उद्धृत है।

प्रसंग : नायक के प्रति आसक्त नायिका अपनी अंतरंग सखी के समक्ष अपनी मनोदशा का वर्णन कर रही है। नायिका का मन बार-बार उसकी प्रियतम की ओर आकृष्ट हो रहा है। इस दोहे में कवि ने नायिका की इसी विवशता का वर्णन किया है। प्रियतम के प्रेम में रंगी हुई नायिका अपनी अंतरंग सखी को संबोधित करते हुए कहती है कि -

व्याख्या : हे सखी! जिस घड़ी मैंने प्रियतम के अंग-प्रत्यय के अपूर्व सौंदर्य राशि के दर्शन किए है, मेरा मन बार-बार उसी रूप-सौंदर्य को देखने के लिए आकृष्ट होता है। मेरा यह मन लोक-लाज की रस्सी को तोड़कर उसी प्रियतम के दिव्य रूप को निहारने में लगा रहता है। हे सखी! मेरे इस मन की स्थिति तो प्रियतम के सौंदर्य रूपी भँवर में फँसी हुई नौका की तरह है अर्थात् यह मन प्रियतम के रूप-सौंदर्य में ही डूबा रहता है।

काव्य सौंदर्य :

1. भंवर में पड़ने से नाव घूम फिरकर एक ही जगह चक्कर काटती है। उसकी रस्सी टूटने पर उसका डूबना निश्चित है। वही दशा नायिका के मन की हो गई है।
2. 'झौंर' शब्द झूमर का रूपांतर है। गोलाकृति में झूमते हुए किसी वस्तु या समूह को झूमर अथवा झौंर कहते हैं।
3. हेमचंद्र की देशी नाममाला में 'झौंर' शब्द 'झौंड़लिया' के रूप में मिलता है। इसका अर्थ रास के सदृश एक नाच है जिसमें अनेक व्यक्ति मंडल बांधकर एक घेरे में नाचते हैं।
4. 'फिरि फिरि' तथा 'अंग-अंग' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
5. 'भयौ भौर' में छेकानुप्रास अलंकार।
6. 'लाज की लाज' तथा 'छबि झौंर' में रूपक अलंकार है।
7. शृंगार रस।

बोध प्रश्न

- उपर्युक्त दोहे में नायिका की मनःस्थिति को भंवर में फँसे नाव के साथ क्यों तुलना की गई है?

12.3.4 समीक्षात्मक अध्ययन

प्रिय छात्रो! बिहारी रीतिसिद्ध कवि हैं। उन्होंने मुगल साम्राज्य के समृद्धि काल में अपनी काव्य-साधना की। उस समय प्रजा सुखी थी और शासकों ने भी देश में शांति स्थापित कर दी थी। विद्रोह की भावना भी एक प्रकार से मिट चुकी थी।

'बिहारी सतसई' की मूल प्रवृत्ति शृंगार थी। सतसई की रचना की प्रेरणा के संबंध में एक कहानी प्रचलित है। कहा जाता है कि बिहारी जब राजा जयसिंह के राज्य में पहुँचे तब राजा अपनी नवविवाहिता पत्नी के अनुराग में इस कदर डूबे हुए थे कि उन्हें राज-काज का ध्यान ही नहीं रहा। तब बिहारी के दोहे की मार ने राजा जयसिंह को अंतःपुर के घेरे से मुक्त किया -

नहिं परागु, नहीं मधुर मधु, नहिं विकासु, इहि काल।
अली कली ही सौं बंध्यौ, आगै कौन हवाल॥

बिहारी को यदि जिंदादिल व्यक्ति कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। 'सतसई' (सात सौ पदों का संग्रह) में सम्मिलित दोहे इसका प्रमाण हैं। एक ओर जहाँ उनकी शृंगारिक उक्तियों से रसिकता टपकती है, वहीं दूसरी ओर अनेक ऐसी उक्तियाँ हैं जो पाठकों के हृदय को गुदगुदा कर मुस्कुराने के लिए बाध्य करती हैं। केवल हास्य ही कवि का एकमात्र उद्देश्य नहीं है, अपितु असामाजिक तत्वों पर तीव्र व्यंग्य करना उनका उद्देश्य प्रतीत होता है।

'बिहारी सतसई' शृंगार रस प्रधान है। फिर भी इसमें संयोग और वियोग शृंगार के साथ-साथ वैराग्य, नीति आदि कई विषयों के दोहे भी मिलते हैं। नायिका भेद के प्रायः सभी प्रकार के उदाहरण बिहारी की सतसई से देखे जा सकते हैं।

बिहारी की रसिकता का मेरुदंड विलासिता नहीं, बल्कि कलाप्रियता है -

तंत्रिनाद कवित्त रस सारस राग रतिरंग।
अनबूडे बूडे तिरे जो बूडे सब अंग॥

बिहारी उन लोगों को पशु ही मानते हैं जिनके मानस में प्रेम का अजस्र स्रोत नहीं उमड़ता -

गिरि तै ऊँचे रसिक मन बूडे जहाँ हजार।
वहै सदा नर पसुन को प्रेमपयोधि पगार॥

बिहारी का प्रेम पयोधि है। वे कली-कली का रस लेने वाली भ्रमर-धर्म को नहीं मानते -

चटक न छाँडतु घटत हूँ, सज्जन नेहु गंभीरु।
फीको परै न, बरु घटै, रंग्यौ चोलरंग चीरू॥

बिहारी के प्रेम में मर्यादा में रहने की प्रवृत्ति है। वह समाप्त भले ही हो जाए पर चटक नहीं छोड़ता। और तो और उनके नायक और नायिका प्रेम भरी विविध चेष्टाएँ भरे भवन में भी अपनी मर्यादा में रहकर नैनों के माध्यम से करते हैं -

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे भौन मैं करत हैं, नैननु ही सब बात॥

बिहारी शृंगार के संयोग पक्ष में हावभाव और अनुभवों का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण करते हैं। उसमें बड़ी मार्मिकता है। संयोग का एक उदाहरण देखिए -

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सोह करे, भौंहनु हंसे दैन कहे, नटि जाय॥

उपर्युक्त दोह में आप यह देख सकते हैं कि राधा कृष्ण से बातचीत करने के लोभ में उसकी वंशी छिपा देती हैं। वह एक क्षण के लिए यह दर्शाती है कि वंशी उसी के पास है और दूसरे ही क्षण यह प्रकट करती है कि वंशी उसके पास नहीं है, ताकि बातचीत देर तक चल सके।

जहाँ संयोग शृंगार का वर्णन सतसई में उपलब्ध है वहीं वियोग शृंगार की भी उक्तियाँ हैं। नायिका की विरह जनित दुर्बलता का सुंदर उदाहरण है -

इति आवत चली जात उत, चली, छेसातक हाथ।
चढी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासनु साथ॥

नायिका नायक के विरह में इतनी क्षीण हो गई कि साँस लेने और छोड़ने के साथ ही छह साथ हाथ इधर आ जाती है और फिर उधर चली जाती है। मानो ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने उच्छवासों के साथ चिपटी हुई हिंडोरे पर चढ़ी है।

प्रायः यह देखा जाता है कि मनुष्य सुख के समय प्रायः भगवान को भूल ही जाते हैं, लेकिन दुख के समय कोसने लग जाते हैं। बिहारी के अनुसार यह अनुचित है -

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईहिं न भूलि।
दई-दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि॥

बिहारी जहाँ शृंगार की बात करते हैं वही भक्ति की भी बात करते हैं। उदाहरण के लिए सतसई के आरंभिक दोहे को ही देख लीजिए- 'मेरी भव-बाधा हरौ राधा-नागरि सोय।' वे बाह्य आडंबरों का खंडन करते हैं - जपमाला, छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु।/ मन-काँचे नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु॥ (माला लेकर मंत्र जाप करने से या शरीर के अंगों पर तिलक लगाने से कुछ नहीं होता। ये सब तो बाह्य आडंबर हैं। सच्चे मन से राम का स्मरण करो, फल मिलेगा।)

बिहारी के दोहों में षट्ऋतु के अनुपम चित्र को देख सकते हैं। कुछ उदाहरण देखिए-

वर्षा : पावस निसि अँधियार में, रह्यौ भेद नाहिं आन।/ राति द्यौस जान्यो परत, लखि चकई चकवान॥

वसंत : नहि पावसु, त्रितुराज यह, तजि तरवर मति-मूल।/ अपतु भए बिनु पाईहै क्यों नव दल, फल फुल

ग्रीष्म : कहलाने एकत बसत, अहि गयूर मृग बाघ।/ जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दीघ निदाघ॥

बिहारी के दोहों में प्रकृति चित्रण के साथ-साथ मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को देखा जा सकता है। विश्वम्भर मानव का मत है कि बिहारी ने वैष्णव धर्म और निर्गुण मत, दोनों का समर्थन समान भाव से किया है। बिहारी के अनुसार यदि सच्चे साधु संतों का संग मिले तो इसी लोक को स्वर्ग बना सकते हैं-

अजौं तरयौना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक-रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कैं संग॥

विनम्रता को बिहारी ने मनुष्य का आभूषण ही नहीं माना, बल्कि उत्थान का साधन भी स्वीकार किया। मनुष्य जितना नम्र होगा उतना ही उन्नति करेगा -

नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोड़।
जेतौ नीचो है चले, तेतौ ऊँचौ होइ॥

बिहारी के एक-एक दोहे में विशेषताएँ भरी पड़ी हैं। भले ही उपमाओं की आवृत्ति हो, लेकिन भावों की पुनरुक्ति उनमें कहीं नहीं हैं। प्रत्येक दोहे का स्वतंत्र लक्ष्य है। बिहारी के दोहों में लाक्षणिक प्रयोग को देखा जा सकता है। उनकी एक प्रसिद्ध दोहा है -

चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न स्नेह गम्भीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

उपर्युक्त दोहे में प्रयुक्त 'वृषभानुजा' और 'हलधर' के दो श्लेषार्थ हैं। 'वृषभानुजा' अर्थात वृषभानु की पुत्री राधा और वृषभ (गाय) की अनुजा (बलराम की बहन)। 'हलधर' अर्थात हल को धारण करने वाला बैल और हलधर बलराम को भी कहा जाता है।

डॉ. ग्रियर्सन ने अपने 'लाल चंद्रिका' की भूमिका में यहाँ तक लिख दिया कि बिहारी भारत के थाम्सन् हैं। उन्होंने यह भी लिखा है कि किसी भी पाश्चात्य कवि की तुलना बिहारी से कदाचित नहीं की जा सकती। बिहारी अपने आप में विरले कवि हैं।

बोध प्रश्न

- बिहारी किसे पशु मनाते हैं?
- बिहारी के प्रेम क्या प्रवृत्ति दिखी देती है?
- बिहारी के अनुसार इसी लोक को स्वर्ग कैसे बना सकते हैं?
- बिहारी ने मनुष्यता का आभूषण किसे माना है?

12.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! बिहारी रीतिसिद्ध कवियों के प्रतिनिधि हैं। उनकी प्रसिद्धि का एकमात्र आधार 'सतसई' (सात सौ पदों का संग्रह) है। बिहारी के संबंध में यह कहा जाता है कि वे गागर में सागर भरने में निपुण हैं। काव्य-कला की दृष्टि से यह श्रेष्ठ ग्रंथ है। इसकी अनेक टीकाएँ मिलती हैं। कल्पना और भाषा के सामंजस्य को बिहारी के दोहों में देखा जा सकता है। उनके दोहों में ज्योतिष शास्त्र, वास्तु कला से लेकर मनुष्य की मानसिक स्थितियों और प्रकृति की रमणीयता को देखा जा सकता है। इनके दोहों में ब्रज के अतिरिक्त बुन्देली, अरबी-फारसी शब्दों को भी देखा जा सकता है। बिहारी की उक्तियाँ जीवन के अनुभव पर आधारित है। अध्येय दोहों में शृंगार रस प्रधान होने पर भी नम्रता का भाव निहित है।

12.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. बिहारी की रसिकता का मेरुदंड विलासिता नहीं, बल्कि कलाप्रियता है।
2. बिहारी के एक-एक दोहे में अनेक विशेषताओं को देखा जा सकता है। ज्योतिष शास्त्र, वास्तु विज्ञान से लेकर मानव जीवन की परिस्थितियों तक इन दोहों में देख सकते हैं।
3. बिहारी गागर में सागर भरने में निपुण हैं।
4. बिहारी के दोहों में संयोग और वियोग शृंगार के साथ-साथ भक्ति और नीति प्रधान दोहे भी सम्मिलित हैं।
5. बिहारी बाह्य आडंबरों का खंडन करते हैं।

12.6 शब्द संपदा

1. पयोधि	= सागर
2. मनोदशा	= मनःस्थिति
3. रमणीयता	= सुंदरता, मनोरमता
4. लाक्षणिक	= लक्षण शब्द शक्ति से उद्भूत
5. सामंजस्य	= तालमेल, अनुरूपता

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. बिहारी के दोहों की काव्यगत विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
2. पठित दोहों के आधार पर बिहारी के दोहों की विषय-वस्तु पर प्रकाश डालिए।
3. पठित दोहों के आधार पर यह निरूपित कीजिए कि बिहारी की रसिकता का मेरुदंड विलासिता नहीं, बल्कि कलाप्रियता है।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. बिहारी के दोहों में निहित सौंदर्य पक्ष पर प्रकाश डालिए।
2. निम्नलिखित दोहों की सप्रसंग व्याख्या प्रत्येक लगभग 200 शब्दों में कीजिए -
   (i) मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।/ जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित दुति होइ॥
   (ii) अपने अँग के जानि कै जोबन-नृपति प्रवीन।/ स्तन, मन, नैन, नितंब कौ बड़ौ इजाफा कीन॥

(iii) सनि-कज्जल चख-झख-लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।/ क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेसु सबु देहु॥

(iv) औरै-ओप कनीनिकनु गनी घनी-सिरताज॥/ मनीं धनी के नेह की बनीं छनीं पट लाज॥

(v) सालति है नटसाल सी, क्यौं हूँ निकसित नाँहि।/ मनमथ-नेजा-नोक सी, खुभी-खुभी जिय माँहि॥

(vi) बहके, सब जिय की कहत, ठौरु कुठौरु लखैं न।/ छिन ओरै, छिन और से, ये छबि छाके नैन॥

(vii) फिरि फिरि चितु उत हीं रहतु, टुटी लाज की लाव।/ अंग-अंग-छबि-झौंर मैं भयौ भौंर की नाव॥

(viii) हौं रीझी, लखि रीझिहौ, छबिहिं छबीले लाल।/ सोनजुही सी ह्वोति दुति-मिलत मालती माल॥

(ix) जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंक न होति लखाइ।/ सौंधे कैं डोरैं लगी अली, चली सँग जाइ॥

(x) अर तैं टरत न वर-परे, दई मरक मनु मैन।/ होड़ा-होड़ी बढ़ि चले चित, चतुराई नैन॥

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. 'बिहारी सतसई' में कौन सा रस प्रधान है? ( )
   (अ) हास्य (आ) शृंगार (इ) करुण (ई) वीभत्स
2. यौवन के आगमन के कारण नायिका की पुतलियों में क्या दिखाई देती है? ( )
   (अ) द्वेष (आ) चमक (इ) ईर्ष्या (ई) जुगुप्सा
3. डॉ. ग्रियर्सन ने बिहारी को भारत का .... माना है। ( )
   (अ) थाम्सन (आ) कीट्स (इ) शेक्सपीयर (ई) ईट्स
4. बिहारी किसका खंडन करते हैं? ( )
   (अ) भक्ति (आ) गुरु वंदना (इ) स्तुति (ई) बाह्य आडंबर

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. बिहारी ने .... को मनुष्यता का आभूषण माना है।
2. बिहारी की रसिकता का मेरुदंड .... है।
3. ....से आच्छादित आँखों में भी आकर्षण शक्ति विशेष होती है।

III. सुमेल कीजिए -

1. मेरी भव-बाधा हरौ	(अ) जोबन-नृपति प्रवीन
2. औरै-ओप कनीनिकनु	(आ) क्यौं हूँ निकसित नाँहि
3. अपने अँग के जानि कै	(इ) राधा नागरि सोइ
4. सालति है नटसाल सी	(ई) छबिहिं छबीले लाल
5. हौं रीझी, लखि रीझिहौ	(उ) गनी घनी-सिरताज

12.8 पठनीय पुस्तकें

1. बिहारी की वाग्विभूति : विश्वनाथप्रसाद मिश्र
2. कविवर बिहारी : जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'
3. बिहारी की सतसई : पद्मसिंह शर्मा
4. बिहारी और उनका साहित्य : परमानंद शास्त्री

खंड 4 : काव्यालोचन

इकाई 13 :रहीम : काव्यालोचन

रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 मूल पाठ : रहीम : काव्यालोचन
13.3.1 रहीम का जीवन परिचय
13.3.2 रहीम का रचना संसार
13.3.3 रहीम के काव्य की आलोचना
13.3.4 रहीम के काव्य की भाषा
13.4 पाठ सार
13.5 पाठ की उपलब्धियाँ
13.6 शब्द संपदा
13.7 परीक्षार्थ प्रश्न
13.8 पठनीय पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में रहीम का नाम प्रसिद्ध है। वे मध्यकाल के कवि हैं उनका पूरा नाम अब्दुल रहीम खानखाना है। रहीम अकबर के दरबार के बैरम खां के पुत्र हैं। रहीम का व्यक्तित्व दानशील, हृदयशील, धैर्यवान, साहसी था। वे अनेक भाषाओं का ज्ञान रखते थे। रहीम मुस्लिम थे लेकिन उनके दोहे का विषय हिन्दुओं के देवी-देवताओं की स्तुति गान करते हैं। हिंदी जाननेवाले प्रत्येक व्यक्ति रहीम के नाम से परिचित हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ में रहीम को भक्तिकाल के फुटकल कवियों में रखा है। भक्ति काल के कवियों में रहीम का विशेष एवं अलग स्थान है। रहीम सेनापति, प्रशासक, संरक्षक, परोपकारी, राजनीतिक, बहुभाषाविद, कला प्रेमी, ज्योतिष और विद्वान थे। रहीम कलम और तलवार का प्रयोग किया है।

13.2 उद्देश्य

छात्रो इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- भक्तिकालीन कवि रहीम का जीवन परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रहीम के व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे।
- रहीम के रचना संसार की अंतर्वस्तु को समझ सकेंगे।
- रहीम के काव्य की भाषा-शैली के बारे में जान सकेंगे।

13.3 मूल पाठ : रहीम : काव्यालोचन

13.3.1 रहीम का जीवन परिचय

रहीम का जन्म संवत 1613 वि. तदनुसार सन् 1556 में हुआ। रहीम के पिताजी मुग़ल-सम्राट अकबर के अभिभावक या संरक्षक बैरम खां खानखाना थे। रहीम अकबर के मौसेरे भाई थे। रहीम के बचपन में ही पिताजी का देहांत हुआ था। रहीम का बचपन अकबर के राजदरबार में बिताया है। रहीम का पूरा नाम अब्दुल रहीम खां खानखाना है। रहीम की पढाई के बाद संवत 1633 वि. में गुजरात की सुबेदारी पर इनकी नियुक्ति कर दी। संवत 1635 वि. में गुजरात के विद्रोह में रहीम को विजय मिली। इसी सम्मान में अकबर ने रहीम को खानखाना की पदवी तथा पाँच हजार की मनसब दी।

रहीम को राजकाज में कोई विशेष अभिरुचि नहीं थी इसलिए अकबर ने संवत 1940वि. में सुलतान सलीम की शिक्षा का भार इनपर सौंपा गया था। रहीम एक अच्छे रचनाकार थे, कहा जाता है कि जहाँगीर का हिंदी के प्रति प्रेम रहीम के वजह से ही हुआ था। रहीम कई भाषाओं को जानते थे इसलिए उनका अनुवाद कार्य भी बहुत अच्छा रहा है। उन्होंने 'वाकयात बाबरी' जो बाबर का आत्म-चरित का तुर्की भाषा से फारसी में अनुवाद किया। इस अनुवाद के बदले में रहीम को जौनपुर का इलाका जागीर में मिला।

रहीम का जीवन बहुत दुःखमय रहा। अपने समय ही अपने पुत्र को खो बैठे थे। कभी भी उन्हें स्थायी रूप से शान्ति नहीं मिली थी। लेकिन उनका व्यक्तित्व बहुत ही अच्छा था। वे बड़े ही दानी, दयालुचित तथा परोपकारी थे। साथ ही साथ बड़े धैर्यवान और ईश्वर-विश्वासी थे।

अकबर के मृत्यु के बाद रहीम की सारी संपत्ति जहाँगीर ने छीन ली। उन्हें गरीब बना दिया गया है। रहीम अपनी गरीबी के कारण इधर-उधर भटकते रहें हैं। फिर भी ऐसी गरीबी में लोग रहीम के पास आते रहते। मजबूर होकर रहीम अपने दोहों के माध्यम से लोगों को कहते हैं कि-

"ये रहीम घर-घर फिरै, माँगि मधुकरी खांहि।
यारौ यारी छोडि दो, अब रहीम वै नाहिं।।"

बोध प्रश्न

- रहीम का जन्म कब हुआ?
- रहीम किस राजा के दरबारी कवि थे?

13.3.2 रहीम का रचना संसार

रहीम का जीवन हमेशा कर्मशील और संघर्षमय रहा है। उन्हें कभी शांति से बैठने का समय ही नहीं मिला। एक महान सेनापति, सफल राजनीतिज्ञ, सफल प्रशासक, बहुभाषाविद, चिंतक और कवि के रूप में जीवन जीया है। उनके काव्य संसार में अपना जीवन और जगत का अनुभव को प्रस्तुत किया है। रहीम का रचना संसार का परिचय बहुत ही संक्षिप्त रुप में मिलता है। उनके काव्य संसार में नीति, भक्ति और शृंगार को अभिव्यक्ति किया है। उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्न प्रकार से हैं -

दोहावली

रहीम की प्रसिद्धि का कारण उनके दोहे रहे हैं। इसमें लगभग नीति के दोहे पाये जाते हैं। वैराग्य या शृंगार कम वर्णित हैं। इस दोहावली में 299 दोहें हैं उसमें 'रहीम' और 'रहिमन' का नाम का उल्लेख मिलता हैं ।

नगर शोभा

इस ग्रंथ में 142 दोहें संगृहीत हैं यह शृंगारिक कृति है। इसमें अकबर की शृंगारिकता की झलक दिखायी देती हैं। मीना बाजार में एकत्रित होने वाली विभिन्न वर्णों और व्यवसायों की स्त्रियाँ इस ग्रंथ की प्रेरणा रही है। जौहरिन, रंगरेजिन, तुरकिन, कैथिन, गुजरी, बंजारिन आदि के सहज स्वाभाविक सौन्दर्य, उनके हाव-भाव, उनकी भंगिमाओं, उनके बाह्य क्रिया कलापों की झलक दिखायी देती हैं ।

बरवै नायिका भेद

नायिका भेद के लिए 'बरवै नायिका भेद' ग्रंथ को उचित माना जाता है। इस ग्रंथ की भाषा अवधी रही है। रहीम 'बरवै' छंद के लिए प्रसिद्ध हैं। ऐसा कहा जाता है कि तुलसीदास ने बरवै लिखने की प्रेरणा रहीम से ही ली है। रहीम ने इस ग्रंथ में भिन्न-भिन्न प्रकार की नायिकाओं का उदाहरण दिया है।

बरवै

रहीम के 'बरवै नायिका भेद' के अलावा अन्य 105 फुटकर बरवै मिलते हैं। जो श्री याज्ञिक द्वारा सम्पादित 'रहीम रत्नावली' में संकलित है।

शृंगार सोरठा

रहीम का स्वतंत्र ग्रंथ जो शृंगार सोरठा नाम से प्रसिद्ध हैं। लेकिन अब वह उपलब्ध नहीं उसके सात छंद 'रहीम रत्नावली' संकलनकर्ता पंडित याज्ञिक में मिलते हैं। इसमें वियोग, विरह शृंगार का चित्रण है।

मदनाष्टक

यह कृति 'मदन' शब्द से ही पहचाना जाता है कि शृंगारिक रचना है । इस में कृष्ण की रास लीला का वर्णन है, कृष्ण-गोपियों के प्रेम का सुंदर चित्रण हुआ है। इस ग्रंथ की भाषा संस्कृत, हिंदी की खड़ीबोली मिश्रित शैली में है।

फुटकल पद

रहीम के 'रास पंचाध्याय' की रचना का अनुमान भक्तिकाल की टिका में उपलब्ध दो पदों के आधार पर लगाया गया है। लेकिन 'रास पंचाध्याय' ग्रंथ कहीं से उपलब्ध नहीं हुआ। विभिन्न संकलन कर्ताओं ने रहीम के कुछ कवित्त, सवैये आदि प्राप्त हुए उसे फुटकल पद में सम्मिलित किया है। इस फुटकल पदों में कृष्ण के सौंदर्य और मोहक छवियों का वर्णन है।

खेट कौतुक जाताकम्

इस ग्रंथ का विषय ज्योतिष माना जाता है। इसमें संस्कृत और फारसी मिश्रित छंद में जातक के भविष्य पर विचार किया गया है।

रहीम ने बाबर द्वारा लिखित आत्मकथा 'बाबरनामा' का तुर्की से फारसी में 'वाकेआत बाबरी' नाम से अनुवाद किया है। रहीम का एक फारसी दीवान भी मिलता है। रहीम में सृजनात्मक क्षमता थी। उनकी कला, संस्कृत और ज्योतिष में अच्छी पकड़ थी। लेकिन साहित्य संसार में नीति, भक्ति और शृंगार के कारण उनकी रचनाएँ प्रसिद्ध हुए हैं।

बोध प्रश्न

- रहीम की रचनाओं के नाम बताइए।
- रहीम के किस काव्य में शृंगार का वर्णन है?

13.3.3 रहीम के काव्य की आलोचना

(अ) भाव पक्ष

रहीम के काव्य में भाव एवं विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने अपने काव्य में अपना जीवन अनुभूति और सत्यता को व्यक्त किया है। इसी के कारण उनका काव्य जन साधारण में प्रयुक्त हुआ है। रहीम ने नीति दोहे की रचना की है। नीति दोहे के अतिरिक्त रहीम ने भक्ति, वैराग्य प्रेम, शृंगार, ह्रास, परिहास को भी उल्लेख किया है। रहीम मुसलमान होते हुए भी उनके काव्य का विषय श्रीकृष्ण के प्रति अटूट श्रद्धा रही है।

नीति

रहीम लोकप्रिय कवि हैं इन्होंने नीति दोहे की रचना की है । रहीम अपने विचारों को काव्य के माध्यम से सीधे व्यक्त किया है। रहीम के रचना से उनके जीवन से संबंधित घटनाओं का पत्ता चलता है। उनके काव्य में अचार-विचार, व्यवहार, विश्वास, ज्ञान और अनुभव को देखा जा सकता है। रहीम नीति दोहों में मनुष्य को मानवीय धर्म का पाठ पढ़ाया है। रहीम कहते हैं कि याचकता मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि में गिरा देती है। जितना हो सके उतना दूसरों की सहायता करनी चाहिए। दया, आदर, प्रेम मनुष्य के प्रति बनाया रखना चाहिए। रहीम कहते हैं कि जीत और हार का कारण मन ही है - शरीर नहीं मन ही बहुत बड़ा पंच है।

जो रहीम मन हाथ है, तो तन कहूँ किन जाहि ।
जल में जो छाया परे, काया भीजती नाहि।

रहीम ने आम जनता के जीवन को अपने काव्य में प्रस्तुत किया। रहीम के काव्य में लोक हित को ज्यादा ध्यान दिया। रहीम ने अपने नैतिक विकास के लिए सत्संग, परोपकार, क्षमा, स्वाभिमान और निष्कपटता आदि गुणों पर अधिक बल दिया -

"ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अंगार ज्यों
तातो जाते अंग, सीरो पै करो लगै।

रहीम के निति दोहे में परोपकार की बात की हैं-

"तरूवर फल नहिं खात है, सरवर पिय हिं न पान
कहि रहीम पर काज हित, संपति संचहि सुजान।"

प्रेम

समाज में प्रेम एक महत्वपूर्ण आधार स्तंभ है। सामाजिक जीवन में यह समरसता को बनाया रखता है। रहीम का प्रेम से संबंधित इनकी मान्यता उच्च कोटि की मानी जाती है। प्रेम के सुख को स्वर्ग के सुख से भी उच्चतर माना है । सभी ओर प्रेम ही प्रेम चाहते हैं। इसलिए अपने काव्य के माध्यम से बैर-विरोध न रखने का संदेश देते हैं।

"रीति-प्रीति सबसों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन यही जन्य की, बहुरि न संगति होत "

रहीम कहते हैं कि प्रेम का रिश्ता बहुत नाजुक या कोमल होता है। इसे संभालकर रखना आवश्यक है वे अपने दोहे में कहते हैं

"रहिमन धागा प्रेम को, मत तोड़ो चटकाय
टूटे से फिर ना मिले, मिले गाँठ पड़ जाय।"

शृंगार

रहीम ने अपने रचना में नीति के साथ-साथ शृंगारिक रचनाएँ भी की है। इन्होंने शृंगार के दोनों भेदों को संयोग एवं वियोग का वर्णन किया है। शृंगार चेतना की दृष्टि से रहीम के शृंगारिक बरवै को याद किया जाता है। रहीम ने शृंगार का वर्णन 'बरवै नायिका भेद', 'नगर शोभा', 'मदनाष्टक' तथा अन्य छंदों या पदों में शृंगारिक भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। उनका शृंगार से सम्बंधित कुछ उदहारण निम्न प्रकार से है -

"तरल तरनी सी है तीर सी नौकदारै
अमल कमल सी है दीर्घ है दिल बिदारैं
मधुर मधुप हरैं माल मस्ती न राखैं
बिलासित मन मेरे सुंदरी श्याम आँखै।।"

भक्ति

रहीम के दोहे की रचना भक्ति पर भी आधारित हैं। रहीम मुसलमान होकर भी उनके काव्य में शिव, हनुमान, सूर्य राम और कृष्ण के प्रति उनकी भक्ति भावना थी। रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं कि- "भक्ति-काल का वैविध्य कई दृष्टियों से रहीम के कृतित्व से पूरा होता है। मुसलमान और उस पर भी तत्कालीन शासन के अंग होकर वे हिन्दू देवताओं का स्तुति-गान करते हैं। शाही दरबार के मान्य सदस्य होते हुए सूफी-संतों –भक्तों की कोटि से अपने को जोड़ते हैं।" रहीम आम जनता के साथ जोड़ते हैं । वे उपेक्षितों, वंचितों के उद्धार के लिए निराकार और साकार ईश्वर के शरण में जाते हैं।

रहीम के भक्ति काव्य में उपेक्षित, वंचितों के उद्धार के लिए निराकार या साकार ईश्वर की शरण में जाने का विधान है। इनका विचार कबीर जैसा है जो विश्व के सम्पूर्ण चैतन्य पर प्रकाश डाला जाता है। ऐसे में ही जीवन का आनंद है। इसलिए प्रिय की अपेक्षा प्रिय की चाह की आकांक्षा ज्यादा बलवती हो जाती है -

बिंदु भी सिंधु समान, को अचरज कासों कहै
हेरनहार हेरान, रहिमन अपुने आपातें।

रहीम ने राम-नाम का अपार महत्त्व बताया है। राम नाम किसी के मुंह से गलती से भी निकल जाए तो उसकी सभी कामनाएँ पूरी होगी। जिसके मुंह से राम नाम का स्मरण नहीं हुआ उसकी तो जिदंगी व्यर्थ में गंवायी है।

राम-नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि ।
कहि रहीम तिहि आपनो, जन्म गंवायी बादि ।।

बोध प्रश्न

- रहीम के दोहों के भाव-पक्ष की एक विशेषता बताइए।
- रहीम के भक्ति काव्य में किस-किस की भक्ति का वर्णन है?

(आ) कलापक्ष

साहित्य में भाव पक्ष को काव्य की आत्मा माना जाता है। तो कलापक्ष को काव्य का शरीर माना जाता है। रचनाकार के विविध भावों की विविध ढंग से प्रस्तुति द्वारा संपूर्ण कला का सृजन किया जाता है। साहित्य में भाषा एक भावाभिव्यक्ति करने का माध्यम है। कविता को चमत्कार तथा रसमय बनाने का काम शब्दों के माध्यम से कलापक्ष का है। रहीम ने भी मानव भावनाओं को अभिव्यक्ति करने के लिए शब्द का प्रयोग किया है।

रहीम अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। वे अपने काव्य में तुर्की फारसी, अरबी, संस्कृत और हिंदी का प्रयोग किया है। इसी के साथ-साथ अवधी, ब्रज, खड़ीबोली और डिंगल आदि भाषाओं का भी प्रयोग हुआ है। बरवै की रचना अवधी में की है। दोहे, सोरठे तथा कवित-सवैये ब्रज में और खड़ीबोली में मदनाष्टक की रचना की है। संस्कृत, फारसी और हिंदी मिश्रित भाषा में खेट कौतुकम की रचना की है। रहीम के काव्य में मुहावरों और लोकोक्तियों का भी सुन्दर ढंग से प्रयोग हुआ है। जैसे- ' कागद को सो पूतरा' 'फाटे दूध को मथे न माखन होय।' 'समय चुक की हुक' आदि।

भावों को अभिव्यक्त करने का ढंग या रीति को शैली कहा जाता है। कवि या लेखक की शब्द-योजना और वाक्य का प्रयोग या बनावट का नाम शैली है। रहीम की भाषा शैली में उपदेशात्मक, दृष्टांतपरक, संवादात्मक, अलंकृत, परिगानात्मक, अन्योक्तिपरक और प्रतिक शैली का प्रयोग हुआ है।

बड़े बड़ाई ना करै, बड़ो न बोले बोल ।
रहीमन हीरा कब कहै, लाख टका का मोल ।। (उपदेशात्मक शैली)
सौदा करौ सो करि चलो, रहिमन यादी बाट ।
फिर सौदा पेहौ नहीं, दूर जान है बाट ।। (प्रतीकात्मक शैली)

इससे रहीम के काव्य को बाह्य सौंदर्य प्राप्त हुआ। रहीम के काव्य में छंद भी मिलते हैं। उन्होंने दोहा, सोरठा, बरवै, पद, सवैया, मालिनी और घनाक्षरी आदि छंदों का प्रयोग किया है -

पलटि चली मुसुकाय, दुति रही अपजाय अति।
बाती सी उसकाय, मानों दिनी दीप की ।।

रहीम के काव्य में अलंकार स्वाभाविक, सरल और रसानुकुल प्रयोग हुआ है। उनके अलंकारों में दृष्टांत का बहुत बड़ा महत्व रहा है। उन्होंने दृष्टांत अथवा उदाहारण देकर अपने

कथन को प्रस्तुत करते हैं। रहीम के दोहों में जब पहली पंक्ति में दृष्टांत का प्रयोग हुआ तो दूसरी पंक्ति में भी दृष्टांत के रूप में आती है -

जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहुं किन जाहिं।
जल में ज्यों छाया परी, काया भीजति नाहिं।।

बोध प्रश्न

- 'मदनाष्टक' किस भाषा में रचित है?
- रहीम के काव्य में कौन-कौन सी शैलियाँ मिलती हैं?

13.4 पाठ सार

हिंदी साहित्य के इतिहास में मध्यकालीन कवियों में से एक महत्वपूर्ण कवि रहीम माने जाते हैं। रहीम का जन्म सन 1553. ई. में हुआ, इनका पूरा नाम अब्दुल रहीम खां खानखाना है। रहीम अकबर के दरबारी कवियों में से एक थे। रहीम का स्वभाव एवं व्यक्तिव बहुत ही अच्छा था, वे धैर्यवान, दानवीर, दयालु थे। आम जनता की मद्दत करने में विश्वास रखते थे। रहीम एक अच्छे कवि नहीं थे बल्कि वे एक अच्छे कवि के साथ-साथ सेनापति भी थे । वे कई युद्ध भी जीते हैं। रहीम का स्थान विद्वानों के श्रेणी में माना जाता है। जनता की सेवा करना चाहते हैं। वे अपनी संपति लोगों में बाँटते थे। रहीम बहुभाषी थे। वे अनेक भाषाओं का ज्ञान रखते थे। इसलिए उनका अनुवाद कार्य भी बहुत अच्छा रहा है। उन्होंने 'वाकयात बाबरी' जो बाबर का आत्म- चरित का तुर्की भाषा से फारसी में अनुवाद किया। इस अनुवाद के बदले में रहीम को जौनपुर का इलाका जागीर में मिला।

रहीम ने अनेक काव्य रचना कियी है । रहीम दोहावली, बरबै नायिका भेद और नगर शोभा, सोरठा और रास पंच्चाध्यायी खंडित रूप में मिलते हैं। मदनाष्टक , नगर शोभा, शृंगार सोरठा, फुटकल पद और खेट कौतुक जातकम आदि रचनाएँ हैं। इनके दोहें का विषय नीति, प्रेम, शृंगार और भक्ति हैं। उनके रचना में संसार का अनुभव का निचोड़ पाया जाता है। दोहे प्रायः उपदेश का रूप धारण कर लेते हैं और कहीं-कहीं मात्र सूक्ति बनकर रह गए हैं। रहीम के काव्य में भाव पक्ष का उजागर किया गया इसमें नीति के दोहे है जो जन साधारण का जिह्वा पर हमेशा रहते हैं। रहीम अपने अनुभूति के सत्यता के कारण ही इनके दोहों को जनसाधारण द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। नीति के अतिरिक्त भक्ति, वैराग्य, प्रेम , शृंगार, ह्रास, परिहास आदि के भी बहुरंगी चित्र दिखते हैं । रहीम मुसलमान होते हुए भी एक हिन्दू की भांति श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति भावना थी। नीति विषयक दोहों में जीवन का गहरा अनुभव हैं।

रहीम के काव्य की भाषा अवधी और ब्रज दोनों है। बरबै नायिका भेद की भाषा अवधी और रहीम दोहावली की भाषा ब्रज है। वे अरबी और संस्कृत के साथ-साथ आदि भाषाओं के मर्मज्ञ होने के कारण उनके काव्य में अनेक भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा सरल एवं स्वाभाविक है। रहीम की भाषा शैली में उपदेशात्मक, दृष्टांतपरक, संवादात्मक, अलंकृत, परिगानात्मक, अन्योक्तिपरक और प्रतिक शैली का प्रयोग हुआ है। वह सरस, सरल और बोधगम्य हैं। रचना के दृष्टि से रहीम मुक्तक शैली को अपनाया है।

रहीम ने अपने काव्य में शृंगारिक, शांत और हास्य रस का समावेश है। शृंगार में संयोग एवं वियोग दोनों का वर्णन मिलता है। रहीम के प्रिय छंदों में दोहा, सोरठा, बरवै, पद, सवैया, मालिनी और घनाक्षरी आदि प्रमुख हैं। इनके काव्य में प्रायः दृष्टांत, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक आदि अलंकारों का प्रयोग मिलता हैं।

13.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. रहीम की गणना भक्तिकाल के संप्रदाय निरपेक्ष कृष्ण भक्त कवियों में की जाती है।
2. रहीम कवि के साथ-साथ अच्छे योद्धा और सेनापति भी थे।
3. रहीम बहुभाषाविद थे और अपनी रचनाओं में उन्होंने विविध भाषाओं तथा शैलियों का सफल प्रयोग किया है।
4. रहीम के नीतिपरक दोहे आज भी सूक्ति के रूप में जनसाधारण की ज़बान पर है।

13.6 शब्द संपदा

1. अभिभावक	=	संरक्षक, सरपरस्त, देखरेख करने वाला (गार्जियन)
2. आत्म चरित	=	स्वलिखित जीवन चरित्र, आत्मकथा
3. काया	=	शरीर
4. छाया	=	किसी प्रकाश स्रोत के मार्ग में किसी वस्तु या आड़ से होने वाला अंधकार, परछाई, छाँव
5. जन्य	=	जन संबंधी
6. ज्योतिष	=	एक प्रसिद्ध विद्या या शास्त्र जिसमें आकाशीय ग्रह, नक्षत्रों आदि का विवेचन होता है
7. दयालु	=	कृपालु, दया करने वाला
8. दानवीर	=	बहुत बड़ा दानी
9. द्रवीभूत	=	जो द्रव या सरल में परिवर्तित हुआ हो, पिघलना
10.नीति	=	उचित या ठीक रास्ते पर ले जाने या चलने की क्रिया
11.प्रीति	=	हर्ष, आनंद, प्रेम, अनुराग
12.लोकप्रिय	=	सामान्य जन को पसंद आने वाला
13.वैराग्य	=	सांसारिक बंधनों से विमुखता, अनासक्ति, उदासीनता

13.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. रहीम के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।
2. रहीम के कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
3. रहीम के काव्य में भाव पक्ष का वर्णन कीजिए।

4. रहीम की भाषा शैली पर विचार कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. रहीम का जीवन परिचय संक्षिप्त में दीजिए।
2. रहीम के काव्य में शृंगारिकता पर प्रकाश डालिए।
3. रहीम जन सामान्य के कवि हैं - सिद्ध कीजिए।
4. रहीम के नीतिपरक दोहों पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए।

1. रहीम का जन्म कब हुआ? ( )

(अ) सं. 1613 वि. (ब) सं. 1713 वि. (क) सं. 1615 वि. (ड)सं. 1613 वि.

2. रहीम किस राजा के दरबारी कवि थे? ( )

(अ) अकबर (ब) औरंगजेब (क) मुहम्मद गौरी (ड) लोदी

3. मदनाष्टक किस की रचना है? ( )

(अ) तुलसीदास (ब) कबीर (क) रहीम (ड) रसखान

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. रहीम की मृत्यु .... वर्ष में हुई।
2. रहीम मुसलमान होते हुए उनके काव्य में .... का वर्णन है।
3. रहीम के काव्य में .... और .... भाषा का प्रयोग हुआ है।

III. सुमेल कीजिए।

1. दोहावली	(अ)	सात छंद
2. नगरशोभा	(ब)	संस्कृत, हिंदी खड़ी बोली मिश्रित
3. शृंगार सोरठा	(क)	299 दोहे
4. मदनाष्टक	(ड)	142 दोहे

13.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. रहीम रचनावली : सं. सत्यप्रकाश मिश्र
4. प्राचीन कवि : विश्वम्भर 'मानव'

इकाई 14 : रसखान : काव्यालोचन

रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 मूल पाठ : रसखान : काव्यालोचन
14.3.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व
14.3.2 भक्तिभावना
14.3.3 प्रेमतत्व निरूपण
14.3.4 सौंदर्यतत्व
14.3.5 काव्य शिल्प
14.3.6 कृष्णभक्ति काव्यधारा में रसखान का स्थान
14.4 पाठ सार
14.5 पाठ की उपलब्धियाँ
14.6 शब्द संपदा
14.7 परीक्षार्थ प्रश्न
14.8 पठनीय पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

हिंदी के कृष्णभक्त तथा रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों में रसखान का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। मुसलमान होते हुए भी कृष्ण के अनन्य भक्त थे। रसखान की अनुरक्ति न केवल कृष्ण के प्रति प्रकट हुई है बल्कि कृष्ण-भूमि के प्रति भी उनका अनुराग व्यक्त हुआ है। उन्होंने कृष्ण के सगुण और निर्गुण निराकार रूप दोनों के प्रति श्रद्धावान हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जिन मुस्लिम हरिभक्तों के लिए कहा था- "इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिंदू वारिए।" उनमें रसखान का नाम सर्वोपरि है। रसखान अर्थात रस की खान जिसने श्रीकृष्ण की भक्ति में अपना समस्त जीवन व्यतीत कर दिया। कृष्ण भक्ति ने उन्हें ऐसा मंत्रमुग्ध कर दिया कि गोस्वामी विट्ठलनाथ ने उन्हें वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित किया। वल्लभ संप्रदाय की कठोर अनुशासन और नियमों को न मानकर अपने भावों से भक्ति की और कृष्ण प्रेम की कविताएँ रचीं। इस इकाई में रसखान के जीवन-वृत्त और उनके काव्य पर विचार करेंगे।

14.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- रसखान के जीवन के विविध पहलुओं से परिचित हो सकेंगे।
- रसखान के काव्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- रसखान के काव्य में निहित भक्ति के संदर्भों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- रसखान की कविता में अभिव्यक्त भक्ति तथा प्रेम के विविध पक्षों को जान सकेंगे।

- रसखान की कविता में प्रयुक्त भाषा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

14.3 मूल पाठ : रसखान : काव्यालोचन

14.3.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

मध्यकालीन कवियों में रसखान का महत्वपूर्ण स्थान है। अनके कवियों की तरह इनका भी प्रामाणिक जीवन-वृत्त उपलब्ध नहीं है। अंतसाक्ष्य तथा बहिर्साक्ष्य के आधार पर उनके जीवन को रूपांतरित करने में सहायता मिलती है। उनकी कृति 'प्रेम वाटिका' की निम्नलिखित पंक्तियों से उनके जन्म तथा जन्मस्थान का अनुमान लगाया जा सकता है।

देखि गदर हिन साहबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-वंश की, ठसक छोरि रसखान॥
प्रेम निकेतन श्री बनहिं, आइ गोबर्धन धाम।
लाह्यो सरन चित चाहिके, जुगल सरूप ललाम॥

(रसखान : प्रेमवाटिका, दोहा सं.48 - 49)

यदि इन पंक्तियों को आधार बनाकर रसखान के परिवेश का रेखांकन किया जाए तो यह कहा जा सकता है- गदर तथा दिल्ली के श्मशान बनने की घटना 1555 ई. आस-पास की ठहरती है। यह वह समय था जब मुगल सम्राट हुमायूँ ने अपना खोया हुआ शासनाधिकार दिल्ली के सूरवंशीय पठान शासकों से पुनः हस्तगत किया था। इस अवसर पर भयंकर नरसंहार और विध्वंस हुआ था, जिसके कारण दिल्ली श्मशान नजर आ रही थी। इस रक्तपात को देखकर रसखान का कोमल कवि ह्रदय द्रविभूत होकर विरक्ति से भर गया और वे बादशाह वंश की 'ठसक' का त्याग कर गोवर्धन धाम यानी मथुरा की ओर चले गए। शेरशाह सूरी ने सूरवंश की नींव 1528 ई. रखी थी। आगे चलकर इस शासन का अंत इब्राहिम खाँ तथा अहमद खाँ के पारस्परिक कलह के कारण 1555 ई. में हुआ। इस गदर के समय रसखान की आयु लगभग बीस-बाइस वर्ष की रही होगी। इस आधार पर उनका जन्म काल 1533 ई. के आस-पास ठहरता है।

रसखान ने 'प्रेम वाटिका' में दिल्ली छोड़कर गोवर्धन-धाम जाने का उल्लेख किया है, इसलिए इनके जन्म-स्थान को लेकर कोई भ्रांति नहीं रही है। यह स्पष्ट होता है कि रसखान की जन्म-स्थली दिल्ली ही रही है। उनके जन्म-काल को लेकर कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलते। पुष्टी-मार्गी कृष्ण-भक्त कवियों से संबंधित दो वार्ता ग्रंथ मिलते हैं- "चौरासी वैष्णव की वार्ता" और "दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता"। रसखान विषयक उल्लेख "दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता" की 218 वीं वार्ता में मिलता है। परंतु उनके जन्म-संबंधी कोई उल्लेख नहीं मिलता। मध्यकालीन ग्रंथों में बाबा वेणी माधवदास कृत "मूल गोसाईं चरित" में उल्लेख है कि रसखान ने 'रामचरित मानस' तीन वर्ष तक सुनी थी-

जमुना तट पै त्रय वत्सर लौं, रसखान हिं जाइ सुनावत भी।

इससे रसखान के जन्म काल की पुष्टि नहीं होती। शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' में रसखान का जन्म संवत् 1630 माना है, जबकि मिश्रबंधुओं ने अपनी रचना 'मिश्रबंधु विनोद' में इनकी जन्मतिथि संवत् 1645 के आस-पास माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रसखान के जन्म-

मृत्यु संबंधी कुछ भी न कहकर मात्र उनके रचना-काल संबंधित उल्लेख किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने कविताकाल संवत् 1671 माना है। जॉर्ज ग्रियर्सन लिखते हैं- "सैयद इब्राहिम रसखान कवि हरदोई जिले के अंतर्गत पिहानी के रहनेवाले, जन्मकाल 1573 ई. यह पहले मुसलमान थे। बाद में वैष्णव होकर ब्रज में रहने लगे थे। इनका वर्णन भक्तमाल में है।" (जॉर्ज ग्रियर्सन, हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ.107)

एफ़.ई.के. ने अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ हिंदी लिटरेचर' में रसखान के विषय में कहा है कि "यह पहले मुसलमान थे और इनका नाम सैयद इब्राहिम था। ये कृष्ण के भक्त हुए हैं। इन्होंने कृष्ण की प्रशंसा में काव्य-रचना की जो अति सुंदर एवं मधुर है। इनके एक शिष्य कादिर बख्श थे। उन्होंने भी हिंदी में काव्य-रचना की।" (एफ़.ई.के., ए हिस्ट्री ऑफ हिंदी लिटरेचर, पृ. 68)। देवेंद्र प्रताप उपाध्याय के अनुसार, "रसखान का जन्म संवत् 1630, जीवन से विराग संवत् 1664, प्रेम वाटिका की रचना संवत् 1672 और मृत्यु संवत् 1690 के लगभग माना जाय तो अधिक संगत होगा। इस प्रस्ताव में यह स्मरणीय है कि संवत् 1662-64 में ही जहांगीर और खुसरो का भयानक संघर्ष भी होता है।" (देवेंद्र प्रताप उपाध्याय, रसखान : जीवन और कृतित्व, पृ. 48)। श्री भवानी शंकर याज्ञिक, "रसखान का जन्म संवत् 1590, ब्रजगमन संवत् 1612, 1627 के उपरांत वैष्णव संप्रदाय में दीक्षा, 1634 से 1637 तक मानस-कथा श्रवण, 1672 में 'प्रेम-वाटिका' की रचना तथा लगभग 85 वर्ष की आयु में संवत् 1675 के आस-पास रसखान की मृत्यु का उल्लेख किया है।" (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल, पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ, पृ. 315)

रसखान के जन्म-स्थान को दिल्ली और पिहानी (जिला हरदोई उत्तर प्रदेश) से जोड़ा गया है। 'प्रेमवाटिका' आधार बनाकर कई विद्वानों ने दिल्ली को इनका जन्म-स्थान माना है। शेरशाह सूरी ने हुमायूँ का पीछा किया था, उस समय कन्नौज के काजी सैयद अब्दुल गफूर ने हुमायूँ को आश्रय दिया था, जिसके उपलक्ष में हुमायूँ ने काजी सैयद अब्दुल गफूर को पाँच गाँव तथा 5000 बीघा जंगल इनाम के रूप में दिया था। सैयद अब्दुल गफूर पिहानी के निवासी थे और कदाचित सैयद इब्राहिम 'रसखान' इन्हीं के वंशज होंगे, आगे चलकर वे दिल्ली में रहने लगे थे। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'रसखान' सैयद वंशीय थे और उनका जन्म बिहानी में हुआ था।

रसखान के नाम के संबंध में भी अनेक कपोल कल्पनाएँ की गई हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ में दो रसखान बताए हैं, वे लिखते हैं- "श्रीकृष्ण भक्ति के साहित्य में जिस मधुर भाव पर बहुत अधिक बल दिया गया है, उसमें विश्वजनीन तत्व हैं। धर्म, संप्रदाय और विश्वासों के बाहरी बंधन उस विश्वजनीन माधुर्य तत्व के आकर्षण को रोक नहीं सके हैं। उन दिनों अनेक मुस्लिम सहृदय इस मधुर भाव की भक्ति साधना से आकृष्ट हुए थे। इन सबमें प्रमुख हैं "बादशावंश की ठसक" छोड़ने वाले रसखानि। इस नाम के दो मुसलमान भक्त कवि बताए जाते हैं एक तो सैयद इब्राहिम पिहानी वाले और दूसरे विट्ठलनाथ जी के कृपापात्र शिष्य सुजान रसखानि।" (हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 205)। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भ्रमवश रसखान की रचना 'सुजान रसखान' को ही दूसरा भक्त कवि मान

लिया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल रसखान के संबंध में लिखते हैं कि "ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। संभव है पठान बादशाहों की कुल परंपरा से इनका संबंध रहा हो। यह बड़े भारी कृष्णभक्त और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के कृपापात्र शिष्य थे।" (आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 176)

रसखान विषयक समग्रतः अंतःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य के विश्लेषण-विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि- इनका नाम सैयद इब्राहिम खाँ 'रसखान' जन्म संवत् 1590 पिहानी में, पश्चात दिल्ली निवासी, उसके बाद ब्रजगमन मृत्यु संवत् 1575-76 में हुई।

बोध प्रश्न

- रसखान ने दिल्ली के श्मशान बनने की घटना का उल्लेख अपने किस ग्रंथ में किया है?
- रसखान को दिल्ली का पठान सरदार किसने माना?
- रसखान का वास्तविक नाम क्या था?
- रसखान के गुरु का नाम क्या था?
- रसखान के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालिए।

रसखान के साहित्य पर दृष्टिपात किया जाय तो उनकी कुछ प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं- 'सुजान-रसखान', 'प्रेमवाटिका', 'दानलीला' तथा 'अष्टयाम'। रसखान ने अधिकतर मुक्तक–कवित्त-सवैयों की ही रचना की है। निश्चित ही इन कवित्त-सवैयों को कंठस्थ कर सुरक्षित रखा गया होगा और संग्रहकर्ताओं ने संकलित किया होगा।

सुजान-रसखान : यह रसखान के फुटकर कवित्त-सवैयों का संग्रह है और इसी कारण इसका यह नाम भी संग्रहकर्ता का ही दिया हुआ है। इसमें 181 सवैये, 17 कवित्त तथा 8 सोरठे हैं। इस संग्रह में क्रमशः भक्तिभावना, बाल-लीला, गोचारण, चीरहरण, कुंजलीला, रासलीला, पनघटलीला, दानलीला, वनलीला, गोरसलीला, दधिदान, राधा रूप छटा, वयःसंधि, सुकुमारता, पूर्वाराग, अभिलाष, प्रेम-माधुरी, कृष्ण-रूप माधुरी, चवाक, प्रेमलीला, उपालंभ, सपत्नी भाव, चौपड, मिलन, वियोग, मानिनी, क्रियाविदग्धा, आगत पतिका, सुरत, सुरतांत, सुरत-शृंगार, प्रिय की क्रूरता, शिक्षा, नेत्रोपलंभ, रूप प्रभाव, युगल जोड़ी, होली, बसंत, कालिया दमन, कुवलयावध, भ्रमरगीत हरिशंकरी, शिव-स्तुति, गंगा गरिमा आदि विषयों का वर्णन है। पंडित किशोरीलाल गोस्वामी ने सबसे पहले इसका संग्रह कर प्रकाशित करवाया था। इनके अतिरिक्त पंडित प्रतापनारायण मिश्र, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, चंद्रशेखर पांडेय, दुर्गाशंकर मिश्र, पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भवानी शंकर याज्ञिक एवं विद्यानिवास मिश्र आदि ने भी अपनी संपादित पुस्तकों में रसखान की रचनाओं को स्थान दिया है। रसखान के इन छंदों में कृष्णलीलाओं का गानभी है, ब्रज की महिमा भी है, कृष्ण के प्रति अनुरक्ति भी है तो गंगा शिव की स्तुति भी। साथ ही नायिका भेद, सुरत और सुरतांत भी। 'सुजान रसखान' मुक्तक पदों का संग्रह है। इस संग्रह के सवैये कवि के उठे हुए भावों की अभिव्यक्ति है।

प्रेमवाटिका : 'प्रेमवाटिका' रसखान की प्रौढ़ और प्रामाणिक रचना है। इसमें कुल 53 दोहे संकलित हैं। कवि ने इस रचना में रचना-काल तथा अपने विषय में जानकारी दी है। यह कृति

राधा और कृष्ण के प्रेम के गूढ़ तत्वों को विश्लेषित करती है। इसका एक-एक दोहा अपने आप में पूर्ण है। रसखान की प्रेम-संबंधी धारणा और आदर्श को समझने के लिए यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी है। यद्यपि रसखान की सभी रचनाएँ मुक्तक कोटि में ही आती हैं फिर भी उनमें प्रबंध शक्ति थी जिसका उन्होंने पूर्ण उपयोग नहीं किया।

दानलीला : दानलीला 11 छंदों का एक लघु-प्रबंध है। इसमें रसखान ने राधा-कृष्ण के संवाद के रूप में श्रीकृष्ण की दानलीला का रुचिकर वर्णन किया है। इसमें राधा-कृष्ण की नोक-झोंक के माध्यम से प्रेम-संबंधों की मार्मिकता को बहुत ही सहज रूप में अभिव्यक्त किया है। इस रचना की प्रामाणिकता का उल्लेख काशी नागरी-प्रचारिणी की 'खोज रिपोर्ट' में विद्यमान है। इसमें पाँच सवैये और छह कवित्त संग्रहित हैं।

अष्टयाम : रसखान रचित 'अष्टयाम' में 26 दोहे हैं। इनमें प्रातः जागने से प्रारंभ कर रात्रि शयन तक के बीच श्रीकृष्ण की अष्टकालिक दिनचर्या एवं तत्संबंधी क्रीड़ाओं का चित्रण हुआ है। वह एक प्रकार से नित्य लीला का ही रूप है। वंशीवादन, गाय दुहने तथा गाय चराने के साथ-साथ कृष्ण की मनमोहक छवि भी इसमें वर्णित है। इस रचना की प्रामाणिकता पर संदेह है। इस ग्रंथ में वैसी सरसता एवं माधुर्य नहीं है जो रसखान के और ग्रंथों में है। इस कृति की प्रामाणिकता के विषय में डॉ. माजदा असद का कहना है कि "इनकी भाषा इतनी सरल और प्रभावमयी नहीं जितनी रसखान के अन्य दोनों की है। भावों तथा भाषा में प्रौढ़ता तथा प्रांजलता न होकर तुकबंदी सी प्रतीत होती है यह कहना कठिन है कि यह रचना रसखान की है या नहीं।" (डॉ. माजदा असद, रसखान काव्य तथा भक्तिभावना, पृ. 43-44)

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त भी रसखान के नाम से 'रसखान दोहावली' तथा 'रसखान कवितावली' नामक दो टिकाएँ भार्गव पुस्तकालय, काशी से प्रकाशित हुई जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा में उपलब्ध है। स्वच्छंद भावधारा के कवियों ने प्रेमावेग में मुक्तक शैली की रचनाएँ ही अधिक की हैं। उधर कृष्ण भक्त कवियों की रुचि भी प्रबंध रचना में नहीं रही है। रसखान में भी यही प्रवृत्ति पायी जाती है।

बोध प्रश्न

- रसखान की प्रसिद्धि की आधारस्तंभ कृति कौन-सी है?
- 'सुजान रसखान' में कुल कितने सवैये संग्रहित हैं?
- रसखान के कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

14.3.2 भक्तिभावना

रसखान वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित और आचार्य विट्ठलनाथ के शिष्य थे परंतु उनकी भक्ति को किसी संप्रदाय विशेष से जोड़ना उचित नहीं होगा, क्योंकि रसखान मूलतः प्रेम के दीवाने हैं। प्रेम तत्व ही उनके इस लोक और परलोक का लक्ष्य हैं। रसखान उच्च कोटि के भावावेगी कृष्ण भक्त थे। रसखान का प्रेम सांसारिक प्रेम न होकर वह परम प्रेम है जिसमें अपने आराध्य के प्रति समर्पण है। रसखान के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वे आरंभ से ही बड़े प्रेमी थे और इनका वही प्रेम गूढ भगवत भक्ति में परिणत हुआ। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के मतानुसार-

"रसखानि, शेख आलम, घनानंद आदि को शुद्ध भक्त कहने में हिचक होती है। रसखानि भक्तों के श्रेणी में बैठाये जाते हैं पर वे वस्तुतः उन्मुक्त प्रेमोन्मत कवि थे। इनकी भक्ति विषयकरचनाओं के कारण भक्त कहना भी हो तो व्यतिरेक के साथ किये स्वच्छंद प्रेममार्गी भक्त थे, तो कोई बाधा नहीं।" (विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिंदी साहित्य का अतीत-भाग-2, पृ. 589-90) प्रेम भक्ति का पर्याय है। रसखान का प्रेम भी भक्ति से भिन्न नहीं है। यदि किसी संप्रदाय की सैद्धांतिक भक्ति के आधार पर रसखान को परखना हो तो निश्चय ही इन्हें संप्रदाय विशेष के भक्त के रूप में नहीं पायेंगे। इनकी भक्ति-भावना का विवेचन संप्रदाय विशेष के आधार पर नहीं किया जा सकता।

रसखान के कृष्ण साक्षात ब्रह्म हैं। पर वही ब्रह्म ब्रज में गो-चारण के लिए, भक्त जनों के साथ लीलाएँ करने के लिए छछिया भर छाछ पर नाचने के लिए ब्रज पधारे हैं। यह वही ब्रह्म है, जिनकी महिमा का गान शारदा और शेष भी नहीं कर सकते। बड़े-बड़े योगी जन भी समाधि लगाकर भी जिसकी पार नहीं पा सके हैं-

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं।
नारद से सुक व्यास रहैं पाचि हारे ताऊ पुनि पारन पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं।

(सुजान रसखान- सवैया सं. 8)

रसखान का कृष्ण पर पूर्ण विश्वास है, अगाध श्रद्धा एवं अटूट निष्ठा है। उन्हें इस बात का भरोसा है कि भगवान अपने भक्त की बाधा को अवश्य दूर करेंगे। रसखान की भक्ति में आत्मसमर्पण की पराकाष्ठा दिखाई देती है। रसखान कहते हैं-

द्रौपदी और गनिका गजगीध अजामिल सौ कियो न निहारो।
गौतम गहनी कैसी तरी, प्रह्लाद को कैसे हर्यौ दुख भरो।
काहे को सोच करै रसखानि कहा करि है रविनंद विचारो।
ता खन जा खन राखियै माखन-चाखन हारो सो राखन हारो।

(सुजान रसखान- सवैया सं. 17)

रसखान की दृष्टि में वही प्राण सार्थक है, जो कृष्ण पर न्योछावर हो जाता है, वही सिर सार्थक है जो कृष्ण के चरणों में झुकता है और वही भाव सार्थक है जो कृष्णार्पित है। इस तरह रसखान मन, वचन, कर्म और भाव से कृष्णमय हो जाने को ही भक्ति मानते हैं। उनकी यह भक्त-प्रेमा-स्वरूपा है। रसखान का मानना है कि जप-तप करने से, शरीर पर भस्म लगाने से अथवा तीर्थाटन से कोई लाभ नहीं होगा, कृष्ण को पाना है तो मात्र प्रेम से उसके दरबार में सेवा करनी होगी और चाहभरी दृष्टि से देखना होगा-

जप बार-बार, तप, संजम, बयार, व्रत,
तीरथ हज़ार अरे बूझत लबार को।
कीन्हौ नहीं प्यार, नहीं से यौ दरबार,
चित चाह्यो न निहारयौ जौ पै नंद के कुमार को।

(सुजान रसखान- कवित्त सं. 21)

रसखान की कृष्ण-भक्ति की चरम-सीमा तब देखी जा सकती है, जब वे केवल कृष्ण को ही नहीं, अपितु कृष्ण के संपर्क में अनेवाली हर वस्तु प्रिय है। वह लकुटी और कामरिया पर तिहुं पुर के राज तक न्यौछावर करने को तैयार है क्योंकि उनका संबंध कृष्ण से है-

या लकुटी अरू कामरिया पर राज तिहुं पर को तीज डारौ।
आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की गाई चराई बिसारौ।
ए रसखानि जबै इन नैनन ते ब्रज के बन बाग निहारौ।
कोटिक ये कलधौत के धाम करील की कुंजन उमर वारौ।

(सुजान रसखान-सवैया सं. 252)

रसखान का समर्पण उनकी भक्ति को मोक्ष में नहीं माधुर्य भाव में ही स्थिर करता है। इसलिए उनकी कामना है कि उन्हें कृष्ण-चरणों का सान्निध्य किसी भी रूप में प्राप्त हो-

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वपन।
जौ पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंदकी धेनु मझारना।
पाहन हौं तो बसेरा करौं मिलि कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥

(सुजान रसखान- सवैया सं. 1)

रसखान प्रेम को शुद्ध भक्ति मानते हैं। प्रेम की अतिशयता का प्रतिपादन करने के लिए भक्तों ने चातक का आदर्श उपस्थित किया है। रसखान ने इस आदर्श में अपनी आस्था को प्रकट किया है।

विमल सरस रसखानि मिलि, भई सकल रसखानि।
सोई नव रसखानि कों, चित चातक रसखानि॥

(सुजान रसखान- दोहा सं. 5)

रसखान की कृष्ण के प्रति भाति का माधुर्य भाव है। रसखान वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित भक्त रहे और यह संप्रदाय नवधा भक्ति को महत्व देता है। नवधा भक्ति के नौ तत्व हैं- श्रवण, कीर्तन, नाम-स्मरण, पद-सेवा, अर्चना, वंदना, दास्य, सख्य और निवेदन। रसखान इनमें से कुछ का पालन करते हैं, परंतु पूर्णतया उसपर अवलंबित नहीं है। रसखान की भक्ति का संबंध मधुरा भक्ति से है। मधुरा भक्ति के तीन अंग माने जाते हैं- रूप वर्णन, विरह वर्णन और आत्म-समर्पण। रूप वर्णन में भक्त, भगवान के रूप का वर्णन कर उसमें मुग्ध रहता है। विरह-वर्णन है जिसमें भक्त, भगवान से अपनी दूरी और बिछोह का आर्त स्वर में याद करता है तथा भगवान को अपनी करुणा से द्रवित करने का प्रयत्न करता है। आत्म-समर्पण में भक्त अपने भगवान के प्रति पूर्णतया समर्पित होकर उसके भावों, कथाओं तथा उसके यश का वर्णन कर स्वयं को उसमें विसर्जित कर देता है।

अपने आराध्य कृष्ण के रूप-वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि कृष्ण के रूप की शोभा इतनी अद्‌भुत है कि साँझ होते ब्रज की ओर लौटते कृष्ण को देखने के लिए मन आतुर हो उठता है। ब्रज की युवतियाँ लाज तथा प्रेम के कारण ऊँची-ऊँची अटारियों पर उचक उचक कर कृष्ण

को देखने लगती हैं। गायों की खुरों से उठी हुई धूल से कृष्ण ऐसे शोभायमान दिखाई दे रहे हैं जैसे आग के पहाड़ से बूझकर धुएँ बादल बढ़े आ रहे है।–

साँझ समै जिहि देखति ही तिहि पेंखन कौ मन मौं ललकै री।
ऊँची अटान चढ़ी ब्रजबाम सुलाज सनेह दुरै उझकै री।
गोधन धूरि की घूंघारि मैं तिनकी छबि यौं रसखानि तकै री।
पावक के गिरि ते बुधि मानौं चुंवा-लपटी लफ्कै ललटै री।

(सुजान रसखान- सवैया सं. 44)

माधुर्य भक्ति में विरह वर्णन का बहुत महत्व है। भक्त अपने भगवान से बिछड़ कर बहुत व्यथित होता है और अपनी पीड़ा को व्यक्त कर उसे प्रसन्न करना चाहता है ताकि उसे अपने आराध्य से मिलन हो। रसखान अपने-आप को विरहिणी मानते हैं। अपने विरह को कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

बाल गुलाब के नीर उसीर सों पीर न जाइ हियै जिन ढारौ।
कंज की माल करौ जु बिछावन होत कहाँ पुनि चंदन गरौ।
एते इलाज बिकाज करौ रसखान कों काहे को जारै पै जारै।
चाहती हौ जु जिबायौ पटू तो दिखावौ बड़ी-बड़ी आँखिनवारौ ।

(सुजान रसखान- सवैया सं. 235)

रसखान ने स्वयं विरहिनी बन अपने भगवान से अपनी तड़प व्यक्त करते हुए कहा है - मेरे हृदय पर गुलाब जल और खस के छिड़काव से कोई लाभ नहीं होगा। कंज की सेज सजाने तथा पूरी देह में चंदन के लेप से कोई फायदा नहीं होने वाला। यह सारे उपचार व्यर्थ हैं और यह मेरी पीड़ा को अधिक बढ़ाते हैं। यदि कोई चाहता है कि मैं जीवित रहूं तो मुझे बड़ी आँखों वाले कृष्ण के दर्शन करा दें, मैं अपने-आप ठीक हो जाऊंगी।

मधुरा भक्ति का तीसरा अंग आत्मसमर्पण माना जाता है। रसखान सदैव अपने आराध्य के सानिध्य की कामना करते हैं। उनका मानना था कि शरीर के सारे कार्य व्यापार श्रीकृष्ण से ही संबंधित रहने चाहिए। कृष्ण के लगाव के बिना कोई कार्य मूल्य नहीं रखता है। रसखान की भक्तिपरक कविताओं में आत्मसमर्पण का भाव अधिक दिखाई देता है। वह कहते हैं-

बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सो सानी।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन आन के संग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यौं रसखान वही रसखानि जु है रसखानि सौ है रसखानि॥

(सुजान रसखान- सवैया सं. 3)

मनुष्य का जीवन तभी सार्थक हो जाएगा जब वह अपने आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पित होता है। वही वाणी सार्थक है जो कृष्ण का गुण गाए। वही कान सार्थक हैं जो कृष्ण की वाणी सुनें। वही हाथ सार्थक हैं जो कृष्ण को माला पहनाते हैं। वही चरण सार्थक हैं जो कृष्ण के मार्ग

का अनुसरण करें। वही प्राण सार्थक हैं जो कृष्ण के साथ रहते हैं। वही मान सार्थक हैं जो कृष्ण के साथ रहकर अपनी मनमानी करें। कृष्ण तो परमानंद हैं जो सदैव अपने भक्तों से स्नेह करते हैं।

हिंदी की कृष्ण भक्ति काव्यधारा में रसखान का विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान है। रसखान किसी भक्ति संप्रदाय से अनन्य रूप से जुड़े न थे, जबकि उन्होंने गोसाई विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली थी, उनकी एकांत निष्ठा श्रीकृष्ण में ही थी। रसखान ऐसे कृष्ण भक्त हैं जिन्हें किसी धर्म, संप्रदाय, जाति और परिपाटी से कुछ लेना-देना न था। उन्होंने सारी रूढ़ियों को तोड़कर श्रीकृष्ण को अपनाया और अनन्य भक्ति की। रसखान ने कृष्ण भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया, उन्होंने कृष्ण को छोड़कर दूसरे की ओर देखा भी नहीं, कृष्ण की लीला भूमि में जीने-मरने में ही अपनी सार्थकता मानी है, वे जन्म-जन्मांतर तक कृष्ण के ही होकर रहना चाहते हैं। रसखान मुसलमान होते हुए भी कृष्ण के प्रेम में किसी भी हिंदू भक्त से अधिक पगे हुए दिखाई पड़ते हैं। उनकी कृष्ण भक्ति पर उनकी जाति और धर्म का कोई प्रभाव नहीं है। कहा जा सकता है कि रसखान वृंदावन पहुंचने के बाद अपना अतीत पूरी तरह से भूल कर केवल ब्रज की गोपी बनकर रह गये और कृष्ण की बावरी बनकर घूमते रहे।

बोध प्रश्न

- रसखान ने किससे दीक्षा ली थी?
- रसखान की भक्ति का स्वरूप किस-प्रकार है?
- रसखान की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए।

14.3.3 प्रेमतत्व निरूपण

रसखान के काव्य में प्रेम की वेगवती धारा प्रवाहित होती है। उनका प्रेम-तत्व एक आचार्य की भाँति निरूपित करता है। किसी के गुणों का निरंतर श्रवण करते-करते हृदय में स्थान बन जाता है और मन उसके प्रति अभिभूत हो जाता है। अतः उसके गुणों का स्वतः स्मरण होने लगता है और दर्शन मात्र से उसके प्रति उत्पन्न आसक्ति प्रगाढ़ हो जाती है। रसखान के संबंध में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने कृष्ण के प्रति अपने प्रेम के माध्यम अपनी भक्ति को उजागर किया है। इसी संबंध में डॉ. चंद्रलेखा सिंह का कहना है कि “प्रेम की इस प्रकार की सूक्ष्म भावना का अन्वेषण रसखान के ही वश की बात थी। निस्संदेह प्रेमी कवियों में रसखान-सी स्वच्छ, पुनीत और दिव्य प्रेम-भावना का चितेरा दूसरा कहीं नहीं मिलेगा। प्रिय के दर्शन, श्रवण और कीर्तन से जिस प्रकार की भावना जागृत होती है, उसे प्रेम कहते हैं।” (डॉ. चंद्रलेखा सिंह, कृष्ण-भक्ति काव्य की परंपरा और रसखान, पृ. 84)

रसखान का प्रेम निस्वार्थ है। उनकी दृष्टि में सच्चा प्रेम, गुण, यौवन, रूप, सौंदर्य, धन, संपत्ति और स्वार्थ आदि निरपेक्ष होता है। प्रेमी प्रेम-पात्र में किसी गुण-विशेष के कारण आसक्त नहीं होता, क्योंकि प्रेम तो कामना-विरहित होता है-

बिनु गुन यौवन रूप-धन, बिनु स्वास्थ हित जानी।
शुद्ध कमाना से रहित, प्रेम-सकल-रसखानि॥

(रसखान रचनावली, प्रेमवाटिका, दोहा सं.15)

प्रेम के स्वार्थ विहीनता को और अधिक स्पष्ट करते हुए रसखान कहते हैं कि सच्चा प्रेम एकांगी होता है। प्रेमी का एकमात्र कर्तव्य प्रिय पात्र से प्रेम करना होता है। वह प्रेम प्रतिपादन नहीं चाहता और वह यह भी नहीं चाहता कि प्रेम-पात्र भी उससे प्रेम करे। वह तो अपना सर्वस्व अपने प्रिय के प्रति समर्पित करता है। फिर भी उसके प्रेम में किंचित मात्र की कमी नहीं आती। यही सच्चा प्रेम है -

इकअंगी बिनु कारनहिं, इक रस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम समान॥

(रसखान रचनावली, प्रेमवाटिका, दोहा सं.21)

प्रेम तो वह खेल है, जिसमें प्राणों की बाजी लगाकर ही प्रिय-पात्र को पाया जा सकता है। इसलिए रसखान कहते हैं-

पै एतो हूँ रम सुन्यौ, प्रेम अजूबो खेल।
जाँबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल॥

(रसखान रचनावली, प्रेमवाटिका, दोहा सं.31)

रसखान की दृष्टि में प्रेम का मार्ग कमल के तंतु-सा क्षीण और तलवार की धार की तरह तीक्ष्ण है। एक सच्चे प्रेमी के लिए यह मार्ग सर्वथा सरल, सहज, सुगम और रसपूर्ण है जबकि प्रेम का ढोंग रचानेवाले के लिए वह तो बहुत ही कठिन एवं अप्राप्य है। इस संदर्भ में उनका मानना है-

कमल तन्तु सो छीन अरु, कठिन खड्ग की धार।
अति सुधो टेटो बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार॥

(रसखान रचनावली, प्रेमवाटिका, दोहा सं.6)

दो मनों के प्रेम को रसखान प्रेम नहीं मानते अपितु दो तनों के मेल को ही प्रेम का अस्तित्व स्वीकारते हैं। जब तक दो शरीर एक नहीं होते तब तक मन के मिलने पर भी पार्थक्य बना ही रहता है किंतु जब दो तन मिल जाते हैं तो बीच का आवरण हट जाता है। माया रूपी परदा हट जाता है। प्रेमी और प्रेमिका के बीच कोई दीवार नहीं रहती। दो शरीर एक होने का अर्थ ही है कि अपना शरीर अपना न रह जाय, वह श्रीकृष्ण का शरीर हो जाय और श्रीकृष्ण का शरीर श्रीकृष्ण का शरीर न रह जाय, वह अपना शरीर हो जाय। प्रेम का चरमोत्कर्ष दो शरीरों के एक होने में है-

दो मन इक होते सुन्यौ, पै वह प्रेम न आहि।
हौइ जबै द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि॥

(रसखान रचनावली, प्रेमवाटिका, दोहा सं.34)

रसखान ने प्रेम की महिमा को अत्यंत महत्व दिया है। उन्होंने प्रेम को हरि का रूप माना है। प्रेम वह शुद्ध तत्व है जिसे पाने के बाद वैकुंठ प्राप्ति की भी इच्छा नहीं रहती-

जेहि पाए वैकुंठ अरु, हरिहूं की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक शुद्ध शुभ, सरस सुप्रेम कहाहि॥

(रसखान रचनावली, प्रेमवाटिका, दोहा सं.28)

रसखान ने प्रेम को भक्ति का मूल माना है। प्रेम वेदों, पुराणों, शास्त्रों और स्मृतियों का सार है। इसलिए वे कहते हैं-

श्रुति, पूरान आगम स्मृति, प्रेम सबहि को सार।
प्रेम बिना नहिं उपज हिय, प्रेम बीज अंकुवार॥

(रसखान रचनावली, प्रेमवाटिका, दोहा सं.10)

सांसारिक सुख हो या अलौकिक आनंद सभी के मूल में प्रेम ही है। रसखान के अनुसार प्रेम के अभाव में मनुष्य न तो सांसारिक सुखों का उपभोग कर सकता है न ही ब्रह्मानंद की अनुभूति ही कर सकता है-

आनंद अनुभव होते नहिं, बिना प्रेम जग जान।
कै वह विषयानंद कै, कै ब्रह्मानंद बखान॥

(रसखान रचनावली, प्रेमवाटिका, दोहा सं.11)

रसखान के अनुसार प्रेम के बिना आनंद का अनुभव नहीं हो सकता। उन्होंने प्रेम को ज्ञान तथा कर्म से भी श्रेष्ठ माना है। प्रेम रहित ज्ञान तथा उपासना सब अहंकार के कारण हैं। मनुष्य के हृदय में प्रेम के बिना साधना तथा कर्म के प्रति दृढ़ निश्चय का भाव उत्पन्न नहीं होता-

ज्ञान करम रु उपासना, सब अहमति को मूल।
दृढ़ निश्चय नहिं होत-बिन, किए प्रेम अनुकूल॥

(रसखान रचनावली, प्रेमवाटिका, दोहा सं.12)

रसखान अलौकिक प्रेम-पंथ के दृढ़ पथिक हैं। प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति के लिए गोपियों के प्रेम को ही सर्वोपरि माना गया है। गोपियों के प्रेम में कोई चाह नहीं, कोई वासना नहीं। श्रीकृष्ण की सरस लीलाओं के सुखभोग तथा श्रीकृष्ण के रूप-रसपान की आकांक्षी हैं। वे कृष्णमय होना चाहती हैं। रसखान ने गोपियों के प्रेम को ही आदर्श रूप में स्वीकार किया है-

जदपि जसोदानंद अरु, ग्वाल बाल सब धन्य।
पे या जग मैं प्रेम कौं, गोपी भई अनन्य॥

(रसखान रचनावली, प्रेमवाटिका, दोहा सं.38)

रसखान की दृष्टि में प्रेम कोई सामान्य वस्तु या अलौकिक व्यापार न होकर प्रेम हरि का रूप है। जिस प्रकार सूर्य और उसकी किरणें भिन्न प्रतीत होते हुए भी तत्वतः एक ही है। उसी प्रकार प्रेम और हरि भिन्न होते हुए भी एक ही हैं-

प्रेम हरि को रूप है, त्यौं हरि प्रेम स्वरूप।
एक होई द्वै यों लसैं, ज्यौं सूरज अरु धूप॥

(रसखान रचनावली, प्रेमवाटिका, दोहा सं.24)

प्रेम की शक्ति बहुत बड़ी है। ईश्वर सर्वशक्तिमान है। वह सारी सृष्टि का परिचालक है। सारी सृष्टि ईश्वराधीन है किंतु ईश्वर प्रेम के अधीन है। प्रेम की इस महत्ता को प्रकट करते हुए रसखान कहते हैं-

हरि के सब अधीन पै, हरि प्रेम आधीन।
यही ते हरि आपुहि, याही बड़प्पन दीन॥

(रसखान रचनावली, प्रेमवाटिका, दोहा सं.36)

रसखान ने गोपी और कृष्ण के माध्यम से प्रेम का बहुत ही सुंदर वर्णन किया है। रसखान के प्रेम-वर्णन में संयोग शृंगार की प्रधानता दिखाई देती है। उन्होंने गोपियों को श्रीकृष्ण की लीलाओं का आनंद लूटते हुए चित्रित किया है। गोचारण लीला, दानलीला, चीरहरण लीला, रासलीला, निकुंज लीला आदि श्रीकृष्ण की लीलाएँ हैं जिनसे गोपियों में कृष्ण के प्रति प्रेम पैदा हुआ। गायों को चराते हुए कृष्ण ने लोगों को मुरली की मीठी तान सुनाई, उनमें प्रीति पैदा की और उनके प्राणों को हर लिया। उनकी माखन लीला और चीरहरण लीलाओं का बखान करती हुई एक गोपी कहती है-

कहू को माखन चाखि गयो, अरु कहो को दूध-दही ढरकायो।
कहू को चीर लै रुक चढ़यो, अरु काहु को गूंजछटा छहरायो॥

(सुजान-रसखान, सवैया सं.106)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रसखान काव्य की सर्वोपरि विशेषता प्रेम तत्व की व्यंजना है। उनकी सभी रचनाएँ प्रेम-तत्व से सृजित हैं। उनका श्रीकृष्ण प्रेम, धर्म और संप्रदाय की संकुचित सीमा से सर्वथा परे है। श्रीकृष्ण-प्रेम ही रसखान का प्रेम है।

बोध प्रश्न

- रसखान की दृष्टि में सच्चा प्रेम किस प्रकार होता है?
- रसखान के प्रेम-संबंधी दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।
- रसखान सारे सुखों के मूल में प्रेम है, ऐसा क्यों मानते हैं?
- रसखान ने गोपियों के प्रेम को आदर्श क्यों माना है?

14.3.4 सौंदर्यतत्व

मनुष्य सदा ही सौंदर्योपासक रहा है। उसने सृष्टि के संपूर्ण पदार्थों में सौन्दर्य की खोज की और जहाँ भी उसे सौन्दर्य मिला वहाँ वह रम गया। उसने साहित्य के माध्यम से सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की। साहित्य का सौन्दर्य से घनिष्ठ संबंध है, इसलिए कवियों ने कविता में सौंदर्य को अभिव्यक्त किया है। प्रेम और सौंदर्य का अटूट संबंध है। रसखान प्रेम और सौंदर्य के अनूठे कवि हैं।

रसखान ने गोपी भाव से श्रीकृष्ण के अद्भुत एवं मोहक रूप-सौंदर्य के प्रति अपने तीव्र आकर्षण का मार्मिक वर्णन किया है। वृंदावन में उन्होंने जो कृष्ण की छवि देखी, उसका परिणाम यह हुआ कि उनके स्वयं के नेत्र उनके ही नहीं रहे-

मोहन छवि रसखान लखि, अब दृग अपने नहिं।

ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर-से जाहिं॥

(सुजान रसखान, दोहा सं.51)

रसखान श्रीकृष्ण के युगल स्वरूप के उपासक हैं, किंतु श्रीकृष्ण का रूप-माधुर्य जितना इन्हें आकृष्ट कर सका है, उतना किसी अन्य का नहीं। रसखान ने अपने परमाराध्य श्रीकृष्ण के सौंदर्यांकन में अपनी कल्पना पटुता का परिचय दिया है। जिस तरह गोपियाँ श्रीकृष्ण को देखते ही अपनी सुध-बुध खो बैठती हैं और उनके दर्शन के अभाव में बेचैन हो जाती हैं, उसी प्रकार रसखान की भी यही स्थिति है।

रसखान ने श्रीकृष्ण के अंग प्रत्यंगो का पृथक-पृथक वर्णन किया है। श्रीकृष्ण का सौंदर्य सागर की भाँति अथाह है, जिसमें गोपियों का मन कल्लोल करता है-

अति सुंदर री ब्रजराज कुमार महामृदु बोलनि बोलत है।
लखि नैन की कोर कटाक्ष चलाइ कै लाज की गांठन खोलत है।
सुनि री सजनी अलबेलो लला वह कुंजनि कुंजनि डोलत है।
रसखानि लखें मन बूड़ि गयौ मधि रूप के सिंधु कलोकत है॥

(सुजान रसखान, सवैया सं.36)

श्रीकृष्ण के रूप-सौंदर्य में गोपियों का मन पूर्णतः आबद्ध हो गया है। वे उससे बाहर निकलना चाहती हैं परंतु निकल नहीं पाती। जितना ही निकलने की चेष्टा करती हैं, उतना ही उसमें फँसती जाती हैं-

मंजू मनोहर मूरि लखै तबहीं सबहीं पतहीं तज दीनी।
प्राण पखेरू परे तलफें वह रूप के जाल मैं आस-अधीनी।
आँख सो आँख लड़ी जबहीं तब सों ये रहैं अंसुधा रंग भीनी।
या रसखानि अधीन भई सब गोप-लली तजि लाज नवीनि॥

(सुजान रसखान, सवैया सं.142)

रसखान कृष्ण की छवि का अपने छंदों में बहुत ही सुंदर ढंग से अंकन करते हैं। कृष्ण के सिर पर मोर-मुकुट, कानों में कुंडल, घुंघराले बाल, विशाल नेत्र, गले में गूँज की माला, अधरों पर मुरली, बाँकी अदा आदि किसी को भी मदहोश कर देती है। कृष्ण के इस रूप सौंदर्य पर गोपियाँ मोहित हो जाती हैं। कृष्ण गोपियों के हृदय, मन, प्राण और नेत्रों में भी बस जाते हैं-

देख्यौ रूप अपार, मोहन सुंदर स्याम को।
वह ब्रजराज कुमार, हिय जिय नैननि में बस्यौ॥

(सुजान रसखान, सोरठा सं.98)

रसखान ने श्रीकृष्ण के रूप-सौंदर्य का जो सूक्ष्म ब्रज की गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में इतनी व्याकुल हैं कि वे ब्रजमंडल में नहीं रह पा रही हैं। वे शहद की मक्खियों की भाँति अपने ही द्वारा एकत्रित शहद में फँसने के समान अपने ही किए हुए प्रेम में गोपियाँ इस प्रकार फँस गई हैं कि उससे बाहर निकलना असंभव सा प्रतीत हो रहा है। उन्हें कुछ भी सूझ नहीं रहा। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई हैं-

ए सजनी मनमोहन नागर आगर दौर करी मन माही।
सास के त्रास उसान न आवत कैसे सखी ब्रजवास बसाहीं।
माखी भई मधु की तरुनी बरनीन के बान बिंधी कित जाही।
बीथिन डोलती हैं रसखानि रहैंनिज मंदिर में पल नाहीं॥

(सुजान रसखान, सवैया सं.58)

प्रायः देखा जाता है कि कवियों ने केवल नायिका के रूप का वर्णन कर नायक उसके प्रति मोहित दिखाया गया है, परंतु रसखान ने नायक-नायिका दोनों के रूप-सौंदर्य का वर्णन किया है। उन्होंने नायक कृष्ण का वर्णन इस प्रकार किया है-

मोहित लाल बनी नट के, लटकी लटवा लट घूंघरवारी।
अंग ही अंग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी।
पूरब पुन्यनि ते रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।
चरयौ दिसानि की लै छवि आनि के झोंके झरोखें मे बाँके बिहारी॥

(सुजान रसखान, सवैया सं.33)

अर्थात श्रीकृष्ण के गले में मोतियों की माला लटक रही है। घुँघराले बालों के लट लटक रहे हैं। उनके अंगांग में जड़ित आभूषण हैं और सिर पर पगड़ी शोभित है। रसखान के अनुसार ऐसे अद्भुत सौंदर्य को देखना पूर्व जन्म के पुण्यों का ही प्रतिफल है। चारों दिशाओं की छवि लिए हुए बाँके-बिहारी की एक झलक पाने के लिए लोग अपने-अपने झरोखों से निहारने की कोशिश कर रहे हैं।

रसखान एक ओर श्रीकृष्ण के रूप-सौंदर्य का वर्णन करते हैं तो दूसरी ओर श्रीकृष्ण की संगिनी राधा के रूप-सौंदर्य को भी उकेरा है। उनकी दिव्य छवि को अप्रतिम बनाया है-

श्री मुख कों न बखान सकैं, वृषभान सुता जू को रूप उजरों।
हे रसखान तू ज्ञान संभार तैरनि निहार जु रीझनहारो।
चारु सिंदूर को लाल रसाल लसै ब्रज बाल को भाल टिकारो।
गोद में मानौं विराजत है घनश्याम के सारे की सारे को सारो॥

(सुजान रसखान, सवैया सं.196)

अर्थात राधा के चेहरे का सौंदर्य इतना अनुपम है कि उसका वर्णन असंभव है। वह सौंदर्य स्वयं प्रकाशमान है। उस रूप को वही अनुभव कर सकता है जिसने नक्षत्रों की दिव्य आभा को देखा है। राधा के माथे पर सिंदूर का तिलक ऐसे लग रहा है मानो चंद्रमा अपनी गोद में मंगल को लिए हुए हो।

रसखान के द्वारा सौंदर्य-तत्त्व का जो विवेचन हुआ है वह सर्वांगपूर्ण है और उसमें उन्हें सफलता मिली है। उन्होंने परंपरागत नख-शिख वर्णन न करके विवेक से काम किया है। उनका यह सौंदर्य-निरूपण स्वाभाविक तो हुआ है चित्ताकर्षक भी हो उठा है।

बोध प्रश्न

- रसखान ने श्रीकृष्ण के सौंदर्य को किस भाव से देखा है?

- रसखान ने राधा के रूप-सौंदर्य का वर्णन किस प्रकार किया है?
- रसखान के काव्य में अभिव्यक्त सौंदर्यबोध को स्पष्ट कीजिए।

14.3.5 काव्य शिल्प

भाषा भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। कविता कवि के भावों, अनुभवों एवं विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। कवि अपने अनुभूत यथार्थ को कविता के विभिन्न उपकरणों भाषा, छंद, अलंकार आदि के माध्यम से पाठक तक संप्रेषित करने का प्रयास करता है। इस कला में जो कवि जितना दक्ष होता है, उसकी कविता उतनी ही प्रभावोत्पादक एवं आकर्षक होती है। इस दृष्टि से रसखान एक सफल एवं समर्थक कवि हैं।

रसखान की काव्य-भाषा : कोई भी कवि उपायुक्त काव्य-भाषा द्वारा ही अपने भावों को पाठक या श्रोता तक संप्रेषित करने में सफल होता है। रसखान की काव्य-भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा में भाषा के सभी तत्वों का सम्मिलन है। उसमें विशिष्ट शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों का भंडार है।

शब्द-योजना : भाषा का निर्माण शब्दों से होता है। समर्थ भाषा के लिए भावानुसार शब्दों का होना आवश्यक है। जहाँ तक शब्द-योजना का प्रश्न है, रसखान इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। ब्रजभाषा काव्य के उत्तराधिकारी होने के नाते रसखान को संस्कृत की निपुण शब्दावली प्राप्त हुई थी। परिणामतः उनकी रचनाओं में तत्सम शब्दों का प्रयुक्त होना स्वाभाविक था। उन्होंने तत्सम शब्दों का मुक्त-हस्त प्रयोग किया- अंक, कोकिक, मकरावृत्त, सिद्धि, कुमार, निष्ठा, सरिता, दृग, रुचिर, अमृत, परिधान, दर्पण, सिंधु, हलाहल, अनंत, चपला, सत्संग, संकोच, मात्सर्य आदि। अपनी भाषा में स्वाभाविकता लाने हेतु जहाँ रसखान ने तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है, वहीं उन्होंने तद्भव शब्दों को भी पर्याप्त स्थान दिया है। इन शब्दों के प्रयोग ने इनकी पदावली को सामान्य जनमानस तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है- अनब्याही, कामरिया, कोइल, कटाछ्छम, जोबन, मुकुट्टन, जसुधा, बयार, मानुस, करोर, संजम, बघम्बर, चच्छु आदि।

रसखान ने आवश्यकतानुरूप देशी शब्दों का भी पर्याप्त प्रयोग किया है। इसमें उनकी भाषा का सौंदर्य सर्वाधिक बढ़ गया है। गहगही, टोना, टेर, निहारो, टोटा, रपटाय, छोहरा रपटाय पैंजनी आदि।

मुसलमानों के आगमन से भाषा के क्षेत्र में एक नवीन संस्कृति का उदय हुआ, जिसे बोलचाल की भाषा में नवीन शब्दों का मिश्रण हुआ। रसखान की यह विशेषता रही कि उन्होंने इन शब्दों को ब्रजभाषा में वातावरण के अनुकूल ढाल लिया, उसका सारा विदेशीपन दूर कर दिया। रसखान काव्य में प्रयुक्त विदेशी शब्द बिना संकेत के नहीं पहचाने जाते- अचानक, गुलाब, निहाल, बाजी, गदर, मेहबूब, तरसाई, दिल, मीरखान, अजूबो, दीवानी, तलवार, सिरताज, कलगी, बदनाम, मजूरी, खादी, नाहक आदि।

रसखान ने अपनी काव्य भाषा के स्वरूप निर्धारण में भी सहृदयता और उदारता का परिचय दिया है। उनमें नवीन, प्राचीन, देशी, विदेशी, तत्सम, तद्भव सभी प्रकार के शब्दों की

छटा दृष्टिगोचर होती है। फिर भी उन्होंने अपनी काव्ययात्रा में ब्रजभाषा की प्रकृति को कहीं आहत होने नहीं दिया।

मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ : मुहावरे जीवित भाषा के प्राण होते हैं। उनके द्वारा उसकी सजीवता की वृद्धि होती है। रसखान की भाषा में मुहावरे का प्रयोग अत्यंत सहज रूप से किया है जो लोक-प्रचलित भाषा पर उनके अधिकार का सूचक है। सजीव और लोक-प्रचलित मुहावरों से रसखान की काव्य-भाषा अत्यंत जीवित एवं सशक्त हो गई है- 'कान्ह भए बांसुरे के', 'गाल बजावत', 'बाजी सनेह की हाँडी', 'पसारत हाथ', 'कानन दै अंगुरी रहिबो', 'छटाँक न देना', 'अंगूठों दिखायो', 'मन मारिके', 'गाँठ खोलता है' आदि। इस प्रकार रसखान ने काव्य में मुहावरों का सर्वाधिक सफल प्रयोग किया है। कवि ने कहीं भी इन्हें अनायास ठूँसने का प्रयास नहीं किया है। स्वाभाविक रूप से जहाँ वे आए थे वहाँ जड़ गए। फलतः काव्य-सौंदर्य की अभीवृद्धि तो हुई ही, साथ ही अर्थ-सौंदर्य भी अपनी सीमा में अद्वितीय हो उठा।

रसखान शब्दाडंबर से दूर हैं। रसखान की शब्द-योजना में बिम्बों का चित्रण किया गया है। उनके चित्रात्मक भाव बड़े ही प्रभावकारी हैं। रसखान की अनुप्रासिक ब्रजभाषा में संगीत का प्रभुत्व भरपूर है। रसखान ने लोकोक्तियों का भी प्रयोग अपनी भाषा में अच्छे ढंग से किया है। जैसे-

नहिं उपजेगों बाँस, नहिं बाजे फेरि बांसुरी,
छोरा जयो कि मेव मंगायो, मोल कला के लला न बिकैहों,
माँट फोरी चाटौ दही, नेम कहा जब प्रेम कियो, आदि।

रसखान की अलंकार योजना : काव्य के सौंदर्य में अलंकार एक आवश्यक साधन है। अलंकार काव्य को अलंकृत करता है। अलंकार से कविता में चमत्कार उत्पन्न होता है। रसखान ने अपने आराध्य के रूप-सौंदर्य के वर्णन और उनके लीला-विलास के चित्रण में उन्होंने अलंकारों से काफी काम लिया है। उनके प्रिय अलंकार हैं- यमक, अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, प्रतीप, अतिशयोक्ति। इनके अतिरिक्त उन्होंने कई अन्य अलंकारों का प्रयोग भी किया है। उनके अलंकरण प्रयोग के कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं-

अनुप्रास

गावें गुनी गानिका गंधरब्ब औ सारद सेस सर्व गुन गावत।
छकि छैल छबीली छटा छहराइ कै कौतुक कोटि दिखाइ रही।
गाल गुलाल लगाइ-लगाइ कै अंग रिझाई।
मो मन मोहन सों मिलिकै माधुरी मुस्कान दिखाई दई।

यमक

त्यों रसखानि वही रसखानि, जु है रसखानि सो है रसखानि।
अधरा न धरी अधरा न धरौंगी।
बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वहीं उन बैन सानी।
पै सिगरे ब्रज केहरि हों हरि ही के हरें हिपरा हरि लोने।

श्लेष

ए सजनी लोनौ लला, लह्यौ नंद के गेह।
चित्यौ मृदु मुसकाइ कै, हरी सवै सुधि देह।
स्याम साघन घन घोरि कै, रस बरस्यों रसखानि।
भई दिमानी पानि करि, प्रेम मद्य मनमानी।

उपमा

यह आवानि प्यारी जु की रसखानि बसंत-सी आज विराजत है।
जा रसखानि विलोकत ही, सहसा ढरि रांग सो आंग ढर्यों है।
अजुरी ज्यों बिजुरी सी जुरी गुजरी केलि कला सम काढ़ी।

रूपक

मो मन मानिक लै गयो, चितै चोर नंद-नंदन।
सागर को सलीलाजिमी धावै, न रोकी रूकै कुल को पुल टूट्यौं।
तिरछी बरछी सम मारत है, दृग बान कमान सुकात लाग्यो।
लटकी लट मो दृग मीननि सों बंसी जियवा नटकी अटकी।

उत्प्रेक्षा

जोबन-जोति सुयौं दमकै उसकाइ दई मानों बाती दिया की।
मन मनोहर बैन बचै, सु सजे तन सोहत पीत-पटा है।
यों चमकै, चमकै, झमकै, दुति दामिन की मनौ स्याम-घटा है।

अतिशयोक्ति

या छवि पै रसखानि अब, वारों कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविन नहिं पाइ रहे सुखोज।
रसखान उरोज निहारत ही मुनि कौन समाधि न जाहिर टरै।
दीरग नैन, सरोनहूँ ते मृग खंजन मीन की पाँत दरै।
नहिं गयौ अंसुवान प्रवाह भगो जल में ब्रज-लोक तिहहूँ पर।

रसखान की छंद-योजना : छंदों में ढलकर अनुभूति एक आकार लेती है। हर कवि अपनी भावना के अनुरूप छंदों को चुनता है। रसखान के काव्य में कवित्त, सवैया, दोहा आदि छंदों का प्रयोग देखने को मिलता है। सवैया इनका सबसे प्रिय छंद है। सवैया छंद को छंदों का राजा माना जाता है। यह छंद ब्रजभाषा का प्रिय छंद माना जाता है। रसखान ने अपने काव्य में सवैया की कोमल पदावली का प्रयोग किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

धूरि भरे अति शोभित श्यामजू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरै आंगना पर पैंजनी बाजति पौरी कछोटी।
वा छवि को रसखानि विलोकत वारत काम कला निज-कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि-हाथ सों ले गयौ माखन रोटी॥

रसखान के सवैये और कवित्त गेय तथा संगीतात्मक है। उनमें भाव-प्रवणता भी है और शब्द-प्रयोग का लालित्य भी। कवित्त ओजपूर्ण भावों की अभिव्यक्ति का छंद है परंतु रसखान ने इस छंद की प्रकृति का विचार न करके शृंगारिक भावों की अभिव्यक्ति का साधन बना लिया है-

गोरज विराजै भाल लहलही वनमाल,
आगे गैयाँ पाछे ग्वाल मृदु तानि री।
तैसी धुनि बांसुरी को मधुर मधुर जैसी,
बंग चितवनि मंद मंद मुसकानि री।
कदम विपट के निकट तटनी के तट,
अटा चढ़ि चातीटि पीत पट फहरानि री।
रस बरसावै तन तपनि बुझावै नैन,
प्रानिनि रिझावै वह आवै रसखानि री॥

दोहा छंद अत्यंत प्राचीन छंद है। इसकी धारा अविच्छिन्न रूप से बहती आ रही है। इस छंद में रसखान ने रचना कर अपनी कुशलता का परिचय दिया है। 'प्रेमवाटिका' में केवल दोहे हैं जो शुद्ध रूप से नियमानुकूल हैं। इसके अतिरिक्त 'सुजान रसखान' तथा 'अष्टयाम' में भी दोहों का प्रयोग मिलता है। उन्होंने दोहे जैसे छोटे छंद में प्रेमतत्व निरोपण किया, वह प्रशंसनीय है-

कमलतंतु सो छीन अरु, कठिन खड्ग की धार।
अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार।"

दोहा छंद की भाँति रसखान ने सोरठा छंद को भी अपने साहित्य में स्थान दिया है। सोरठा की रचना में भी उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। जिस प्रकार दोहा छंद का रसखान ने प्रयोग किया है, उस प्रकार सोरठा छंद का प्रयोग करने में उनका मन रमा नहीं। शायद यही कारण है कि उनके संपूर्ण काव्य में मात्र चार ही सोरठा छंद हैं। किंतु उनके सोरठा में भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है-

देख्यों प्रेम सबको कहत, प्रेम न जानत कोई।
जो जन जाने प्रेम तौ, परै जगत क्यों रोइ।

इस प्रकार रसखान काव्य छंद-योजना अपने-आप में पूर्ण है। उनकी भाषा-प्रवाह की स्वाभाविकता का एक प्रधान कारण उनके छंदों की योजना है।

इस विवेचन के बाद यह कहा जा सकता है कि रसखान की भाषा सभी दृष्टियों से सफल एवं सार्थक है। एक विशिष्ट भाषा में जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वे सारे गुण रसखान की भाषा में मिलते हैं। उनके काव्य में विभिन्न अलंकारों एवं सफल छंद-योजना का स्पष्ट प्रयोग दिखाई देता है। कुल मिलाकर रसखान भक्त के साथ एक सफल कवि हैं।

बोध प्रश्न

- रसखान की काव्यभाषा को स्पष्ट कीजिए।
- रसखान की अलंकारयोजना पर प्रकाश डालिये।
- रसखान की छंद लालित्य को स्पष्ट कीजिए।

- कृष्णभक्ति काव्यधारा में रसखान का क्या स्थान है?

रसखान को लेकर हिंदी विद्वानों में इस बात को लेकर बड़ा मतभेद है कि वे कृष्णभक्त हैं या रीतिमुक्त कवि? आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रसखान को कृष्णभक्त माना जबकि आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा डॉ. नगेंद्र ने इन्हें स्वच्छंद काव्यधारा के कवि मानते हैं। रसखान के काव्य में स्वच्छंद वृत्ति का प्रयोग अवश्य हुआ है परंतु रीति स्वच्छंद कवियों की तरह न होकर कृष्णा भक्तों की तरह। रसखान ने गौसाई विट्ठलनाथ से दीक्षा अवश्य ली किंतु किसी भक्ति सम्प्रदाय से अपने-आपको नहीं जोड़ा और उनकी निष्ठा श्रीकृष्ण में थी। उनकी कृष्ण-भक्ति में स्वच्छंद वृत्ति ने कोई बाधा उत्पन्न नहीं की बल्कि उनकी मार्मिकता, प्रगाढ़ता और तन्मयता में सहायता की। रसखान एक ऐसे कृष्णभक्त हैं जिन्होंने धर्म, जाति तथा संप्रदाय से परे होकर कृष्णभक्ति की। उन्होंने सारी रूढ़ियों और परंपराओं को तोड़कर कृष्णभक्ति के आदर्श को स्थापित किया। रसखान ने कृष्ण की अनन्य भक्ति की, उन्होंने किसी दूसरे की ओर दृष्टि नहीं की, कृष्ण की लीला-भूमि में जीने-मरने में सार्थकता खोजी और जन्म-जन्मांतर तक कृष्ण के ही बनकर रहना चाहते थे। रसखान स्वच्छंद वृत्ति के प्रेमोन्मत्त कृष्ण भक्त थे।

हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा में प्रमुख रूप से सूरदास, नंददास, कृष्णदास, परमानंददास, कुंभनदास, मीराबाई और रसखान का नाम बहुत ही आदर से लिया जाता है। वास्तव में मीरा और रसखान की कृष्णभक्त संप्रदाय निरपेक्ष है। उनमें सांप्रदायिक तत्वों का अभाव है। उनकी भक्ति स्वाभाविक है, उनका कृष्ण प्रेम ही भक्तिसाधना की भूमि की ओर खींच लाया है।

रसखान का कृष्ण-प्रेम किसी भी हिंदू भक्त से कम नहीं था। उनकी कृष्ण भक्ति पर उनकी जाति और धर्म का कोई प्रभाव नहीं है। जब वे वृंदावन पहुंचे तो उन्होंने अपना पिछला जीवन लगभग भुला ही दिया और वे केवल ब्रज की गोपी बनकर रह गए जिसके कृष्ण के रूप-सौंदर्य को देखने के बाद अपने-आपको भुला दिया और कृष्ण की बावरी बन गई।

रसखान एक ओर भक्त हैं, पर उनकी भक्ति भावना अत्यंत उदार है। दूसरी ओर वे शृंगारी कवि हैं, परन्तु उनका शृंगार लौकिक और अलौकिक का मध्यवर्ती है। वे एक सहज, स्वच्छंद कवि हैं। इनके काव्य में सौंदर्योपासना तथा मधुर भाव की ही प्रधानता थी। रसखान का सांसारिक प्रेम ही कृष्ण प्रेम में परिवर्तित होकर प्रगाढ़ हो गया था। रसखान कृष्णभक्ति से केवल प्रभावित ही नहीं थे, वरन स्वयं भी सच्चे कृष्ण भक्त थे। उन्होंने कृष्ण काव्य की गीति शैली को त्यागकर कवित्त, सवैया शैली को अपनाकर कृष्ण के प्रेम-सौंदर्य संबंधित ऐसे-ऐसे सवैयों और कवित्तों की रचना की जिन्हें पढ़कर-सुनकर लोगों के हृदय नाच उठे। रसखान वास्तव में रस की खान हैं।

बोध प्रश्न

- रसखान को 'रस की खान' क्यों कहा जाता है?
- कृष्णभक्ति काव्य-परंपरा में रसखान के स्थान का निर्धारण कीजिए।

14.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! इस इकाई में रसखान के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला गया है। तथा उनके काव्य का मूल्यांकन किया गया है। उनके जीवन पर प्रकाश डालने से यह पता चलता है कि उनका जन्म एक मुसलमान परिवार में हुआ और जीवन से विरक्त होकर वे वृंदावन पहुंचे और कृष्ण से प्रेम कर कृष्णभक्ति में विलीन हो गए। उनके साहित्य का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने धर्म, जाति तथा संप्रदाय से परे होकर कृष्णभक्ति की। उन्होंने कृष्ण से प्रेम किया। उनकी माधुर्य भक्ति ने उन्हें कृष्ण-भक्तों की श्रेणी में विशिष्ट प्रदान किया। उनकी भक्ति-भावना अत्यंत स्वाभाविक एवं उदार है। उन्होंने कृष्णभक्ति काव्यधारा की परंपरागत गीति-शैली को न अपनाकर कवित्त-सवैया शैली को अपना कर पाठकों तथा श्रोताओं के समक्ष एक नया आयाम प्रस्तुत किया। रसखान ने परंपरागत ब्रजभाषा का अनुसरण तो किया परंतु प्रसंगानुकूल तत्सम तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग किया, जिससे उनके काव्य सौंदर्य में वृद्धि हुई। उनके काव्य-शिल्प पर प्रकाश डालने पर यह पता चलता है कि उन्होंने काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए बहुत ही सटीक भाषा का प्रयोग किया है। साथ ही भावानुकूल अलंकारों तथा छंदों का प्रयोग किया है।

14.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. रसखान हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा में एक संप्रदाय निरपेक्ष कृष्ण भक्त के रूप में समादृत है।
2. रसखान की कृष्ण भक्ति धर्म, जाति और संप्रदाय से परे परम प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है।
3. रसखान कृष्ण के अनन्य भक्त है जो कृष्ण की लीला-भूमि में जीने-मरने में ही सार्थकता मानते हैं।
4. रसखान की कृष्ण भक्ति में तन्मयता और गोपि-भाव की प्रमुखता है।
5. रसखान के काव्य में सौंदर्योपासना तथा मधुर भाव की प्रधानता है।

14.6 शब्द संपदा

1. कामरिया = कंबल
2. छछिया = छाछ नापने या रखने का एक प्रकार का मिट्टी का छोटा पात्र
3. ठसक = अभिमान, गर्व
4. तलफ = तड़पना, छटपटाना
5. दृग = आँख, नयन, नेत्र
6. लकौटी = लाठी, छड़ी

14.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. रसखान के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालिए।
2. रसखान की काव्यालोचन पर दृष्टिपात कीजिए।
3. रसखान के काव्य में निहित भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए।
4. रसखान के साहित्य में यूरोपीय प्रेम तत्वों को स्पष्ट कीजिए।
5. रसखान के काव्य में अभिव्यक्त सौंदर्य तत्वों पर प्रकाश डालिए।
6. रसखान के भाषा-वैशिष्ट्य पर एक लेख लिखिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. 'रसखान सचमुच में 'रस की खान' हैं - इस कथन की पुष्टि कीजिए।
2. रसखान की बादशाहों की ठसक त्याग कर गोवर्धन पहुंचने की यात्रा पर प्रकाश डालिए।
3. रसखान की कृष्ण की अनन्य भक्ति पर प्रकाश डालिए।
4. रसखान की माधुर्य भक्ति पर एक लेख लिखिए।
5. रसखान का श्रीकृष्ण के प्रति निस्वार्थ प्रेम को स्पष्ट कीजिए।
6. रसखान ने कृष्ण-भक्ति काव्य की परंपरागत गीति शैली ना अपनाकर एक नए शैली की नींव रखी। इस कथन को रसखान के काव्य के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. रसखान को किसने दीक्षा दी? ( )
   (अ) वल्लभाचार्य (आ) विट्ठलनाथ (इ) निम्बार्काचार्य
2. 'प्रेम वाटिका' में कितने दोहे संग्रहित हैं? ( )
   (अ) 50 (आ) 53 (इ) 55
3. रसखान की भक्ति का स्वरूप कैसा है? ( )
   (अ) दास्य भक्ति (आ) दैन्य भक्ति (इ) माधुर्य भक्ति
4. रसखान की रचना किस कोटि में आती हैं? ( )
   (अ) प्रबंध (आ) मुक्तक (इ) गीति

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. 'अष्टयाम' में .... दोहे संकलित हैं।
2. रसखान .... कृष्णभक्त कवि थे।
3. 'दानलीला' में .... छंद संग्रहित हैं।
4. रसखान ने अपना संपूर्ण काव्य .... भाषा में रचा है।

III. सुमेल कीजिए -

1. अष्टयाम	(अ) गोपियाँ
2. रसखान की भक्ति	(आ) श्री कृष्ण की अष्ट कालिक दिनचर्या का वर्णन
3. रसखान के प्रेम का आदर्श	(इ) सवैया
4. रसखान का प्रिय छंद	(ई) माधुर्य भक्ति

14.8 पठनीय पुस्तकें

1. रसखान रचनावली : विद्यानिवास मिश्र
2. रसखान रत्नावली : भवानी शंकर याज्ञिक
3. रसखान काव्य तथा भक्तिभावना : माजदा असद
4. रसखान ग्रंथावली : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
5. रसखान ग्रंथावली (सटीक) : देवराज भाटी
6. रसखान- जीवन और कृतित्व : देवेंद्र प्रताप उपाध्याय
7. रसखान और उनका काव्य : चंद्रशेखर पांडेय

इकाई 15 : मीराँबाई : काव्यालोचन

रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 मूल पाठ : मीराँबाई : काव्यालोचन
15.3.1 मीराँ का काव्य : विवेचन
15.3.2 मीराँबाई की रचनाएँ
15.3.3 मीराँ की भक्ति
15.3.4 मीराँ की कविता का दर्शन पक्ष
15.3.5 मीराँबाई की काव्यगत विशेषताएँ
15.4 पाठ सार
15.5 पाठ की उपलब्धियाँ
15.6 शब्द संपदा
15.7 परीक्षार्थ प्रश्न
15.8 पठनीय पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में भक्तिकालीन कवयित्री मीराँबाई के काव्यालोचन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त किया जाएग। इस इकाई के जरिए हम मीराँबाई जीवन दर्शन और भक्ति भावना से भी परिचित होंगे। इनकी रचनाओं में इनके आराध्य कहीं निर्गुण निराकार ब्रह्म बनकर तो कहीं सगुण साकार कृष्ण बनकर तो कहीं निर्मोही परदेशी जोगी के रूप में संकल्पित किया गए हैं। मीराँबाई गिरधर गोपाल के अनन्य और एकनिष्ठ प्रेम से अभिभूत हो उठी हैं।

मीराँ भक्तिकालीन प्रथम कोटि कि भक्त थी और वह बाल्यावस्था से ही भक्ति भावना से ओत-प्रोत थी। मीराँ की भक्ति कांता भाव या माधुर्य भाव की भक्ति थी। उन्होनें गिरधर गोपाल को अपना सब कुछ मानकर भक्ति की। मीराँ के रचित पदों में उनका जीवन दर्शन, एक नारी की मुक्ति को लेकर अभिव्यक्त अभिव्यंजना स्पष्ट तौर पर लक्षित होती हैं। मीराँ के पदों में सादगी और सरलता विद्यमान है जो उनकी बड़ी विशेषता हैं।

15.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- मीराँबाई के जीवन वृत्त से परिचित हो सकेंगे।
- मीराँबाई की काव्यगत विशेषताओं के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मीराँबाई की भक्ति भावना से परिचित हो सकेंगे।

- मीराँबाई के जीवन और उनकी भक्ति के स्वरूप के माध्यम से भक्तिकाल के काव्य वैविध्य से परिचित हो सकेंगे।

15.3 मूल पाठ: मीराँबाई : काव्यालोचन

15.3.1 मीराँ का काव्य : विवेचन

मीराँबाई की कविता भक्ति आंदोलन, उसकी विचारधारा और तत्कालीन समाज में नारी स्थिति से उनकी टकराहट का प्रतिफलन है। यह प्रतिफलन उस मानवीयता में प्रकट हुआ जो अपने समय की धार्मिक साधनाओं के ही सहारे रूपायित हो सकती थी। साधना, भक्ति, प्रेम, विरह या रहस्य की भावनाएँ काव्याभिव्यक्ति में अमूर्त रहकर ही नहीं प्रकट होतीं। वे मूर्त होती हैं, अनुभव जगत् में उदित होकर। इसलिए कविता का जागतिक संदर्भ होता है। इस संदर्भ को ऐतिहासिक दृष्टि उजागर करती है। मीराँ का असीम, रहस्यमय प्रिय संकेतित है, जागतिक संदर्भों के चित्रण के माध्यम से।

मीराँ को समझना बहुत ही मुश्किल है। एक ओर वह संत रैदास की शिष्या हैं और उनके आध्यात्मिक अनुभव में निराकार रूप व्याप्त है, दूसरी ओर वह सगुण कृष्ण-भक्ति की साकार प्रतिमा हैं। प्रायः सगुण भक्ति कविता के साथ रहस्यानुभूति का संबंध लोग नहीं जोड़ते हैं, परंतु मीराँ के काव्य में रहस्यानुभूति का रंग गहरा है, कहीं-कहीं तो गिरिधर या सांवलिया के स्थान पर 'राम' ला देने से ही लगेगा कि यह कबीर का अनुभव है। मीराँ के काव्य में मोरमुकुट, पीतांबर आदि के चित्रमय वर्णन उतना महत्त्व नहीं रखते, जितना कि मोरमुकुटवाले की लगन महत्त्व रखती है। इन सतही विसंगतियों के कारण मीराँ के काव्य की थाह पाना कुछ मुश्किल लगता है।

आचार्य रानाडे ने 'पाथवेज टु रियालाइजेशन आफ गाड' नामक पुस्तक में मीराँ की रहस्यानुभूति पर अच्छा प्रकाश डाला है और उन्होंने माना है कि सांवले रूप के साथ यह तादात्म्य आत्मा की 'काली रात' डार्क नाइट आफ दि सोल के साथ तादात्म्य है, रहस्यानुभूति के गंभीर क्षण में कहीं कोई रूप नहीं रह जाता, कहीं कोई रंध्र नहीं रह जाता, सब एक सघन आकांक्षा के साथ एकाकार हो जाता है, ऐसा होना ही 'मरजीवा' की स्थिति प्राप्त करना है, मीराँ जब यह बयान करती हैं कि :

या हिरदा बस्यां सांवरो म्हारे णींद न आवां
चौमास्यां री बावड़ी ज्याकूं नीरणा पावां
हरि निर्झर अमरित झरया म्हारी प्यास बुझावां
रूप सुरंगा सांवरी मुख निरखण जावां
मीराँ व्याकुल विरहिणी अपनी कर ल्यावां

मीराँ ऊपर से देखने में समाज से बाहर दिखती हैं, पर वे समाज को एक करनेवाली रसधारा में डूबी हुई हैं कि उनके भीतर समाज की वास्तविक प्राणसत्ता समा जाती है। वहीं दूसरी और इनकी रचनाओं का एक विश्लेषण विद्रोहपरक भी किया जा सकता है कि मीराँ सामंतवादी रूढ़ियों को तोड़ने के लिए गिरिधर भक्ति का संकल्प लेकर रनिवास के बाहर निकल आई हैं, एक प्रकार से एक विशाल जनांदोलन में बहुत बड़ा जोखिम उठाकर कूद पड़ी हैं। यह जोखिम है सामाजिक प्रतिष्ठा खोने का। स्त्रीत्व की मान्य धारणा के अनुसार सीमित दायरेवाली नैतिकता से हटने का परिणाम भोगने का। ध्यातव्य है - डॉ नामवर सिंह ने इसिलए कहा होगा कि “मीराँ का काव्य नारी के मुक्ति का अह्वान है।” वहीं रामविलास शर्मा ने कह कि- “मीराँ का काव्य स्त्री की पराधीनता का प्रत्याख्यान है। पुरुष प्रधान व्यवस्था के प्रति विद्रोह की घोषणा है।”

मीराँ का विद्रोह कबीर के विद्रोह की तरह ही साधन है, साध्य नहीं। इन दोनों का साध्य ऐसे भाव की प्राप्ति जो समस्त दुविधाओं, द्वैतों और भेदों से ऊपर उठा दे, सर्वात्मभाव में प्रतिष्ठित कर दे। दोनों का साध्य प्राप्ति की गहरी बेचैनी है, इसीलिए जितने भी अवरोधक कारण हो सकते हैं, उन्हें तोड़कर उनके आगे निकल जाने का उत्साह भी इतना अधिक है। मीराँ और कबीर में केवल एक अंतर है। कबीर की दीक्षा क्रियायोग (हठयोग) में हुई है, इसलिए उनकी काव्यभाषा के ऊपर शरीर के आभ्यंतर अनुशासन का बड़ा दबाव है, उनका बाह्य संसार भीतर के हीरे की ज्योति से आलोकित है, भीतर के कमल से आमोदित है जबकि मीराँ की दीक्षा प्रेमयोग में सीधे हुई है। (कबीर क्रियायोग के द्वार से प्रेमयोग में प्रविष्ट हुए), इसलिए उनका बाह्य संसार और उनका आभ्यंतर संसार दोनों एक-दूसरे को हुलसाते रहते हैं, पता ही नहीं चलता कि कब सांवलिया भीतर के दर्द की श्यामलता बन जाते हैं, कब भीतर के दर्द की श्यामलता या आत्मा की काली रात ही सांवली सूरत बन कर थिरकने लगती है।

बोध प्रश्न

- मीराँ का काव्य किसका प्रतिफलन है?
- मीराँ के काव्य में रहस्यानुभूति कैसी है?
- मीराँ का विद्रोह किस तरह का विद्रोह है?

15.3.2 मीराँबाई की रचनाएँ

मीराँबाई के जीवनवृत की ही तरह उनकी रचनाओं के संबंध में भी कई तरह के मत विद्वानों के बीच प्रचलित हैं। जिन रचनाओं को प्रामाणिक तौर पर मीराँबाई का बताया जाता है उनमें मीराँबाई की पदावलियाँ, गीतगोविंद का टीका, नरसी जी का मायरा, राग सोरठ पद संग्रह, राग गोविंद, मीराँबाई का मलार, गर्वगीत, राग विहाग एवं फुटकर पद शामिल हैं। मीराँ

की रचनाएँ लिखित रूप में नही प्राप्त हैं। ऐसा माना जाता है कि उनके पदों को लिपिबद्ध करने का कार्य उनकी सखी ललिता ने किया था। आज उनकी रचनाओं का संकलन मीराँ पदावली के नाम से मिलता है। मीराँ के कुछ पद गुरु ग्रंथ साहब में भी मिलते हैं। मीराँबाई के रचनाओं के संबंध में कई विद्वानों ने विभिन्न पुस्तकों की चर्चा की है। मुंशी देवीप्रसाद ने जब राजस्थान में हिन्दी की पुस्तकों की खोज की तब गीतगोविंद की टीका, नर्सी जी का मायारा, राग सोरठ के पद संग्रह तथा फुटकर पद को ही मीराँबाई की रचनाओं के रूप में पाए जाने का उल्लेख किया है जबकि रामचंद्र शुक्ल ने अपने साहित्य इतिहास में राग गोविंद का उल्लेख किया है। दूसरी ओर गौरीशंकर हीराचंद ओझा 'मीराँबाई का मलार' की प्रसिद्धि के विषय में चर्चा करते है। साहित्यिक दृष्टि से देखा जाए तो मीराँबाई के फुटकर पदों का ही सबसे अधिक महत्व है जो जनसामान्य में प्रचलित उनके गीतों का संग्रह हैं। इन पदावलियों में मीराँबाई की भक्ति कांता भाव की भक्ति रही है जहां उन्होंने ज्ञान से ज्यादा महत्व भावना व श्रद्धा को दिया।

बोध प्रश्न

- साहित्यिक दृष्टि से मीराँबाई के किन पदों का सबसे अधिक महत्व है?
- प्रामाणिक तौर पर मीराँबाई के किन रचनाओं की चर्चा की जाती है?

15.3.3 मीराँ की भक्ति

मीराँ की भक्ति-कान्ता, माधुर्य एवं दाम्पत्य भाव की थी। मीराँबाई सन्तों और सत्संगति में विश्वास करती थी, उनका मानना था कि साधुओं के संगति में रहकर ही ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार मीराँ ने मथुरा वृंदावन और जीवन के अंतिम समय द्वारिका में स्थित रणछोड़ जी के मंदिर में गाते-गाते इनकी मृत्यु हो गयी। शरद पूर्णिमा के दिन मीराँबाई जयंती मनाई जाती है। भगवान कृष्ण की अखण्ड भक्तिन मीराँबाई ने अपने पूरे जीवन में एक क्षण के लिए भी भगवान कृष्ण का नाम अपनी जुबान से अलग नहीं किया। उन्होंने अपने शरीर का अंत भी कृष्ण की मूर्ति में समाकर कर दिया। उनके भजनों और पदों में भक्ति का अमृत भरा हुआ है। मीराँ कृष्णा की भक्त हैं। उनकी भक्ति कांता भाव की है। वे गिरधार-नागर अपना स्वामी और अपने आपको उनकी दासी कहती हैं-

भज मन चरण कंवल अविनासी।

XX XX

अरज करौं अबला कर जोरे श्याम तुम्हारी दासी।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटौ जम की फांसी।।

संयोग की भावानुभूति- मीराँ कृष्णा के साथ भाव जगत में ऐक्य अनुभव करती है। उन्होंने अपने अनेक पदों में इसकी भावाभिव्यक्ति की है। उदाहरण के लिए

'मैं तो संवारे के रंग रांची।

साजिद सिंगार बांधि पग घुंघरू लोक लाज तजी नांची।।'

विरह-वेदना और पीड़ा की जितनी मार्मिक अभिव्यंजना मीराँ के काव्य में हुई है, वैसे अत्यंत दुर्लभ है। उनके बिरह-वर्णन में तल्लीनता, तन्मयता तथा भावुकता है। अन्य कवियों का वर्णन जहां कल्पना-आधारित है, वही मेरा वर्णन व्यक्तिगत अनुभूति है। आलोचक नगेन्द्र लिखते हैं कि मीरांबाई का काव्य उनके हृदय से निकले सहज प्रेमोच्छवास का साकार रूप है।

पान जयूं पीली पड़ी रे, लोग कहैं पिण्ड रोग।

छाने लांघन मैं किया रे, राम मिलन के जोग ।

बाबल वैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हारी बांह।

मूरख वैद मरम नहिं जानै, कसक कलेजे मांह।

जा वैदा घर आपने रे, म्हारे नांव न लेय।

मैं तो दाघी विरह की रे, तू काहे कं औषध देर।।

मीराँ संबंधी पुस्तक 'स्त्री चेतना और मीराँ का काव्य' में पूनम कुमारी लिखती है 'मीराँ की कविताएँ स्त्री चेतना के इतिहास की एक विलक्षण धरोहर हैं। आज तक जितनी भी स्त्री चेतनापरक कविताएँ लिखी गई हैं उनके बरबस मीराँ की कविताओं को रख दिया जाए तो इनकी विलक्षणता की पहचान ज्यादा आसान हो जाएगी और शायद ज्यादा तीखेपन की भी स्त्री चेतना के संदर्भ में मीराँ एक खास अर्थ में प्रासंगिक और आधुनिक हैं। और सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि वे आधुनिकता के सारे प्रचलित प्रतिमानों से दूर रहते हुए भी आधुनिक और प्रासंगिक है।'

मीराँबाई के दौर का समाज एक ठहरा हुआ समाज था जहाँ कोई गतिशीलता विद्यमान नही थी। हम जानते है कि भक्ति काल सामाजिक विषमताओं के खिलाफ भक्ति को एक आंदोलन की दृष्टि जांचा परखा गया। जिसमें लोकन्मुखता, मानवीयता और स्म्तमूलक दृष्टिकोण मौजूद थे। संन्या जनता ने इस आंदोलन के नैतिक आधार को समझा और मुक्ति का स्वप्न देखा। सामंती राजनीतिक सामाजिक परिवेश और उच्च मध्यवर्ग के वर्चस्व में जहां वर्णाश्रम व्यवस्था अनिवार्य है। ऐसी स्थिति में मीराँबाई को कृष्ण भक्ति ने वह आसरा प्रदान किया जहाँ उनके स्वाभिमान को एक जीवन मिला। हालांकि मध्यकाल की सत्ता और उसमे भी ठेठ राजपूताने के राजघराने की कुलवधू सीधे-सीधे अपने जीवन का निर्णय ले यह तत्कालीन सामंती समाज को कैसे सहन हो सकता था। विधवा होने के बाद भी मिरा कुल की रीति न मानकर कहती हैं- भजन करस्यां सती न होस्या मन मोहयों घण नामी। एक स्त्री की मुक्ति की चेतना का ऐसा दर्शन समूचे मध्य युग के साहित्य में मिलना दुर्लभ है। इस चेतना को नकारकर जो विद्वान मिरा को केवल भक्तिन कवि का तमगा देते है वे मीराँबाई की कविता के मर्म को नहीं जानते। अस्वीकार का साहस मिरा को लोक में वह प्रतिष्ठा प्रदान अकर्ता है जिसके मध्यान से उनके गीत जन-जन के कंठ का शोभा बढ़ाने लगी।

मीराँ के व्यक्तित्व में ज्ञान, कर्म और भक्ति की एकरूपता का अद्‌भुत समन्वय है। उन्होंने अपने आचरण एवं कर्म की भूमि को ज्ञान और भक्ति की धरती पर सजाया है। वह चाहे राजमहलों में रही या लोक के बीच झोपड़ियों में, परन्तु भक्ति की साधना पर अडिग रही। उनका दर्शन प्रेम का दर्शन है जिसमें उनका द्वैत अद्वैत में परिवर्तित होकर आत्मा-परमात्मा के अटूट सम्बन्ध के सत्य को प्रकाशित करता है। कृष्ण-प्रेम के भाव में ही उनका दर्शन व चिन्तन अभिमुख हो उठता है और उनके प्रेम की व्याख्या में सारे दर्शन स्वतः अवतरित हो जाते हैं। मीराँ में भक्ति और प्रेम अलग-अलग नहीं हैं। प्रेम और भक्ति का शास्त्रीय द्वैत उनमें नहीं है। यह सत्य है कि मीराँ मूलतः एक भक्त थीं, उनके पास दर्शन और चिन्तन की वह उहापोह नहीं थी जो एक दार्शनिक के पास होती है, परन्तु एक जीवन दृष्टि अवश्य थी जो मार्ग का संधान करती है। वैसे भक्त अपने आपमें एक दार्शनिक भी होता है, अतः मीराँ की भक्ति एवं काव्य में दर्शन के तत्व पदे-पदे दृष्टिगत होते हैं।

मीराँ के भक्ति दर्शन में वेद, पुराण, उपनिषद्, संहिताएँ, श्रीमद्भागवत, गीता, रामायण, महाभारत, पांचरात्र, शंकर के अद्वैतवाद, रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद द्वैताद्वैतवाद, आचार्य मध्व के द्वैतवाद, आचार्य निम्बार्क के द्वैताद्वैतवाद, आचार्य वल्लभ के शुद्धाद्वैतवाद व पुष्टि भक्ति, चैतन्य महाप्रभु के अचिन्त्य भेदाभेदवाद, माधवेन्द्रपुरी की गोपाल पूजा आदि दार्शनिक सिद्धान्तों के तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। मीराँ के भक्ति भाव को लक्षित करते हुये आलोचक मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि "कबीर, जायसी और सूर के सामने चुनौतियाँ भाव जगत की थीं। मीराँ के सामने भाव जगत से अधिक भौतिक जगत की, सीधे पारिवारिक और सामाजिक जीवन की चुनौतियाँ तथा कठिनाईयाँ थी।" स्पष्ट है कि कृष्णप्राण मीराँ का समग्र जीवन और उनकी भक्ति साधना व अध्यात्म का एक अतल महारत्नाकर है जिसमें से हम अपनी-अपनी रूचि, सामर्थ्य और चिन्तन दृष्टि के आधार पर रत्नों का चयन कर सकते हैं। यही नहीं, उनकी भक्ति के गौण उत्पाद जैसे नारी मुक्ति, सात्विक विद्रोह, लोकमंगल, जीवन की पवित्रता, समता, उदारता, मैत्री, करुणा, लोकदृष्टि आदि भी आधुनिक सन्दर्भों में अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

बोध प्रश्न

- मीराँबाई के पदों में किस तरह का समन्वय मिलता है?
- मीराँबाई का काव्य दर्शन किस प्रकार का है?

15.3.4 मीराँ की कविता का दर्शन पक्ष

मीराँ की जीवनदृष्टि, भक्तिसाधना-पद्धति, भक्तिमूल्यों और उनमें निहित दर्शनशास्त्र के तत्वों की विवेचना करने के लिए हमारे पास केवल तीन आधारभूत सन्दर्भ हैं- (1) मीराँ के जीवन की घटनाएँ (2) मीराँ का पद साहित्य, एवं (3) सन्तों-भक्तों के मीराँ सम्बन्धी उल्लेख। इनमें से भी सबसे महत्त्वपूर्ण उनके पद हैं जिनमें उनकी जीवन दृष्टि और भक्ति व दर्शन के तत्व पदे-पदे दृष्टिगोचर हैं। दार्शनिक दृष्टिकोण से मीराँ की भक्ति साधना की विवेचना करने पर यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि मीराँ आज के युग में भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी वह अपने समकालीन युग में थी, बल्कि यह कहना अधिक समीचीन होगा कि वह आज और अधिक प्रासंगिक होकर हमें संस्पर्श करने लगी है। नारी जागृति और नारी गौरव आज विश्व की प्रमुख सोच बन गई है- मीराँ ने नारी जाति की सामाजिक चेतना अपने युग में प्रबुद्ध कर दिखाई थी। जनपथ पर चलकर उसने जनतांत्रिकता और लोकमानसिकता की नाड़ी को वर्षों पूर्व पहचान लिया था। पर्दाप्रथा जैसी अनेक कुरीतियों को तोड़कर उसने सत्संगति का मार्ग प्रशस्त किया था। मीराँबाई की सदैव अन्तःप्रेरणा यही रही कि भगवत-प्रेम और भक्ति के भाव को जनमानस तक पहुँचाये। भले ही उसने शास्त्र नहीं पढ़े, किसी संप्रदाय या गुरु का आश्रय नहीं लिया, परंतु प्रेम के ‘अढ़ाई आखर’ को इस प्रकार आत्मसात किया कि भक्ति के समस्त दर्शन और भक्ति के सभी सूत्र उसमें अपने आप उतर आए। मीराँ आज देश-काल की सीमाओं को लांघकर भक्ति की विश्व विरासत बन चुकी है, यही मीराँ की भक्ति का सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक आयाम है।

मीराँ का दर्शन शास्त्र से अधिक लोक से जुड़ा हुआ है। राज परिवार में जन्म लेने और राजपरिवार में ब्याहने के उपरान्त भी मीराँ राजसी वैभव एवं भौतिक सुख-सुविधाओं से पूर्णतः दूर रही और लोक से जुड़ी रही। इसीलिए मीराँ को लोकनिधि कहा जाता है। लोक ने ही मीराँ को समाज में जीवित रखा है। मीराँ के भावलोक का जो व्यापक विस्तार हुआ है, वह भी लोक का ही अवदान है। मीराँ ने लोक का सहारा लेकर दर्शन की दुरूहता को सरल, व्यावहारिक और सर्वसुलभ बना दिया है। मीराँ तो प्रेम और भक्ति की वह लोकपावनी गंगा है जो अपनी भक्ति-तरंगों में अवगाहित कर नास्तिक को भी आस्तिक बनाकर उसकी मुक्ति के द्वार खोल देती है। मीराँ की लोकभक्ति ने ईश्वर को भी मानव बना दिया।

मीराँ की वाणी में केवल उनकी भक्ति ही नहीं बोलती है, अपितु समस्त नारी समाज का दर्द और संत्रास भी बोलता है। मीराँ नारी चेतना, नारी स्वातन्त्र्य की अग्रदूत है। उनके काव्य में युगों-युगों से प्रताड़ित एवं उपेक्षित नारी की मूक व्यथा के साथ-साथ सामाजिक प्रतिरोधों का सामना करने की दृढ़ शक्ति और अटूट संकल्प दृष्टिगत है। मीराँ नारी समाज को अपने जीवन मूल्यों के अनुसार जीवन जीने का संदेश देती है और नारी मुक्ति के स्वर के रूप में प्रासंगिक बनी

हुई है। वृन्दावन में मीराँ और जीव गोस्वामी का संवाद एक ऐसे युग प्रवर्तक सामाजिक दर्शन का ज्वलन्त उदाहरण है जिसने भक्ति के क्षेत्र में और सामाजिक धरातल पर स्त्री-पुरुष विभेद की भावना को ध्वस्त कर दिया।

मीराँ की भक्ति साधना उनके स्वतन्त्र चिन्तन और स्वतन्त्र व्यक्तित्व के सिद्धान्तों पर आधारित थी। इसीलिए न तो उन्होंने लौकिक बन्धनों को स्वीकार किया और न ही किसी भक्ति पंथ या सम्प्रदाय के आश्रय को स्वीकार किया। मीराँ की दृष्टि केवल अपने परमलक्ष्य पर थी और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के ऐकान्तिक पथ पर वह अकेली चली, न किसी की शिष्या बनी, न किसी गुरु या संप्रदाय के आचार्य की कंठी धारण की और न अपना कोई सम्प्रदाय चलाया। मीराँ ने शास्त्रों के इस कथन को अपने जीवन में चरितार्थ किया कि "बन्धना जानवरों का धर्म है"। अपनी वैचारिक स्वतन्त्रता पर उनका इतना अडिग विश्वास और निडरता का भाव था कि उन्होंने सामन्ती व्यवस्था को ललकारते हुए यह कहने का साहस जुटाया- "नहिं भावै थारो देसड़लो रंगरूड़ो राणा। थांरा देसां में साध नहिं छै, लोग बसै सब कूड़ो"। अपने जीवन में उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों, भक्तों व सन्तों के सत्संग का लाभ अवश्य लिया किन्तु किसी पंथ की सदस्यता नहीं ली। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के इतिहास में मीराँ एक ऐसी विरल विभूति है जिसने बिना किसी आश्रय के अपने आत्मबल, निडरता, पूर्ण आत्मविश्वास और अपने आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण भाव से भक्ति साधना कर अन्ततः अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त किया।

बोध प्रश्न

- "नहिं भावै थारो देसड़लो रंगरूड़ो राणा। /थांरा देसां में साध नहिं छै, लोग बसै सब कूड़ो" - इस पद को किस संदर्भ में मीराँ ने लिखा है, बताएँ।
- मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का इतिहास किस तरह की विभूति है?

15.3.5 मीराँबाई की काव्यगत विशेषताएँ

संत काव्य के अन्य कवियों की भांति मीराँ ने अपने पदों में भाव पर अधिक ध्यान दिया है। उन्हें व्यक्त करने के लिए जो सब अधिक उपयुक्त लगे उसका उन्होंने प्रयोग किया है। मीराँ कृष्णा के प्रेम में दीवानी थी। कृष्णा उनके जीवन के केंद्रबिंदु हैं। उनका सारा काव्य कृष्णा से समृद्ध है। उनके काव्य में प्राय: कृष्णा के रूप सौंदर्य, उनके प्रति भक्ति तथा भावनात्मक संयोग-वियोग के चित्र दिखाई देते हैं। उनके काव्य की विशेषता की ओर संकेत करते हुये रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि 'मीराँ का काव्य उन विरल उदाहरणों में हैं जहाँ रचनाकार का जीवन और काव्य एक-दूसरे में घुल मिल गए हैं, परस्पर के संपर्क से वे एक दूसरे को समृद्ध करते है।'

अध्यात्म, दर्शन, धर्म, साहित्य एवं लोकजीवन के विविध मनीषियों और विद्वानों ने भक्त शिरोमणि मीराँबाई का अपनी-अपनी तात्विक दृष्टियों से आकलन किया है। आचार्य रजनीश

मीराँ को तीर्थंकर की संज्ञा देते हैं तो गीता के महान चिन्तक स्वामी रामसुखदासजी उसे विरह और भक्ति की प्रतिमूर्ति बताते हैं। मानस मर्मज्ञ पूज्य मुरारी बापू के अनुसार मीराँ स्वयं भक्ति का अवतार है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की दृष्टि में मीराँ में भारतमाता का रूप साकार हो उठता है। साहित्य जगत से जुड़े मनीषियों और शोध अध्येताओं ने मीराँ की भक्ति, दर्शन और धर्म के मूल में प्रेम को ही प्रमुख तत्व माना है।

मीराँबाई के जीवन-दर्शन, भक्ति एवं जीवन-मूल्यों का सर्वाधिक प्रामाणिक और प्राचीनतम उल्लेख भक्तमालकार नारायणदास नाभा ने अपनी भक्तमाल में किया है जो एक प्रकार से मीराँ के भक्ति-दर्शन को समझने का प्रवेशद्वार है। नाभाजी के अनुसार ब्रज गोपियों के समान मीराँ ने कलियुग में भगवान श्रीकृष्ण की माधुर्यभाव से प्रेमाभक्ति की। अपने भक्तिसाधना पथ पर वे निरंकुश एवं निडर भाव से अग्रसर हुई और सभी प्रकार की साम्प्रदायिक, पारिवारिक एवं सामाजिक वर्जनाओं को नकार कर परमरसिक रसेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के यश का रसपूर्ण गान किया। भक्ति की परीक्षा के अन्तर्गत उन्होंने हलाहल विष को भी अपने प्रभु का चरणामृत मानकर अपने गले में उतार लिया और गीता के उस दर्शन को सत्य सिद्ध किया कि भगवान अपने भक्तों का योग-क्षेम स्वयं वहन करते हैं। मीराँ ने इस सत्य को पहचान लिया था कि साधना-पथ की सबसे बड़ी बाधाएँ हैं - लोकलाज, कुल-समाज की मर्यादा और लौकिक जीवन की बेड़ियाँ - अतः उन्होंने तिनके के समान इन सबको तोड़ फेंका। अपनी प्रेमाभक्ति को छिपाने के बजाय उन्होंने परमेश्वर को पति मानने की अपने जीवन-दर्शन की चौड़े-धाड़ै उद्घोषणा की- 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'। मीराँ ने अपना उपास्य भगवान श्रीकृष्ण के 'गिरधर नागर' और 'गोपाल' स्वरूप को बनाया। कृष्ण का यह स्वरूप लोकरक्षक एवं सामान्यजन के सखा तथा गौ प्रतिपालक का है।

मीराँ के कृष्णप्रेम की तुलना गोपी प्रेम से की जाती है। नाभाजी ने भी मीराँ की भक्ति को गोपियों की भक्ति के समान माना है। अंतर दोनों में इतना ही है कि गोपियाँ परकीया हैं, जबकि मीराँ स्वकीया। मीराँ का प्रियतम गिरधर गोपाल केवल और केवल मीराँ का है। मीराँ व गिरधर के बीच अन्य कोई नहीं है। वह अपने प्रियतम की सखी, प्रेमिका और पत्नी सब कुछ है। मीराँ का उज्ज्वल शृंगार निराला है क्योंकि इसमें न दैहिक आकर्षण का भाव है और न दैहिक तृप्ति की आकांक्षा। यहाँ तक कि मीराँ को कृष्ण के दर्शनशास्त्र में भी किसी प्रकार की रुचि नहीं है, उसको तो कृष्ण के रूप में रस है।

मीराँ की माधुर्य भक्ति में स्वसुख भाव के स्थान पर 'तत्सुखी सुखित्वं' का भाव विद्यमान है। स्वसुख की भावना में शृंगार एवं कामरस का प्राधान्य होता है जबकि तत्सुखी सुखित्वं भाव में माधुर्य या उज्ज्वल रस रहता है। इसी भाव से मीराँ ने अपने आराध्य गिरधर की उपासना की। मीराँ की कविता में भक्ति के पदों में श्रीनगर की भावना को ध्यान में रखकर स्त्रीवादी

आलोचक रोहिणी अग्रवाल लिखती है कि मीरां के पदों को यदि आध्यात्मिकता के कुहांसे से मुक्त कर दिया जाए, तो वे जीवन के राग, उल्लास, उत्सव और ठाट-बाट के साथ एन्द्रिकता के उद्दाम का भी संस्पर्श करते हैं। घोर लौकिकता के बीच घोर शृंगारिक बाना।

बोध प्रश्न

- मीराँ के भक्ति भावना में 'तत्सुखी सुखित्वं' का क्या अर्थ है?
- राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की दृष्टि में मीराँ में कौन सा रूप साकार होता है?

15.3.6 काव्य भाषा

मीराँ की भाषा कृत्रिमता से दूर ब्रज भाषा है जिसमें अनेक प्रांतों के शब्द प्राप्त होते हैं। इनकी भाषा पर मुख्य रूप से राजस्थानी और गुजराती का प्रभाव है। पूर्वी, पंजाबी और फारसी के भी सब यत्र तत्र मिलते हैं। इन्होंने अनेक प्रांतों का भ्रमण किया अतः पर्यटन शीलता का प्रभाव इनकी भाषा पर स्पष्ट दिखाई देता है। जिससे इनके पदों की भाषा में एकरूपता का अभाव है। डॉ शिवकुमार शर्मा लिखते हैं- 'मीराँ का काव्य आंसुओं के जल से सिक्त, पल्लवित एवं पुष्पित प्रेमबेल के मनोहारिणी सुगंध से सुवासित है। मीराँ के पद हिंदी साहित्य में अनूठे हैं। वे उनके हृदय की गहराई से निकले हैं, उनका दर्द उनके काव्य को अद्वितीय बनाता है।

शैली के स्तर पर मीराँ ने गीतात्मक शैली का अनुसरण करके पदों की रचना की है। उनके पदों में गेयता, संगीतात्माकता और अनुभूति की तीव्रता विद्यमान है। इनकी शैली को गीत काव्य की भावपूर्ण शैली कहा जा सकता है यह स्वयं ही इस शैली की जन्म दात्री तथा पोषिका हैं। रस-योजना की दृष्टि से मीराँबाई के काव्य में प्राय: श्रृंगार रस की अभिव्यंजना हुई है। श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग तथा वियोग का अपने पदों में उन्होंने सुंदर निरूपण किया है। उनके भक्ति तथा विनय संबंधी पदों में शांत रस का प्रयोग है। पदों में मुख्य रूप से माधुर्य तथा प्रसाद गुण है। अलंकार सौन्दर्य योजना के संदर्भ में मीराँ के काव्य का सृजन अलंकार निरूपण की दृष्टि से नहीं हुआ है तथापि इनके पदों में उपमा, रूपक, दृष्टांत आदि अलंकार स्वाभाविक रीति से आए हैं।

बोध प्रश्न

- शृंगार के किन पक्षों का वर्णन मीराँ के पदों में हैं?
- मीराँ की भाषा में किस-किस भाषा के शब्द मिलते हैं?

15.4 पाठ सार

राजस्थान की सामंती सांस्कृतिक इतिहास में मीराँ की भक्ति साहित्यिक संसार की एक बड़ी उपलब्धि हैं। भक्तिकाल को बीते हुये के लंबा समय गुजर चुका है लेकिन मीराँ की समृद्ध भक्ति साहित्य के साथ साथ सामाजिक तौर पर भी आज मार्गदर्शन कार्य करती हैं। मीराँ की अलौकिक दृष्टि में समृद्धि वैभव, भौतिक सुख सुविधा केवल दिखावा है, उनके अनुसार, इन सांसारिक सुखों को त्यागने से ही ईश्वर प्राप्ति संभव है। मीराँ का धर्म भक्ति था जिसमें रूढ़ियों

या परम्पराओं के लिए कोई स्थान नहीं था। मीराँ के द्वारा भक्ति के सरल मार्ग का अनुसरण किया गया जिसमें उन्होंने गायन नृत्य व कृष्ण स्मरण को महत्त्व दिया था।

मीराँ भक्ति काल में नवयुग की पूरोधा थी। उन्होंने अपनी भक्ति में ज्ञान के स्थान पर भावना पक्ष को अधिक महत्त्व दिया। उन्होंने उच्च सिद्धान्तों व विचारों को सरल भाषा में व्यक्त किया। इसी कारण मीराँ के अनुयायियों व प्रशंसकों में समाज के निम्न से लेकर उच्च वर्ग के लोग शामिल है।

15.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. जिन कवियों ने भक्ति काल को स्वर्णकाल बनाने में योगदान दिया है, उनमें मीराँ का प्रमुख स्थान है।
2. मीराँबाई भक्ति, संगीत व साहित्य की त्रिवेणी के रूप में समादृत है।
3. मीराँ भक्तिकालीन साहित्य में स्त्री रचनाकार के रूप में अपना अनन्य स्थान रखती है।
4. मीराँ पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में 'लोकलाज' खोकर एवं निंदित होकर भी 'लोक' की 'सरताज' एवं अभिनंदनीय बनी रही।
5. मीराँ की वेदना और विद्रोह की एक भौतिक पृष्ठभूमि रही जिसे उनकी स्त्री-दशा और उनके संकल्प ने एक अत्यंत उदात्त स्वरूप प्रदान किया।

15.6 शब्द संपदा

1. अधीर = व्याकुल होना
2. गेयता = गाने योग्य
3. जागीरी = जागीर / साम्राज्य
4. तीरां = किनारा
5. परकीया = पर-पुरुष से प्रेम करनेवाली नायिका।
6. पीली = पीला पड़ जाना, कोई रोग हो जाना
7. लीला = विविध रूप
8. विरह = वियोग
9. वैजंती = एक फूल
10. सुमरण = याद करना / स्मरण
11. स्वकीया = अपनी विवाहिता स्त्री, पत्नी

15.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. मीराँ के काव्य की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।
2. मीराँ ने श्री कृष्ण के रूप सौन्दर्य का कैसे वर्णन किया है?
3. मीराँ के काव्य नारी मुक्ति की व्याकुलता है, इस कथन के आलोक में मीराँ की नारी चेतना के बारे में बताइए।
4. निम्नलिखित काव्य पंक्तियों के अर्थ बताइए -

   मीराँ को गिरधर मिलिया जी, पूरब जनम के भाग।
   अरज करौं अबला कर जोरे श्याम तुम्हारी दासी।
   मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटौ जम की फांसी।।
   मैं तो संवारे के रंग रांची।
   साजिद सिंगार बांधि पग घुंघरू लोक लाज तजी नांची।।'

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. मीराँ कृष्ण की उपासना किस रूप में करती है? वह रूप कैसा है?
2. लोग मीराँ को बावरी क्यों कहते हैं?
3. मीराँ के जीवन के संदर्भ से लोक लाज खोने का अभिप्राय क्या है?

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. मीराँबाई की 'कांता भाव' की भक्ति में ज्ञान से ज्यादा महत्व किसे दिया गया है? (   )

   (अ) भावना व श्रद्धा को (आ) प्रेम को (इ) लौकिक जगत को (ई) अहम् को
2. मीराँ की वाणी में केवल उनकी भक्ति ही नहीं बोलती है, अपितु समस्त _______ समाज का दर्द और संत्रास भी बोलता है। (   )

   (अ) पुरुष (आ) देव (इ) नारी (ई) शोषित
3. मीराँ का दर्शन शास्त्र से अधिक किससे से जुड़ा हुआ है? (   )

   (अ) स्वयं से (आ) लोक से (इ) परलोक से (ई) प्रेम से

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. मीराँ का विद्रोह कबीर के विद्रोह की तरह ही साधन है, ... नहीं।
2. डॉ नामवर सिंह के अनुसार "मीराँ का काव्य नारी के .... का अह्वान है।
3. मीराँ की भाषा .... से दूर ब्रज भाषा है।
4. साहित्यिक दृष्टि से देखा जाए तो मीराँबाई के .... पदों का ही सबसे अधिक महत्व है।
5. मीराँ की माधुर्य भक्ति में स्वसुख भाव के स्थान पर .... का भाव विद्यमान है।

III. सुमेल कीजिए -

1. मीराँ का जन्म	(अ) 1547
2. मीराँ का जन्मस्थान.	(आ) कुड़की
3. मीराँ की मृत्यु	(इ) 1498 ई.
	(ई) 1496 ई.

15.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास : विश्वनाथ त्रिपाठी
2. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल
3. मीराँबाई की भक्ति साधना : श्रीमती सुरेखा
4. मीराँ मेरी यात्रा : मंजु रानी
5. स्त्री चेतना और मीराँ का काव्य : पूनम कुमारी
6. मीराँ का जीवन : अरविंद सिंह तेजावत (सं)
7. मीराँबाई और मेड़ता : देविकिशन राजपुरोहित

इकाई 16 : घनानंद : काव्यालोचन

रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 मूल पाठ : घनानंद : काव्यालोचन
16.3.1 घनानंद का संक्षिप्त जीवन वृत्त
16.3.2 घनानंद की कृतियाँ
16.3.3 घनानंद के काव्य की विषयवस्तु
16.3.4 घनानंद के काव्य में रस परिपाक
16.3.5 घनानंद के काव्य में प्रकृति
16.3.6 घनानंद के काव्य में प्रेम की पीर
16.3.7 घनानंद के काव्य में अलंकार और बिंब
16.3.8 घनानंद की काव्यभाषा
16.3.9 रीतिकालीन कवियों में घनानंद का वैशिष्ट्य और स्थान
16.4 पाठ सार
16.5 पाठ की उपलब्धियाँ
16.6 शब्द संपदा
16.7 परीक्षार्थ प्रश्न
16.8 पठनीय पुस्तकें

16.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का मध्यकाल में काव्य की तीन धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं- भक्ति, रीति और स्वच्छंद। इनमें भक्तिकाव्य और रीतिकाव्य को मुख्य काव्यधारा स्वीकार करते हुए मध्यकाल का विभाजन क्रमशः 'पूर्व मध्यकाल' एवं 'उत्तर मध्यकाल' के रूप में कर दिया गया। रीतिकाव्य धारा के अंतर्गत स्वच्छंद काव्यधारा को भी स्थान दिया गया। इस श्रेणी के कवियों को रीतिमुक्त कहा गया। उत्तर मध्यकाल में काव्य की तीन धाराएँ विकसित हुई- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। घनानंद की स्वच्छंद काव्य वृत्ति रीतिमुक्त काव्य धारा के अंतर्गत परिगणित की जाती है। 'रीतिकाव्य की रानी बुद्धि है, भाव उसका किंकर। पर स्वच्छंद काव्य की रानी है अनुभूति। उसकी दासी है बुद्धि- रीझि सुजान सची पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी।

स्वच्छंद काव्य भाव भावित होता है, बुद्धि बोधित नहीं। इसलिए आंतरिकता उसका सर्वोपरि गुण है। आंतरिकता की इस प्रवृत्ति के कारण स्वच्छंद काव्य की सारी साधन-संपत्ति शासित रहती है और यही वह दृष्टि है जिसके द्वारा इन कर्ताओं की रचना के मूल उत्स तक पहुँचा जा सकता है' (पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)। घनानंद के साथ रसखान, आलम, बोधा, ठाकुर और द्विजदेव इत्यादि कवियों का नाम भी मध्यकालीन स्वच्छंद काव्यधारा के अंतर्गत

लिया जाता है। पर सर्वसम्मति से इन सब में घनानंद को श्रेष्ठ माना जाता है। इस श्रेष्ठता का आधार है उनकी कविता जिसकी विशेषताओं का अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे।

16.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- घनानंद का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- घनानंद के काव्य में निहित भाव एवं संवेदनाओं को समझ सकेंगे।
- उनके काव्य में निहित विरह भावना के वैशिष्ट्य से अवगत हो सकेंगे।
- घनानंद के काव्य-शिल्प की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकालीन कवियों के मध्य घनानंद के स्थान और वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।

16.3 मूल पाठ : घनानंद : काव्यालोचन

16.3.1 घनानंद का संक्षिप्त जीवन वृत्त

घनानंद का जन्म संवत 1746 के आसपास हुआ था। ये दिल्ली सल्तनत के बादशाह मुहम्मद शाह के यहाँ मीरमुंशी थे। काव्यकला की भाँति संगीत विद्या में भी ये दक्ष थे। एक बार दरबार के कुछ कुचक्र चलानेवाले सदस्यों ने बादशाह से इनकी संगीत कला की प्रशंसा कर दी। अब बादशाह ने घनानंद से संगीत सुनने की इच्छा प्रकट की। घनानंद उनकी व्यक्त की गई इच्छा पर भी स्फूर्ति न दिखाकर, उसे टालते रहे। तब दरबारियों ने बादशाह से कहा, यदि इनका संगीत सुनना है तो सुजान को बुलाया जाय। यदि वह इन्हें कहेगी तभी ये गाएँगे। सुजान एक वेश्या-स्त्री थी जिसपर कवि मुग्ध थे और उसके प्रति प्रेमासक्ति का अनुभव करते थे। सुजान को दरबार में बुलाया गया। सुजान के आने पर घनानंद ने संगीत सुनाया। जब वे संगीत सुना रहे थे तब उनकी पीठ बादशाह की ओर और मुख सुजान की ओर था। उनकी इस धृष्टता के कारण उन्हें दिल्ली से निकल जाने का फरमान बादशाह ने जारी कर दिया। जब वे दिल्ली को छोड़ कर जाने लगे तब उन्होंने सुजान से भी साथ चलने के लिए कहा पर सुजान ने इनकार कर दिया। इस घटना से इनका राग भरा मन विराग पूर्ण हो गया। दिल्ली से ये वृंदावन आ गए और वहीं निंबार्क संप्रदाय में दीक्षित भी हुए। माना जाता है कि इनकी हत्या संवत 1796 में नादिरशाह के आक्रमणकारियों ने की थी। शोध से यह भी ज्ञात हुआ है कि संवत 1798 में कवि रचना कार्य में संलग्न थे अर्थात वे जीवित थे। यह तथ्य सामने आया कि संवत 1813 में अहमदशाह अब्दाली के प्रथम आक्रमण के दौरान इनकी हत्या गंगा के किनारे फर्रुखाबाद में हुई। यह भी कहा जाता है कि बादशाह का पूर्व मीरमुंशी जानकर आक्रमणकारी सिपाही इनसे जर जर जर की अपेक्षा रखते थे। उन सिपाहियों ने इन्हें घेर कर कहा 'जर-जर-जर' प्रत्युत्तर में घनानंद ने दिया रज की तीन मुट्ठी। 'जर' का अर्थ है धन और 'रज' का अर्थ होता है धूल। यह धूल वृंदावन की थी। 'सैनिकों ने क्रोध में आकर इनका हाथ काट डाला। कहते हैं मरते समय इन्होंने अपने रक्त से यह कवित्त लिखा था- बहुत दिननि की अवधि आसपास परे,/ खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को।/ कहि कहि आवनि छबीले मन-भावन को,/ गहि गहि राखति ही दै दै सनमान को।।/ झूठी

बतियानि की पत्यानि तें उदासि ह्वै कै,/ अब ना घिरत घनआनंद निदान को।/ अधर लगै हैं आनि करि कै पयान प्रान,/ चाहत चलन ये संदेसो लै सुजान को।।' (रामचंद्र शुक्ल)

बोध प्रश्न

- 'जर-जर-जर' प्रत्युत्तर में घनानंद ने क्या दिया?
- घनानंद का संबंध किस वैष्णव संप्रदाय से है? उक्त संप्रदाय किस सिद्धांत पर आधारित है?

16.3.2 घनानंद की कृतियाँ

घनानंद की रचनाओं में दो प्रकार की संवेदनाएँ देखने को मिलती हैं। एक प्रेम संवेदना और दूसरी भक्ति संवेदना। भक्ति संवेदना की रचनाओं से अधिक साहित्यिकता इनकी प्रेम संवेदना की रचनाओं में देखने को मिलती है। इनकी प्रेम संवेदना की रचनाओं के पाठक वर्ग वे सहृदय हैं जो साहित्यिक रुचि से संपन्न हैं एवं नेह की अनुभूति के मर्म से परिचित भी हैं। इन रचनाओं का लक्ष्य भी प्रेमानुभूति की अनुभूति कराना ही रहा है। इनके भक्ति संबंधी कवित्तों का आधार शुद्ध भक्ति है और इन कवित्तों का लक्ष्य भजन-कीर्तन से जुड़ा हुआ है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अनुसार अब तक प्राप्त घनानंद की कृतियों के नाम इस प्रकार हैं- 'सुजानहित, कृपाकंदनिबंध, वियोगवेली, इश्कलता, यमुनायश, प्रीतिपावस, प्रेमपत्रिका, प्रेमसरोवर, ब्रजविलास, रसवसंत, अनुभवचंद्रिका, रंगवबाई, प्रेमपद्धति, वृषभानुपुर सुषमा, गोकुलगीत, नाममाधुरी, गिरिपूजन, विचारसार, दानघटा, भावनाप्रकाश, कृष्णकौमुदी, धामचमत्कार, प्रियाप्रसाद, वृंदावनमुद्रा, ब्रजस्वरूप, गोकुल चरित्र, प्रेमपहेली, रसनायश, गोकुलविनोद, व्रजप्रसाद, मुरलिकामोद, मनोरथमंजरी, ब्रजव्यवहार, गिरिगाथा, ब्रजवर्णन, छंदाष्टक, त्रिभंगी छंद, कवित्त संग्रह, स्फुट, पदावली, परमहंस वंशावली।' इन कृतियों में से 'छंदाष्टक, त्रिभंगी छंद, कवित्त संग्रह और स्फुट' घनानंद की फुटकल रचनाओं के संग्रह हैं। इन्हें स्वतंत्र कृतियों की कोटि में नहीं रखा जाता है। 'दानघटा' 'घनानंद कवित्त' में संकलित है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने घनानंद के जो ग्रंथ गिनाए हैं वे इस प्रकार हैं- सुजानसागर, विरह लीला, कोकसार, रसकेलिवल्ली और कृपाकांड। छतरपुर के राज पुस्तकालय में कृष्ण भक्ति से संबंधित इनका एक बृहत ग्रंथ प्राप्त हुआ है जिसके विषय हैं- प्रियाप्रसाद, ब्रजव्यवहार, वियोगवेली, कृपाकंदनिबंध, गिरिगाथा, भावना प्रकाश, गोकुलविनोद, कृष्णकौमुदी, धामचमत्कार, नाममाधुरी, वृंदावन मुद्रा, प्रेमपत्रिका, रस वसंत इत्यादि।

इससे यह प्रतीत होता है कि घनानंद की एक जैसी छोटी-छोटी रचनाओं को संकलित करके एक बृहद ग्रंथ का रूप देने का कार्य विद्वानों ने किया है। घनानंद की कृति 'विरहलीला' की भाषा ब्रज है पर इसमें फ़ारसी के छंद प्रयुक्त किए गए हैं।

बोध प्रश्न

- घनानंद की कृतियों में निहित संवेदनाएँ कौन-सी हैं?
- घनानंद की कृतियों का नामोल्लेख करें।

16.3.3 घनानंद के काव्य की विषयवस्तु

घनानंद की कविता का मुख्य विषय प्रेम है। प्रेम में ही कविता का परमोच्च विषय बनने की क्षमता है इसलिए उन्होंने कविता में प्रेम की बात प्रेम में छककर की है- 'प्रेम सदा अति ऊँची

लहै सु कहै इहि भांति की बात छकी (श्री ब्रजनाथ)।' प्रेम में संयोग का क्षण विरह के क्षणों की तुलना में नगण्य है। विरह भावना की प्रधानता इनके काव्य की प्रमुख विशिष्टता है। प्रेम-व्यवहार का पूर्ण दर्शन कराने के लिए उन्होंने प्रेम की विविध चेष्टाओं के साथ रूप-सौंदर्य का अतुलित चित्र खींचा है। इन सब में प्रकृति जगत और मानव जगत के विविध व्यवहारों से प्रेमी का जीवन और उसका प्रेम जिस तरह प्रभावित होता है; उन सभी प्रभावों का सूक्ष्म अंकन यहाँ देखने को मिलता है। प्रेम की विशद परिचर्चा के साथ नीति सिद्धांत और पौराणिक-मिथकीय संदर्भ भी छिटपुट रूप में यहाँ उपलब्ध हैं। घनानंद के प्रेमपूरित कवित्त का बखान कर सकने वालों के कुछ गुणों का बखान श्री ब्रजनाथ ने किया है। भावक के गुणों का बखान करते हुए उन्होंने उसमें यह भी जोड़ दिया कि जो गुण भावक के लिए वांछित हैं वो सारे गुण घनानंद में विद्यमान हैं। इस अर्थ को उद्घाटित करती हुई पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं- 'नेही महा ब्रजभाषा-प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कों जानै।/ जोग-बियोग की रीति मैं कोविद भावना भेद स्वरूप कों ठानै।/ चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरें-मिलें प्रीतम भांति न मानैं।/ भाषाप्रवीन, सुछंद सदा रहै, सो घन जी के कवित्त बखानै।।' (ब्रजनाथ)

प्रेममार्ग और प्रेम की अभिव्यंजना: प्रेममार्ग अत्यंत सीधा और सरल होता है। यहाँ थोड़ी भी कपट या चतुराई की आवश्यकता नहीं होती है। जो सीधे और सच्चे लोग होते हैं वही इस मार्ग पर पैर रखते हैं। प्रेम करना और एकनिष्ठ बने रहना कुटिल और कामी लोगों के वश की बात नहीं है। प्रेममार्ग साधना है। प्रेमी इसका साधक है और आलंबन प्रिय है। घनानंद की प्रेम संबंधी कविता में यह प्रिय नायक है और भक्ति संबंधी कविता में यह नायक कृष्ण है। जहाँ विरह गोपियों का है या विरहिणी राधिका का है वहां नायक कृष्ण ही है। स्वयं घनानंद अपने लौकिक प्रेम की असफलता से जिस पारलौकिक प्रेम के मार्ग पर आगे बढ़े उस प्रेम-पथ का अधिष्ठाता भी कृष्ण ही हैं। सुजान के प्रति अपनी निष्ठा और प्रेम को विराट रूप देने पर भी; उसके प्रति अपने लगाव को हमेशा महसूस करने और उसे जीवित रखने के लिए इन्होंने अपने काव्य के आलंबन कृष्ण के लिए सुजान का प्रयोग बारंबार किया है। यह कृष्ण प्रेमलीला में अत्यंत चतुर है। अपनी रूप माधुरी और अपने वंशी-वादन से इसने सारी सृष्टि को मोह रखा है पर स्वयं इस मोह में नहीं पड़ता। अपने प्रेमी का मन लेकर बदले में यह अपना जरा-सा मन भी नहीं देता। देता है तो बस आतुरता और विकलता, देखें- 'अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।/ तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झझकें कपटी जे निसांक नहीं।/ घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरौ आँक नहीं।/ तुम कौन धौं पाटी पढै हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।'

मानव के प्रेम की व्यंजना करने के लिए घनानंद ने चिरप्रचलित मीन और पतंगा वाली तुलना का खंडन किया है। मीन यानी मछली जो जल के बिना व्याकुल होकर मर जाती है और पतंगा जलते हुए आग से मिलने की चाह में उस ओर बढ़कर अपने जीवन से हाथ धो बैठता है। अपने प्रेमी से मिलन की आशा बाँधकर मीन और पतंगा विरह को गले लगाकर नहीं जीते हैं। यह केवल मनुष्य करता है। मीन और पतंगा तो क्रमशः विरह और मिलन से उत्पन्न आँच को बिना सहे तुरंत ही अपना प्राण त्यागकर इस अद्वितीय कष्ट से निजात पा लेते हैं। पर मनुष्य के रूप में प्रेमी विरह की आँच को सहता है। वह इसकी आँच में तपते हुए जीता है। प्रतिपल मरण

को सहकर जीता रहता है। यह अत्यंत कठिन है। प्रिय और प्रेमी के आदर्श के रूप में जल और मीन संबंध का उदाहरण दिया ही जाता है। प्रिय और प्रेमी की आदर्श स्थिति का बखान करते हुए घनानंद जिन संबंधों की चर्चा करते हैं, वे इस प्रकार हैं- चाँद और चकोर, स्वाती और पपीहा, त्रसरेणु और सूर्य, मछली और सागर, कुबेर और रंक। ये सभी जोड़े जिस प्रकार अपने संबंधों को निबाहते हैं उसी प्रकार प्रिय कृष्ण भी घनानंद के प्रति या विरहिणी नायिका के प्रति अपने प्रेम का निर्वाह करें। पर प्रिय के पास केवल प्रेम करने का काम नहीं होता। उसकी अपनी दिनचर्या है। मन जीत कर उसने अपना काम कर लिया अब विरह में निरंतर जलने और प्रिय की सुध करने का काम विरहिणी का है। इसीलिए वह प्रवासी बन बैठा है। न सुध लेता है अ कोई संदेश भेजता है।

प्रिय की इस विमुखता पर विरहिणी का विरहदग्ध हृदय उसे उपालंभ देता है कि यदि प्रेम संबंध तोड़ना ही था तो स्वयं आग्रह और अनुनय-विनय करके इसे जोड़ा ही क्यों था। 'कित गो ढरि गी वह ढार अहो जिहि मो तन आँखिन ढोरत है'- यहाँ उपालंभ सूचक अव्यय 'अहो' का प्रयोग कवि ने किया है। यही नहीं प्रिय के लिए प्रेमी द्वारा 'विश्वासघाती' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अब प्रिय के पास विरहिणी के लिए समय शेष नहीं है पर जब संबंध बनाना था तब घना समय था। इसी से अपने हृदय में बसा हुआ प्रिय भी उसे प्रवासी-सा लगता है। न जाने प्रेमी को विरहानुभूति कराकर प्रिय कौन-सा सुख पा रहा है!

प्रेम में प्रेमी का मन एकनिष्ठ और प्रिय के लिए विकल होता है। यह उपालंभ देना बाह्य-व्यापार भर है। अंतःकरण में बसा वह प्रेममूर्ति ही केवल सच है। इसलिए प्रेमी यह भी स्वीकार लेता है कि जो विरह वह सह रहा है, वह उसके अच्छे-बुरे कर्मों से प्राप्त उसका अपना भाग्यफल है। इसमें प्रिय का कोई दोष नहीं कि उसे अपने प्रेमी की सुध नहीं है। यह प्रेम की उच्चभूमि है जहाँ प्रिय की सकुशलता के अतिरिक्त प्रेमी कुछ भी नहीं चाहता। 'नित नीकै रहौ तुम्हें चाड़ कहा पै असीस हमारो लीजियै जू।' मेरे हिस्से में आपको याद करना और आपके हिस्से में मुझे भूल जाना आज्ञा है इसके लिए मैं आपको उलाहना कैसे दूँ। इससे हृदय की विकलता नहीं मिट जाती है। बस कुछ पल के लिए हृदय का प्रबोध हो जाता है। 'अंतर मैं बासी पै प्रवासी को सौं अंतर है,/ मेरी ना सुनत दैया आपनीयो ना कहौ।'

प्रेमी के हिस्से में विरह की वेदना का आना या उसके भाग्यफल के अनुरूप उसका विरह सहना- यह सब कौन करता है? यह सब कवि ने ब्रह्मा के जिम्मे कर दिया। 'पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौं आन घरि मैं बिरंचि बनाई।' अर्थात ब्रह्मा ने न जाने किस घड़ी में पाप-पुंजों को जमा करके इन आँखों को बनाया है जो प्रिय के रूप पर रीझे हुए तो है पर इनके नसीब में प्रिय का दर्शन करना नहीं लिखा है। बिना पंख के पक्षी वाली अकुलाहट ही प्रेमी के हिस्से में है। पुनः इसी भाव का दूसरा उदाहरण देखें- 'हाय कौन बेदनि बिरंचि मेरे बाँट कीनी।' विधि ने कौन-सी वेदना मेरे हिस्से में दी है। विरहिणी का कंठ अवरुद्ध है, जीभ अशक्त है, शरीर सोच ग्रसित होकर ठंडा है और अचंभा पूरे शरीर को जला रहा है पर उसे मृत्यु नहीं आती। प्रेम की अभिव्यंजना में विरह की चरम दशा का वर्णन बार-बार हुआ है। मंत्र जो लोकविश्वास का अहं हिस्सा है, उसका दृष्टांत लेते हुए कवि कहते हैं, 'पूरन प्रेम को मंत्र महा पन जा मधि सोधि

सुधारि है लेख्यो'। प्रेमिका का हृदय प्रेमपत्र है जिसपर अपने प्रिय का ही सुंदर चरित्र लिखा हुआ है पर उस ओर प्रिय का ध्यान ही नहीं है। प्रिय ने उसके टुकड़े कर दिए। प्रेममंत्र सही-सही लिखकर उचित निवेदन किया गया फिर भी निष्फल हो गया। जबकि मंत्र तभी निष्फल होते हैं जब उनके उच्चारण में त्रुटि हो। इस तरह विषम परिस्थितियों के चित्रण से प्रेम और विरह के व्यंजना की तीव्रता बढ़ी ही है। आंगिक कांति एवं प्रेम चेष्टा के लिए 'अनंग' का प्रयोग करते हुए कवि ने यहाँ तक कह दिया है कि काम का शिव के तीसरे नेत्र से भस्म होना झूठ ही प्रतीत होता है। यह तो जीवित है और विरह में बिछोहियों को जला रहा है।

रूप वर्णन : प्रेम का आलंबन रूप और गुण है। रीति कविता के अंतर्गत घनानंद स्वच्छंद धारा के कवि हैं। रीति कविता में प्रेमिका के रूप वर्णन का कार्य सखी द्वारा किया जाता है पर घनानंद कवित्त में नायक प्रेमिका के रूप का वर्णन करता है। प्रेमोन्माद के क्षणों में अनंग के समान उज्ज्वल कांति वाली इस नायिका की दशा प्रेतबाधित-सी हो जाती है। सुजान के रूप-गुण का भी सुंदर चित्र कवि ने उपस्थित किया है। विरह के क्षणों में स्मृति दशा में मुरली-मनोहर का स्वरूप जो मन में आता है वही यहाँ लेखनीबद्ध है। वनमाला धारण कर वंशीवादन करते हुए मधुर मुस्कान से सबको वश में कर लेने वाले कृष्ण पर नायिका के तिरछे चितवन का कोई प्रभाव नहीं दिखाई दे रहा।

विरह और भक्ति की दशा में साम्यता : विरह की दशा में प्रिय हृदय में रहते हुए भी अपने प्रेमी के हितार्थ कुछ भी नहीं करता है। भक्ति की दशा भी ऐसी ही होती है। भगवान भक्त के हृदय में रहता है पर भक्त उसे बाहर ढूंढता है और उन्हें प्रत्यक्ष न पाकर व्याकुल होता है। भक्त प्रेमी की ही भांति भक्ति में सुध-बुध खोए रहता है। अपने पृथक अस्तित्व से न प्रेमी सुखी है और न भक्त। प्रेमी को प्रिय का साथ चाहिए और भक्त को भगवान का साथ चाहिए। यह वांछित साथ जो अप्राप्य है उसकी अप्राप्ति से किसीका क्या लाभ है? ब्रह्म ने जीव को क्यों पृथक किया और प्रिय प्रेमी से विलग होकर क्यों उसे विरहाग्नि में जला रहा है?

नीति सिद्धांत : यह संसार द्वंद्वात्मक है। दो एक से दीखने वाले पदार्थ अपने गुणों के माध्यम से एक-दूसरे से अपनी पृथकता साबित करते हैं, जैसे- दूध और मट्ठा, कौआ और कोयल, हंस और बगुला, रांगा और चाँदी, चंदन और पलाश। घनानंद कहते हैं कि जो गुण-दोषों का विचार नहीं करते, जो पंडित-मूर्ख का भेद नहीं समझते, जो आचरण की सरलता और कुटिलता को नहीं भाँप पाते, जो प्रेम और नियम का विचार नहीं करते तथा जो बिना सोच-विचार के किसी के संदर्भ में कुछ भी कह देने के अभ्यस्त हों ऐसे मनुष्यों के पास पल भर भी ठहरना उचित नहीं है। ऊपरी रंग और व्यवहार की समानता को देखकर लिया गया कोई भी निर्णय सही नहीं हो सकता। किसी भी विषय, वस्तु, स्थिति या मनुष्य के संदर्भ में कुछ कहने या करने से पूर्व आंतरिक स्तर पर उचित जाँच आवश्यक है। यह स्वाभाविक है कि जाँच के अभाव में दूध और मट्ठा, कौआ और कोयल, हंस और बगुला, रांगा और चाँदी, चंदन और पलाश इत्यादि एक जैसे लगेंगे। ये सभी पदार्थ बाह्य स्वरूप में साम्यता रखते हैं परंतु गुण की दृष्टि से इनमें भेद है। कौआ और कोयल का भेद उनकी वाणी से स्पष्ट होता है। हंस में नीर-क्षीर विवेक होता है पर बगुला में यह विवेक नहीं होता है। चंदन में सुगंध होता है और पलाश निर्गंध। चाँदी और रांगा दोनों धातु

हैं पर चाँदी मँहगी होती है। इसी प्रकार साधारण काँच और मणि में भेद होता है। गुण-दोष को परखने के लिए सामान्य विवेक की जरूरत होती है। जिनके पास यह भी नहीं है उन्हें अपने स्वप्न में देखना भी श्रेयष्कर नहीं है, प्रत्यक्ष संग का तो सवाल ही नहीं उठता। इस संदर्भ में घनानंद की कविता देखें- मही दूध सम गनै हंस-बक भेद न जानै।/ कोकिल-काक न ज्ञान काँच मणि एक प्रमानै।/ चंदन-ढाक समान रांगु रूपौ सम तौले।/ बिन-बिबेक गुन दोष मूढ़ कवि ब्यौरि न बोलै।/ प्रेम-नेम हित चतुरई, जे न बिचारत नेकु मन।/ सपनेहूँ न बिलबिये छिन-तिन ढिग आनंदघन। (छप्पय)

बोध प्रश्न

- घनानंद के काव्य का मुख्य वर्ण्य विषय क्या है?

16.3.4 घनानंद के काव्य में रस परिपाक

भाव योजना का ही दूसरा नाम रस योजना है। घनानंद ने अपनी कविता में संयोग और वियोग के साथ अन्य कई भावों को गृहीत किया है जिससे संयोग और वियोग की व्यंजना स्पष्ट और प्रभावी हो। मुख्य रूप से उन्होंने वियोग की अंतरदशाओं पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। मिलन की सुखद अनुभूति के क्षणों के हाव-भाव और हास-विलास के चित्रण में संयोग शृंगार की प्रमुख भूमिका रहती है। अपने जीवन में घनानंद का प्रेम एकतरफा ही रहा है। उनके काव्य में भी इसी की व्यंजना हुई है। अपने प्रिय की उपेक्षाओं से कचोटते हृदय की वाणी को अपनी काव्य-प्रतिभा से घनानंद ने उजागर किया है। उनकी कविता विप्रलंभ (वियोग) शृंगार की कविता है और यही उनके काव्य की विलक्षणता का आधार भी है। यहाँ वियोग शृंगार के माध्यम से प्रेमी की अंतर्वृत्ति का निरूपण किया गया है। पूर्वराग, प्रवास, मान और करुण विप्रलंभ शृंगार की ये चार अवस्थाएँ कविता में रस परिपाक को पुष्ट कर रही हैं।

मिलने की उत्कट अभिलाषा और न मिल पाने के कारण होनेवाली बेचैनी को पूर्वराग कहते हैं। यह विप्रलंभ शृंगार की पहली अवस्था है। किसी के रूप और गुण पर रीझकर उसके प्रति आसक्ति हो जाना और बार-बार उससे मिलने की इच्छा करना तथा चेष्टा की निष्फलता में बेचैन हो जाना पूर्वराग है। महामोह की दशा में प्रिय के दर्शन होने और दर्शन न होने-इन दोनों ही स्थितियों में प्रेमी की मानसिक स्थिति एक जैसी रहती है। कारण कि वियोग में संयोग की इच्छा होती है और संयोग काल में विरह हो जाने का खटका लगा रहता है। देखें-'मोहन अनूप रूप सुंदर सुजान जू को/ तोहि चाहि मन मोहि दसा महामोह की।/ अनोखी हिलग दैया बिछुरै तो मिल्यो चाहे/ मिलेहू मैं मारै जारै खरक बिछोह की।'

प्रिय के दर्शन में विघ्न पड़ने से जो बेचैनी प्रेमी के हृदय में उत्पन्न होती है उसका चित्रण करते हुए कवि कहते हैं, 'घनआनंद घूंघट ओट भए तब बाबरें लौं चहुँ ओर तकैं।' कभी खिलता हुआ कमल का फूल तो कभी चंद्रमा की भांति तेजोदीप्त प्रिय के सुंदर मुख का पान प्रेमी क्रमशः भौंरा और चकोर बन कर करता है। प्रेमी अपने प्रिय के सौंदर्य पर मुग्ध होकर अपना मन हार बैठता है। उसकी यह मुग्धता प्रिय के घूंघट के ओट हो जाने से उसे बाबरा बना देती है। रूप दर्शन की उसकी इच्छा अतृप्त रह जाती है। इस अतृप्ति से प्रेमी का मन बेचैन और व्याकुल हो

जाता है। हृदय की यह शांत न होनेवाली बेचैनी मनुष्य के मुग्ध भाव द्वारा उसकी बुद्धि को दबा देने के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। यानी मनोवृत्ति मुखर हो जाती है और विवेक जड़ बन जाता है।

विप्रलंभ शृंगार की दूसरी अवस्था है 'मान'। इसके तहत ईर्ष्या या उपेक्षा के कारण प्रेमी युगल परस्पर रूठ जाते हैं जिससे मान और मनुहार की स्थिति उत्पन्न होती है। घनानंद के काव्य में प्रेमी अपने प्रिय की उसके प्रति की गई उपेक्षाओं को लगातार सहता है पर प्रिय से मनुहार किए जाने की आशा नहीं रखता है। उसे प्रिय का कोई संदेश मिल जाए या उसे प्रिय के दर्शन हो जाएँ, यही उसका अभीष्ट है।

'प्रवास' में वियोग की यह पीड़ा और बलवती होती है। प्रवास विप्रलंभ शृंगार की तीसरी अवस्था है। इसमें प्रिय का परदेश-गमन होता है और वह वहीं अपने प्रेमी की इच्छा की परवाह किए बिना अधिक दिनों तक रह जाता है। या कहें प्रिय के आगमन की कोई तिथि या अवधि शेष नहीं रहती है। फिर भी प्रेमी उसकी बाट जोहता रहता है। और प्रेमी के इस आचरण पर सामान्य लोग प्रश्न चिन्ह लगाते हैं कि जिस ओर से कोई आता ही नहीं उधर लगातार ताकते रहने का क्या औचित्य है? प्रेमी अपने प्रवासी प्रिय से इस प्रश्न का उत्तर भर चाहता है। प्रिय को विरहातुर प्रेमी से मिलने आने की भी आवश्यकता नहीं है बस दूर से ही वह इस प्रश्न का उत्तर दे दें। 'यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ ऊतर कौन कहौं।/ जिय नेकु बिचारि कै देहु बताय हहा पिय दुरि तें पाय गहौं।' प्रिय बस दूर से उसके प्रति प्रेमी के प्रेम का वह उत्तर जो समाज को बताया जा सके वह अच्छे से विचार करके बता दे। उसे आने की आवश्यकता नहीं। इस विरह को प्रेमी ने खुद गले लगाया है। वह इसके ही साथ रहना चाहता है। उसे अपनी स्थिति नहीं बदलनी। पर लोगों को वह क्या कहे? इस निष्ठुर से उसे प्रेम क्यों है? प्रिय की इच्छा प्रेमी के लिए सर्वोपरि है। वह प्रवास से नहीं लौटना चाहता तो न लौटे। वह अपने विरही प्रेमी की सुध नहीं लेना चाहता तो न ले। पर इस सबसे उसके प्रेमी का प्रेम उसके प्रति कम न होगा। उसका समर्पण कम न होगा। विरह की ज्वाला की ताप वह सहता रहेगा और अपने हृदय में प्रिय की मनोहर मूर्ति को संजोएँ रहेगा। यह भी अत्यंत करुण स्थिति है पर विरही का हर्ष इसी में है। मृत्यु के बाद भी प्रिय के आने की आशा का बना रहना- विप्रलंभ शृंगार की चौथी अवस्था है जिसे करुण अवस्था कहते हैं। घनानंद के काव्य में प्रेमी की प्रिय के लौट आने की आशा इतनी बलवती है कि मृत्यु सारहीन हो गई है। कहने का अर्थ है कि तमाम विरोधी परिस्थितियों के मध्य प्रेमी जीता हुआ प्रिय की बाट जोहता है।

बोध प्रश्न

- क्या घनानंद के काव्य में विप्रलंभ शृंगार की चारों अवस्थाओं की व्यंजना की गई है?

16.3.5 घनानंद के काव्य में प्रकृति

प्रकृति रम्य हो या भयावह; संयोग के समय में यह सुहावनी ही लगती है। पर विरह की अवस्था में इसकी रम्यता भी बड़ी डरावनी और प्राणघातक-सी लगती है। अकेले में रात्रि काली नागिन-सी भयंकर विषवाली और विकराल लगती है। रात के चाँद से निकलती चाँदनी जो प्रिय के संग असीम सुख देती है वही विरह के क्षणों में सुहाती नहीं है। चंदन जिसकी शीतलता

जगप्रचलित है विरह में वह भी दाहक बन जाता है। पपीहे का पी-पी टेरना कलेजा कचोटता है। विरहकाल में प्रेमी के लिए प्रकृति भी अपनी चाल उलट लेती है। सादृश्यमूलक अलंकारों के द्वारा घनानंद ने प्रकृति और विरह की साम्यता बिठाते हुए जो चित्र उपस्थित किया है, वह इस प्रकार है- विरह सूर्य है। यह शरीर आसमान है। छाती बिजली है। हृदय सागर है। आँखें बादल हैं जिनसे आँसू रूपी वर्षा के बूँदों की झड़ी लगी हुई है। आँखों के लगातार बरसते रहने से उस प्रेमी को इतनी भी फुरसत नही है कि वह प्रिय को एक पत्र भी लिख सके। विरह को जीनेवाला प्राणी बाहर से सदा सावन का अनुभव करता है और भीतर से घनी उष्णता उसे तपाती रहती है। इस विरोधाभास को सहते हुए भी प्रेमी के दहकते मन में प्रिय के प्रति स्थायी घृणा या उपेक्षा का भाव कभी जन्म नही लेता है। प्रिय के बिना होली का रंगमय त्यौहार भी बदरंग हो जाता है। सोंधे की वास उसासहि रोकति चंदन दाहक गाहक जी को।/ नैनन वैरी सी है गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही को।/ राग विराग धमार त्यों धार सी लौटी परयो ढंग यौं सबही को।
रंग रचावन जान बिना घनआनंद लागत फागुन फीको।

बोध प्रश्न

- घनानंद काव्य में अभिव्यक्त प्रकृति के स्वरूप को संयोग और वियोग के साहचर्य में स्पष्ट कीजिए।

16.3.6 घनानंद के काव्य में प्रेम की पीर

भारतीय साहित्य में प्रेम की संवेदना जयदेव और विद्यापति में भी थी परंतु इसे वहां से परंपरागत रूप से ग्रहण नहीं किया गया। मध्यकाल में फारसी साहित्य और सूफी साधना का भारतीय साहित्य पर जो प्रभाव पड़ा उससे इस प्रेम संवेदना को 'प्रेम की पीर' के रूप में ग्रहण किया गया। घनानंद ने इस 'प्रेम की पीर' का आलंबन सगुण ब्रह्म को बनाया। सगुण के समावेश से यह रहस्यात्मकता प्रधान होने से बच गई पर रहस्यात्मकता की झलक यहाँ भी मिलती है। इनकी कविता को वही समझ सकता है जिसने अपने हृदय रूपी आँखों से स्नेह की पीर को महसूस किया हो- 'समुझै कविता घनआनंद को, हिय आँखिन नेह की पीर तकी'। घनानंद का लौकिक प्रेम सुजान से था जो सुजान की ओर से अस्वीकृत रहा। उस अस्वीकरण से उत्पन्न पीड़ा को कवि ने सहा और परलौकिक प्रेम की ओर उन्मुख हुए। इस प्रेम में भी भक्त की स्थिति विरही की ही तरह होती है। वह जिससे प्रेम करता है वह हर ओर उपस्थित है पर अपने प्रेमी को अपना प्रत्यक्ष नहीं कराता। प्रिय के इस कौतुक से जो वेदना प्रेमी के हृदय में उठती है वही 'प्रेम की पीर' है जिसका संबंध सूफी साधना में इश्कहकीकी और इश्कमजाजी से जोड़ा जाता है। 'तोहि तौ खेल पै मो हिय सेल सो ए रे अमोही बिछोह महादुख।/ जाहि जु लागै सु ताहि सहैगो पै क्यौं न परयौ लहि तू तो सदा सुख।/ एक ही टेक न दूसरी जानति जीवन प्रान सुजान लियें रुख।/ ऐसी सुहाय तो मेरी कहा बस, देखिहौं पीठ दुरायहौ जौ मुख।'

उपर्युक्त पंक्तियों में विरह वेदना की चरम अनुभूति को प्राप्त विरहणी की मनोवृत्ति का वर्णन किया गया है। उसकी मनोवृत्ति कुछ इस प्रकार की हो जाती है कि अपनी ओर से अपने प्रिय का फेरा हुआ मुख देखकर भी वह न विह्वल होती है, न चिढ़ती है, न ही क्रोधित होती है! उसके लिए उसके प्रिय की विमुखता और सुमुखता की स्थिति एक-सी है। यह प्रेम की पराकाष्ठा

है कि विमुखता सारहीन और अस्तित्वहीन प्रतीत हो रहा है। इसमें प्रेम की प्रगाढ़ता शामिल है कि मुँह फेरा हुआ प्रिय भी अपनी ओर निहारता हुआ जान पड़ रहा है। विरह-वेदना की यह चरम स्थिति कोई सच्चा विरह-साधक ही पा सकता है। सच्चा विरह-साधक यानी सच्चा प्रेमी, जो स्थिर चित्त से अपने प्रिय के भाव में मग्न है और सदा उसे अपनी ओर रुख किए ही जानता है। प्रेमी प्रिय के बिना वियोग की स्थिति में है साथ ही उसका प्रिय 'अमोही' है। यहाँ वियोग की स्थिति के साथ अमोह का जुड़ा होना महादुख की स्थिति उत्पन्न कर रहा है। इसीलिए जो प्रिय के लिए मनोरंजन-सा है वही विरहिणी के लिए बरछी-सा चुभानेवाला है। प्रेम की पीर की व्यंजना के लिए घनानंद ने 'एकालाप' का भी प्रयोग किया है, देखें- 'प्रान मरेंगे भरेंगे बिथा पै अमोही सो काहू को मोह न लागौ।'/ 'क्यौंहूँ न चैन परै दिनरैन सु पैंडे परयो विरहा बजमारो।/ ज्यौं बहरै न कहू छन एक हू चाहे सुजान सजीवन प्यारो।/ ऐसी बढ़ी घनआनंद वेदनि दैया उपाय ते आवै तैंवारो।/ हौं हौं भरौं अकेली कहौं कौन सों जा बिधि होत है साँझ-सबारो।

एक विरहिणी अपनी व्यथा अपना पीर भी किससे कहे? इस अमोही से प्रेम करके वह पछता रही है और चाहती है कि अब कोई इस प्रेम की पीर के पचड़े में ना पड़े। किसी को अमोही से मोह न हो। भक्ति के क्षेत्र में यह पीर यथेष्ट है। भक्त जानता है उसका ब्रह्म उसके भीतर अवस्थित है पर वह सम्मुख नहीं आता। इस पीर को भोगने में भक्त हर्षित होता है। प्रेमी इस पीर को इसलिए सहता है कि कभी-न-कभी प्रिय का आगमन अवश्य होगा। महाभाव में मिलने की चाह ही प्रेम की पीर है फिर चाहे वह लौकिक हो या पारलौकिक। सारा प्रेम राधा-कृष्ण का नेह है चाहे उसकी भूमि सुखभूमि (आकाश) हो या दुःखभूमि (पृथ्वी)।

बोध प्रश्न

- प्रेम की पीर से आप क्या समझते हैं?

16.3.7 घनानंद के काव्य में अलंकार और बिंब

काव्य के सौंदर्य की अभिवृद्धि हेतु अलंकार का काव्य में प्रयोग किया जाता है। घनानंद के काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही अलंकारों का प्रयोग किया गया है। यहाँ अनुप्रास, यमक और रूपक का आधिक्य है। उदाहरण : 'जान के रूप लुभाय कै नैननि बेंचि करि अधबीच ही औंडी' - इस पंक्ति में 'नैननि' दलाल का रूपक है। 'रूप' का प्रयोग दो अर्थों में किया गया है- 'रूप' और 'द्रव्य' इसीसे यहाँ श्लेष अलंकार है। 'क्यों करि थाह लहै घनआनंद चाह-नदी तट ही अति औंडी- इस पंक्ति में 'चाह' का रूपक नदी से दिया गया है 'घनानंद' शब्द में श्लेष अलंकार है। इसी प्रकार चातक आँख और प्रेमी के लिए चातक का और प्रेमी वृत्ति के लिए चातक वृत्ति का प्रयोग किया गया है। विरह वेदना की तीव्रता को व्यंजित करने के लिए विरोधाभास का अनूठा प्रयोग कवि ने किया है। उदाहरण: 'झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित कचाई पाक्यौ।' प्रिय का हस्तलिखित पत्र संदेशवाहक द्वारा प्रेमी को मिलता है तब उसे अचरज होता है। वह पूरा सच जानना चाहती है कि उस निर्दयी प्रिय को उसकी सुध कैसे आई? वास्तव में उसकी सारी सच्चाई उसका झूठ ही है और वह प्रेम करने में बिलकुल कच्चा है पर आज वह पत्र लिखकर सुध ले रहा है- ये दोनों स्थितियां परस्पर विरोधी हैं। ऐसी कई प्रभावोत्पादक विरोधी स्थितियों का चित्रण कवि ने किया है। रामचंद्र शुक्ल इसे 'विरोधमूलक वैचित्र्य' की संज्ञा देते हैं। इनके अनुसार

वर्तमान समय में अभिव्यंजनावाद के जरिए जो लाक्षणिक प्रयोग और प्रयोग वैचित्र्य साहित्य में विदेशी प्रभाव से उपस्थित किए जा रहे हैं; वे सब घनानंद की कविता में पहले से ही उपस्थित हैं।

घनानंद कवित्त में प्रयुक्त अलंकारों के उदाहरण निम्नवत हैं -

उत्प्रेक्षा : अँग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनो रूप धरै अब चचै।

मानवीकरण : मोहन-सोंहन जोंहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।

विशेषोक्ति : हाय दई! न विसासी सुनै कछु है जग बाजति नेह की डोंडी।

अनुप्रास : चोप चाह चावनि चकोर भयौ चाहत ही।

यमक : 'तब हार पहार से लागत है अब आनि के बीच पहाड़ परे।

'प्रस्तुत' का वर्णन करने के लिए अप्रस्तुत का सहारा लेकर लक्ष्यार्थ को इंद्रियगम्य बनाने की कला बिंब-विधान कही जाती है। कविता में जिसका वर्णन किया जाता है वह 'प्रस्तुत' है। घनानंद के कवित्त में मुख्य रूप से भाव बिंब और चाक्षुष बिंब ही प्रयोग में लाए गए हैं। कहीं-कहीं श्रव्य, स्पर्श एवं आस्वाद्य बिंबों की भी झलक मिलती है। न केवल बाह्यवृत्ति या वर्ण सौंदर्य ही वरन इनके बिंब विधान में आंतरिकता का चित्र भी मन में उभर उठता है। विरहिणी की अंतरदशा के चित्रण से जो बिंब उपस्थित होता है वह भावक को अत्यंत करुण स्थिति में ला देता है।

घनानंद कवित्त में प्रयुक्त बिंबों के कुछ उदाहरण निम्नवत हैं-

चाक्षुष बिंब : लाजनि लपेटि चितवनि भेद-भाय-भरी, लसति ललित लोल चख तिरछानी मैं।
छवि को सदन गोरो भाल बदन, रुचिर, रस निचुरत मीठी मृदु मुसुक्यानि मैं।
दसन दमक फैली हमें मोती माल होति, पिय सों लड़कि पेम-पगी बतरानी मैं।
आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल, अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि मैं।

श्रव्य बिंब- बजावनि ललित बैन, पपीहा पुकार तें क्यों अरसैयो

स्पर्श बिंब - जु वियोग के तेह तचे परतंतर

यहाँ तेह अति विरह जनित तीखापन या विरह की तेज आँच से तप कर पायी गई परिपक्वता का द्योतक है। इसका अर्थ तीखापन करने से यहाँ आस्वाद्य बिंब होगा और यदि इसका अर्थ विरह की तेज आँच किया जाय तो यह स्पर्श बिंब का उदाहरण होगा।

16.3.8 घनानंद की काव्यभाषा

घनानंद की काव्यभाषा सरस, सरल, आद्यांत लयात्मक, प्रांजल, लाक्षणिक, व्यंजनापूर्ण और चित्रात्मक ब्रजभाषा है। यमक और अंत्यानुप्रास अलंकार के प्रयोग से इसमें नाद ध्वनि भी पर्याप्त है। विषम शब्द साधना से प्रेम की अनिर्वचनीयता का बखान करनेवाले कवि की भाषिक विशिष्टता पर अपना मत प्रकट करते हुए रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, "भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़ कर ऐसी वशवर्त्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भावभंगिमा के साथ-साथ जिस रूप में चाहते थे उस रूप में मोड़ सकते थे। इनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से अधिक बलवती दिखाई पड़ी। जब आवश्यकता होती थी तब ये

उसे बंधी प्रणाली से हटा कर अपनी नई प्रणाली पर ले जाते थे। भाषा की पूर्व अर्जित शक्ति से काम न चला कर इन्होंने उसे अपनी ओर से शक्ति प्रदान की है। घनानंद जी उन विरले कवियों में हैं जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रूप-रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करनेवाला हिंदी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ है। भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।" घनानंद के प्रयोग वैचित्र्य के कुछ उदाहरण भी उन्होंने अपने इतिहास ग्रंथ में दिया है जो निम्नवत हैं-

प्रयोग वैचित्र्य: क) अरसानि गई वह वानि कछू, सरसानि सो आनि निहोरत है।
ख) ह्वै ह्वै सोऊ घरी भाग-उघरी आनंदघन सुरस बरसि, लाल!
ग) उघरो जग, छाय रहे घन-आनंद, चातक ज्यौं तकिए अब तौ।

वक्रोक्ति योजना : अपनी विषम शब्द साधना द्वारा प्रेम की अनिर्वचनीयता और प्रेम की विषम परिस्थिति का चित्रण करते हुए इनकी वाणी की विशिष्ट भंगिमा के दर्शन होते हैं। कवि का यह प्रयोग विरोध वैचित्र्य के नाम से जाना जाता है। भाव योजना के निरूपण एवं विविध दशाओं के वर्णन में भी कवि की भाषिक कला की दक्षता स्वतः प्रमाणित होती है। उदाहरण:

विरोध वैचित्र्य : ' सुधा तें स्रवत विष, फूल मैं जमत सूल,
तम उगिलत चंद, भई नई रीति है।
जल जारै अंग और राग करै सुरभंग
संपति, विपति पारै, बड़ी विपरीति है।
महागुण गहै दोषै, औषद हू रोग पोषै
ऐसे जान रस माहिं बिरस अनीति है।'

भाव योजना : संकोच का भाव- 'इते पे नवेली लाज अरस्यो करै जू, प्यार
मन फगुवा दै गारी हू को तरस्यौ करै।'

स्मृति दशा : जिन आँखिन रूप-चिन्हारि भई तिनको नित नींद ही जागनि है।
हित-पीर सौं पूरित जो हियरा फिरि ताहि कहौ कहाँ लागनि है।

मुहावरा:

1. मीठे मीठे बोल बोलि ठगी पहिलें तौ तब
   अब धौं जिय जारत कहौं धौं कौन न्याय है।
2. अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै। पीठ देना
3. दंत रहैं गहैं आँगुरी ते जु वियोग के तेह तचे परतंतर। दांतों तले अँगुली दबाना, विरह वेदना की आंच में तपकर

सूक्ति प्रयोग:

1. 'काहू कलपायहै सु कैसें कल पायहै'- जो किसी को कलपाता है उसे भी चैन नहीं मिलता है। प्रेमिका द्वारा प्रेमी को भेजे गए पत्र या संदेश में इसे प्रयोग किया गया है।
2. घनआनंद मीत सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।/ तब हार पहार से लागत है अब आनि कै बीच पहार परे।। - संयोग के क्षणों में हार पहार की तरह लग रहे थे और अब प्रवास के दिनों में पहार ही बीच में आ गया है।

3. रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस, बिसास मैं यौं बिस घोरियै जी।- जो मर रहा है उसे पहले रस पिलाकर जिलाना और जिलाकर फिर विष देना ठीक नहीं है।
4. तिन्हैं यों सिराति छाती तोहि वै लगति ताती, तेरे बाँटे आयो है अंगारनि पै लोटिबो। - दूसरों को आहत करने में उनकी छाती ठंडी होती है और तुम्हें तप्त करती है। तेरे (प्रेमी) भाग्य में तो अंगारों पर लोटना ही लिखा/ वदा है।
5. जाहि जो भजै सो ताहि तजै घनआनंद क्यों, हति कै हितूनि कहौ काहू पाई पति रे। - ऐसा कहीं नहीं देखा गया है कि जो किसी को भजता है उसे ही भजा जानेवाला छोड़ दे। ऐ आनंद घन अपने हितुओं को मारकर किसी की प्रतिष्ठा रही है।

मुहावरों और सूक्तियों के प्रयोग से भाषा की अभिव्यंजना शक्ति बढ़ी है। माधुर्य गुण की प्रधानता घनानंद कवित्त की भाषा में बनी हुई है। हहा, दैया, अमोही, ए रे इत्यादि शब्द-प्रयोग विरह व्यंजना में सहायक बने हैं।

बोध प्रश्न

- घनानंद काव्य-भाषा के कुछ उदाहरण बताइए।

16.3.9 रीतिकालीन कवियों में घनानंद का वैशिष्ट्य और स्थान

घनानंद रीतिकालीन कवियों में ही नहीं वरन पूरे हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनकी विशिष्टता का आधार है इनकी कविता में निहित साहित्यिकता। भाव और कला दोनों ही दृष्टि से इनका साहित्य उत्तम है। अपने साहित्य के संदर्भ में स्वयं घनानंद की उक्ति है ‘लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत’। इनकी कविता में भाव पक्ष की प्रधानता है। विभाव पक्ष का चित्रण कम है। रूप का वर्णन करते हुए भी रूपासक्त पर पड़नेवाले रूप के प्रभाव का ही चित्रण किया गया है। मुख्य रूप से इन्होंने अंतर्वृत्ति का ही निरूपण किया है। बाह्य चेष्टाओं का निरूपण अत्यल्प है। होली के उमंग और नायक-नायिका मिलन में ये चेष्टाएँ अगर दिखाई भी देती हैं तो क्षण भर के उपरांत ही उस पर आंतरिक उल्लास का उद्रेक हो जाता है। भावों के स्वरूप का पूर्ण परिचय घनानंद की वाणी में निहित है। प्रिय के प्रति अपनी दशा निरूपण के लिए या प्रेमी की सुध लेने के लिए पत्र और संदेश का प्रयोग अपने कवित्तों में इन्होंने नाम मात्र के लिए ही किया है। वे काव्य रुढ़ियों का प्रयोग शास्त्रीय नियमों के अनुरूप न कर के स्वच्छंद रूप से करते हैं। शास्त्रीय रूढ़ि के अनुरूप कोयल वसंत ऋतु में कूकती है पर स्वच्छंद कविता में इसकी बोली अनुभव के अनुरूप सुनाई देती है। इसमें ऋतु विशेष का ध्यान नहीं रखा जाता। पर घनानंद की कविता में कोयल वर्षा ऋतु में भी कूकती है। रीतिबद्ध काव्य में नायिका का रूप वर्णन सखी द्वारा किया जाता है जबकि स्वच्छंद काव्य में यह कार्य नायक के द्वारा किया जाता है।

घनानंद के काव्य पर विद्वानों की आलोचनात्मक टिप्पणियाँ

- भारतीय साहित्य में सबसे विशेष प्रकार का गुण यह है कि यह किसी अन्य साहित्य के स्वकीय प्रभाव को ग्रहण करते हुए भी अपने गुण का लोप नहीं करता।...घनानंद इस विशेषता से परिचित थे। इसी से उन्होंने भारतीय साहित्य प्रवाह में अपनी शक्ति द्वारा विदेशी प्रवाह को मिला दिया है। ऐसा करना सरल कार्य नहीं है। ...घनानंद ने काव्य प्रवाह

का ऐसा मेल किया है कि सहसा मेल की प्रतीति हो ही नहीं सकती। उनका सबसे बड़ा प्रयास यही है। ...घनानंद की रचना में फारसी या अरबी के शब्दों का प्रयोग नहीं है। हिंदी के मध्यकाल में फ़ारसी के साहित्य प्रवाह द्वारा अनेक कवि बहे, उन्होंने पड़े प्रभाव को अंतर्लीन नहीं किया।...फ़ारसी भाषा मुहावरों पर सर्वाधिक केंद्रित रहती है। वहाँ मुहावरों के आधार पर ही काव्योक्तियाँ खड़ी हो जाती है। उर्दू ने उसकी इस विशेषता को भरपूर धारण किया। घनानंद ने मुहावरों के प्रयोग की पद्धति भर फ़ारसी से ली, पर मुहावरे हिंदी के ही प्रयुक्त किए।...ये ब्रजभाषा प्रवीण थे। **(चंद्रशेखर मिश्र)**

- फारसी में प्रेम का वैषम्य और उस वैषम्य को व्यक्त होनेवाले जुगुप्साव्यंजक धर्मव्यापार का भी ग्रहण होता है। भारतीय काव्यशास्त्र भी जुगुप्साव्यंजक स्थिति का संयोग में निषेध करता है, पर वियोग में नहीं। फिर भी भारतीय परंपरा ने वियोग में जुगुप्साव्यंजक स्थितियों का उल्लेख करने का अभ्यास नहीं डाला। घनानंद ने शास्त्र की चिंता नहीं की, परंपरा का ध्यान रखा और वियोगप्रधान रचना करते हुए भी जुगुप्साव्यंजक स्थितियों का विनियोग नहीं किया। **(चंद्रशेखर मिश्र)**
- घनानंद में भारतीय आशावाद सुरक्षित है।...इन्होंने अपनी रचना में रहस्यात्मक संकेत यथास्थान दिए हैं, किंतु प्रेम के आलंबन के रूप में हिंदी साहित्यप्रवाह के अनुकूल राधाकृष्ण को ही लिया है। निर्गुण को न लेकर सगुण को ग्रहण करने से रहस्यात्मकता की वैसी स्थिति कहीं नहीं है जैसी हिंदी के ही अन्य प्रमुख सूफी कवियों में पाई जाती है। **(चंद्रशेखर मिश्र)**
- जग की कविताई के धोखें रहैं, ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी- **(श्री ब्रजनाथ (घनानंद की प्रेम संवेदना से संबंधित कविताओं के संग्रहकर्त्ता))**
- घनानंद की भाषा शुद्ध ब्रजी है, वे 'ब्रजभाषा प्रवीण' हैं। उनकी भाषा में पूर्वी प्रयोग एकदम नहीं है या एकाध भी है।... 'है' के लिए 'आहि' का प्रयोग घनानंद में भी मिलता है। **(पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)**
- कविता में लगकर उसका निर्माण करनेवाले रीतिवेत्ता ही थे और 'जग की कविता' साहित्य-संसार में बहुप्रचलित रचना उस समय रीतिकविता ही थी। पर घनानंद की रचना में कुछ ऐसी विशेषता थी कि उसकी सूक्ष्मता सबके लिए सुलभ नहीं थी। काव्यमार्ग के प्रवीण पथिक भी उसे देखकर चकपकाते थे। यह कठिनाई न रसखानि की कविता में थी, न आलम की कविता में, न ठाकुर की कविता में, न बोधा की कविता में और न द्विजदेव की कविता में। उनकी प्रेम संवेदना चाहे जितनी गहरी चाहे जितनी मार्मिक हो पर उसके संबंध में यह कठिनाई थी ही नहीं। घनानंद की कविताई में प्रवीणों की मति को जगानेवाली कई विशेषताएँ हैं। **(पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)**

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार घनानंद के कविताओं की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- उनकी रचना में बहुत सी स्थितियाँ मौन हैं। अर्थात उनकी रचना अभिधा के वाच्य रूप में कम और लक्षणा के लक्ष्य और व्यंजना के व्यंग्य रूप में अधिक हैं। अपनी कृति के भावक का रूप स्पष्ट करते हुए घनानंद कहते हैं- 'उर-भौन में मौन को घूँघट कै दुरि बैठी बिराजति बात

बनी।/ मृदु मंजु पदारथ भूषन सों सु लसै हुलसै रस-रूप मनी।/ रसना-अली कान गली मधि ह्वै पधरावति लै चित-सेज ठनी।/ घनआनंद बूझनि अंक बसै बिलसै रिझावर सुजान-घनी।।'

इस कविता दुल्हन का रसिक कोई साधारण व्यक्ति कैसे हो सकता है। वह सुजान है, प्रवीण है, सहृदय है, साहित्य के विधि-विधानों से अभिज्ञ है। वही इस पर रीझता है, इसकी सूक्ष्म भाव-भंगिमा को समझता है। बूझनि-प्रतीति, रस-प्रतीति की गोद में काव्य-प्रतीति के अंक में उसे लेकर बिलसता है। घनानंद की रचना का सौंदर्य आवृत्त है, वह शब्दों द्वारा वाच्य नहीं है। हृदय ही, सहृदय ही उसके मर्म को समझ सकता है। पर इस मौन को अमौन या बखान में परिणत कौन कर सकता है। वाणी जिस प्रकार मौन में अनेक बखानों को समेटे सिमटी पड़ी रहती है उसी प्रकार वाणी उस मौन में छिपे तत्त्वों को प्रकाशित भी कर सकती है।....जो मन का, चित्त का, बुद्धि का विषय न बन सके उसे भी वाणी का विषय बनना ही पड़ता है। वह नेत्रों में कान लगा सकती है और उन कानों को मौन की पुकार वाणी ही सुना सकती है, मौन के बखान को वाणी ही दिखा सकती है। वाणी की विशिष्टता बताते हुए घनानंद कहते हैं- 'आँखिन मूँदिबो बात दिखावत, सोवनि जागानि बात ही पेखि लै।/ बात-सरूप अनूप अरूप है, भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै।/ बात की बात सुबात बिचारिबो है छमता सब ठौर बिसेखि लै।/ नैननि काननि बीच बसै घनआनंद मौन बखान सु देखि लै।।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार घनानंद की विरह-साधना और काव्य-साधना में समरसता है इसलिए उनके मौन की विशेषता का बखान करने में वाणी की विशेषता तक बुद्धि को पहुँचना पड़ा। उनके अनुसार घनानंद स्वयं मौन की पुकार में लीन हैं, या उस मौन में, मौन के घूँघट में अपने को छिपाए हुए हैं।

- घनानंद की रचना में विरोध-वृत्ति (वैषम्यमूलकता) हर जगह है। मिश्र जी के अनुसार इनकी कविताओं में अभिव्यक्त प्रेम की विषमता और इस विरोध-वृत्ति में साम्यता देखने को मिलती है। 'इस विरोध-वृत्ति के लिए उन्होंने लक्षण का सहारा लिया है और लक्षण के जैसे चमत्कार इन्होंने दिखलाए हैं, हिंदी साहित्य के प्राचीन काल के किसी कवि में इतने लाक्षणिक वैलक्षण्य तो हैं ही नहीं, आधुनिक काल के जिन छायावादी कवियों में इस विलक्षणता के दर्शन प्रभूत परिणाम में होते हैं उनमें भी वह विशेषता नहीं है जो घनानंद के प्रयोगों में मिलती है।'
- फ़ारसी काव्य और सूफी साधना की प्रेरणा से भारतीयता की पूर्ण छाप के साथ घनानंद ने हिंदी में कवित्त रचे।

बोध प्रश्न

- रीतिकालीन कवियों में घनानंद का स्थान सुनिश्चित कीजिए।

16.4 पाठ सार

घनानंद रीतिमुक्त कवि हैं। इनके काव्य की मुख्य विषयवस्तु प्रेम है। प्रेम के अनंतर इन्होंने होली, प्रकृति और नीति विषयक सिद्धांतों पर भी प्रकाश डाला है। इनके काव्य में विरह भावना की पूर्ण व्यंजना हुई है। इसीसे इनका काव्य विप्रलंभ शृंगार का काव्य है। इसमें निहित विरह का वर्णन और विरह वेदना की व्यंजना अद्वितीय है। पूर्वराग के समय बाँसुरी से अधिक

प्रभावित होने के कारण होली के समय बजनेवाले वाद्य-यंत्रों के स्वर प्रेमी को कष्टकर होते हैं। चाँचरी और फाग का गायन भी उसके विरह को अधिक बढ़ाते हैं। हृदय में वाण लगते हैं और कृष्ण भी वहीं हैं पर न वाण उसे लगते हैं ना ही वह निकलकर प्रेमी को बचाता है। विरह और फाग का रूपक भी बाँधा गया है। अपनी कल्पना में प्रिय के प्रति प्रेमिका संदेश भेजती है कि प्रिय को प्रेमी के साथ न देखकर वहां विरह ही फाग मचाए हुए है, 'लखि सूनो सकै कित रावरो ह्वै विरहा नित फाग मचाय रह्यो।' अलंकार, बिंब, वक्रोक्ति योजना, भाव योजना, प्रयोग वैचित्र्य, विरोध वैचित्र्य, मुहावरों और सूक्तियों के प्रयोग से काव्य की भाषा-शैली की जीवंतता बढ़ी है।

16.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. घनानंद की गणना रीतिकाल के रीतिमुक्त अथवा स्वच्छंद कवियों में होती है।
2. घनानंद के काव्य का मुख्य विषय 'प्रेम की पीर' है।
3. घनानंद के साहित्य में ब्रज भाषा का परिष्कृत रूप देखने को मिलता है। इन्होंने विदेशी और भारतीय साहित्य प्रवाह का मेल करके अपने साहित्य की रचना की।
4. घनानंद ने यह प्रतिपादित किया है कि विरह की चरमावस्था में विरहणी की मनोवृत्ति प्रिय की अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों ही स्थितियों में अनुकूल होती है।

16.6 शब्द संपदा

1. कवित्त = एक प्रकार का छंद जिसे मनहरण या घनाक्षरी कहते हैं। घनानंद कवित्त में कवित्त शब्द का प्रयोग व्यापक रूप से किया गया है। इसके अंतर्गत सवैया, छप्पय, अनंगशेखर छंद और दोहा-सोरठा इत्यादि को रखा गया है। प्राचीन काल में कवित्त शब्द का प्रयोग इसी व्यापक अर्थ में किया जाता था।
2. घनानंद = घने आनंदवाले आँसू, आनंद के बादल, कवि का नाम
3. जुगुप्सा = घृणा, वीभत्स रस का स्थायी भाव
4. तैंवारो = मूर्च्छा
5. दुरायहौ = छिपाना
6. भरैंगे बिथा = दुःख (व्यथा) के दिन काटना या सहना
7. सुजान = घनानंद की प्रेयसी। घनानंद कवित्त में 'कृष्ण' के लिए सुजान शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी अर्थ में सुजान के स्थान पर जान, जानराय इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। सुजान सावधान के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है जबकि जान का अर्थ कोरे ज्ञानी से लिया जाता है। शृंगार संबंधित कवित्तों में सुजान का प्रयोग नायक के लिए किया गया है।
8. सेल = बरछा

16.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. घनानंद का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. घनानंद की कविता एवं उनके काव्य शिल्प की विशिष्टता क्या है? उदाहरण सहित बताइए।
3. घनानंद के काव्य में वर्णित विषयों का विस्तार से उल्लेख कीजिए।
4. घनानंद का काव्य वियोग (विप्रलंभ) शृंगार का काव्य है। स्पष्ट कीजिए।
5. रीतिकालीन कवियों के मध्य घनानंद के स्थान और वैशिष्ट्य को बताइए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. घनानंद की कृतियों पर प्रकाश डालिए।
2. घनानंद की कविता में अभिव्यक्त 'प्रेम की पीर' को स्पष्ट कीजिए।
3. घनानंद के काव्य की अलंकार और बिंब योजना पर प्रकाश डालिए।
4. 'मनुष्य का प्रेम' मछली और पतंगे के प्रेम के आचरण से कैसे अलग है?
5. श्री ब्रजनाथ के अनुसार घनानंद और उनकी कविता के भावक के गुण एक जैसे हैं। वे गुण कौन से हैं? स्पष्ट कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. घनानंद का जन्म कब हुआ था? ( )
   (अ) संवत 1746 (आ) संवत 1749 (इ) संवत 1717 (ई) 1746 ई.
2. घनानंद की मृत्यु कब हुई? ( )
   (अ) संवत 1813 (आ) संवत 1817 (इ) संवत 1713 (ई) कोई नहीं
3. घनानंद के लौकिक प्रेम का आलंबन क्या था? ( )
   (अ) राधा (आ) सुजान (इ) कृष्ण (ई) वृंदावन की धूल
4. विरहलीला के रचयिता कौन हैं? ( )
   (अ) घनानंद (आ) ब्रजनाथ (इ) रामचंद्र शुक्ल (ई) पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. समुझै कविता घनआनंद को, हिय आँखिन .... की पीर तकी।
2. लोग हैं लागि .... बनावत, मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत।
3. .... के धोखें रहैं, ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी।
4. नेही महा .... औ सुंदरतानि के भेद कों जाने।
5. अति सूधो .... जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।

III. सुमेल कीजिए

1. जग की कविताई	(अ) कृष्ण
2. घनानंद कवित्त की मुख्य संवेदना	(आ) रीतिबद्ध कविता
3. घनानंद काव्य के मुख्य आलंबन	(इ) घनानंद
4. रीतिमुक्त कवि	(ई) प्रेम

16.8 पठनीय पुस्तकें

1. घनानंद कवित्त : चंद्रशेखर मिश्र शास्त्री
2. घनानंद : लल्लन राय
3. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल
4. हिंदी साहित्य का इतिहास : (सं) नगेंद्र
5. हिंदी साहित्य और संवेदना : रामस्वरूप चतुर्वेदी
6. हिंदी साहित्य कोश- भाग 1 : (सं) धीरेंद्र वर्मा

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी Estd. 1998 MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY

परीक्षा प्रश्न पत्र का नमूना

MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY
PROGRAMME: M.A – HINDI
II – SEMESTER EXAMINATION
TITLE & PAPER CODE : मध्यकालीन हिंदी काव्य (MAHN202CCT)
TIME: 3 HOURS TOTAL MARKS: 70

यह प्रश्न पत्र तीन भागों में विभाजित हैं- भाग -1, भाग -2 और भाग - 3 प्रत्येक प्रश्न के उत्तर निर्धारित शब्दों में दीजिए।

भाग – 1

1. निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प चुनिए। 10X1=10

i इनमें से कौन से कवि आचार्य अलंकारवादी हैं- ( )
(A) बिहारी (B)केशवदास (C) घनानंद (D) मतिराम

ii. संत कवियों के दार्शनिक सिद्धांतों का मूलाधार है - ( )
(A) शुद्धाद्वैतवाद (B)नाथ पंथ (C) अद्वैत वेदांत (D) द्वैतवाद

iii. मंझन इस शाखा के कवि हैं - ( )
(A) कृष्णमार्गी शाखा (B)प्रेममार्गी शाखा
(C) ज्ञानमार्गी शाखा (D)राममार्गी शाखा

iv. बिहारी की रचना कौनसी है ? ( )
(A) विज्ञान गीता (B)मतिराम सतसई
(C) काव्य निर्णय (D) बिहारी सतसई

v. इनमें से कौन सा नाम रीतिकाल है? ( )
(A) छायावाद (B) शृंगारकाल (C) पूर्व मध्यकाल (D) आधुनिक काल

vi. नागरी प्रचारिणी सभा ने तुलसीदास के कितने ग्रंथों को प्रामाणिक माना है?( )
(A) 12 (B) 15 (C) 6 (D) 10

vii. सूरदास का जन्म कहाँ हुआ? ( )
(A) पारसौली (B) सीही (C) गऊघाट (D) अयोध्या

viii. सूरदास की प्रामाणिक रचना कौन-सी है? ( )

(A) सूरसागर (B) सूरसारावली (C) साहित्य लहरी (D) श्रीमद् भागवत

ix. केशव की रचना का नाम है? ( )

(A) विज्ञानगीता (B) बिहारी सतसई (C) मतिराम सतसई (D) काव्य निर्णय

x. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी रीति ग्रंथों की परंपरा किससे मानी है? ( )

(A) रसलीन (B) भूषण (C) पद्माकर (D) चिंतामणि

भाग – 2

निम्नलिखित आठ प्रश्नों में से किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 200 शब्दों में देना अनिवार्य है। 5X6 =30

2. घनानंद का काव्यगत परिचय दीजिए।
3. सूरदास का जीवन परिचय दीजिए।
4. रसखान की कृष्ण की अनन्य भक्ति पर प्रकाश डालिए।
5. मीराँ कृष्ण की उपासना किस रूप में करती है? वह रूप कैसा है?
6. बिहारी का परिचय दीजिए।
7. तुलसीदास के काव्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
8. रहीम का परिचय दीजिए।
9. संत काव्य की प्रवृतियाँ की चर्चा कीजिए।

भाग- 3

निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं तीन प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 500 शब्दों में देना अनिवार्य है। 3X10=30

10. भक्ति का महत्व बताते हुए उसकी प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।
11. कबीरदास के किन्हीं दो पदों का उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए?
12. बिहारी के दोहों की काव्यगत विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
13. भ्रमरगीत का पतिपद्य अपने शब्दों में लिखिए ।
14. रसखान के काव्य में निहित भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।

******